3४८

(1)

॥अथ विश्वकर्मप्रकाशो भाषाटीकान्वितः प्रारभ्यते॥

अथ विश्वकर्मप्रकाशविषयानुक्रम[illegible]का।

इति विश्वकर्मप्रकाशविषय[illegible]नुक्रमाणिका सम[illegible]ना।

5

श्रीगणेशाय नमः ॥ वरकी दाताहै मूर्ति जिसकी और मंगलोंका मंगल जो श्रीगणेश सो जयको प्राप्तहो। सबके नमस्कार करने योग्य ब्रह्मरूप सरस्वती जयको प्राप्तहो और चेतन और मोक्षरूप तीनों भुवनोंकी माता जयको प्राप्तहो और वाङ्मय महेश्वर मुझे शब्दरूपका ज्ञान करो ॥ १ ॥ ब्रह्माके भुवनपर्यंत जितने लोकहैं वे गृहस्थाश्रमके जिससे आश्रय हैं तिससे मैं गृहके आरंभ और प्रवेशके मुहूर्तको ॥ २ ॥ कहताहूं-हेमुनिश्रेष्ठ ! तुम एकाग्रमन होकर श्रवणकरो-जो प्राचीन वास्तुशास्त्र महादेवने कहाहै ॥ ३ ॥ वह पराशर ऋषि

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ जयतिवरदमूर्तिर्मङ्गलम्मङ्गलानांजयतिसकलवन्द्याभारतीब्रह्मरूपा ॥ जयतिभुवनमाताचिन्मयीमोक्षरूपा दिशतुममहेशोवाङ्मयःशब्दरूपम् ॥ १ ॥ आब्रह्मभुवनाल्लोकागृहस्थाश्रममाश्रिताः ॥ यतस्तस्माद्गृहारम्भप्रवेशसमयंब्रुवे ॥ २ ॥ प्रवक्ष्यामिमुनिश्रेष्ठशृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ यदुक्तंशंभुनापूर्ववास्तुशास्त्रंपुरातनम् ॥ ३ ॥ पराशरः प्राहबृहद्रथायबृहद्रथःप्राहचाविश्वकर्मणे ॥ सविश्वकर्माजगतांहितायप्रोवाचशास्त्रंबहुभेदयुक्तम् ॥ ४ ॥ ॥ विश्वकर्मोवाच ॥ वास्तुशास्त्रंप्रवक्ष्यामिलोकानांहितकाम्यया ॥५॥ पुरात्रेतायुगे ह्यासीन्महाभूतंव्यवस्थितम् ॥ स्वाप्यमानंशरीरेणसकलम्भुवनन्ततः ॥६॥ तन्दृष्ट्वाविस्मयन्देवागताःसेन्द्राभयावृताः ॥ ततस्तेभयमापन्नाब्रह्माणंशरणंययुः ॥ ७ ॥ भूतभावनभूतेशमहद्भयमुपस्थितम् ॥ क्वयास्यामःक्वगच्छामोवयंलोकपितामह ॥ ८ ॥

ने बृहद्रथको कहा और बृहद्रथने विश्वकर्माको कहा-और वह विश्वकर्मा जगत्के कल्याणके लिये अनेक भेदोंसे युक्त वास्तुशास्त्रको कहते भये ॥ ४ ॥ विश्वकर्मा कहतेहैं कि जगत्के कल्याणकी कामनासे वास्तुशास्त्रको कहताहूं ॥ ५ ॥ पहिले त्रेतायुगके बीचमें एक महाभूत व्यवस्थित हुआ (उठा) उसने अपने शरीरसे संपूर्ण भुवनको शयन करादिया ॥ ६ ॥ उस आश्चर्यको देखकर भयकरके सहित इन्द्रआदि देवता आश्चर्यको प्राप्तहुये और भयभीतहुए ब्रह्माकी शरण गये ॥ ७ ॥ और यह कहते भये कि हेभूतभावन ! अर्थात भू

तोंके पैदाकरने वाले-हे भूतोंकेईश्वर!बडा भय प्राप्तहुआ-हेलोकपितामह हम सब कहां जायं ॥ ८ ॥ उनके प्रति ब्रह्मा बोले कि हे देवताओ! भय मतकरो और इस महाबली भूतके संग विरोध मतकरो किन्तु-इसको अधोमुख गेरकर तुम शंकासे रहित होजावोगे ॥९॥ तिसके अनंतर क्रोधसे दुःखीहुए उन देवताओंने उस महाबली भूतको पकडकर अधोमुख गेरादिया और उसीके ऊपर वे देवता बैठगये ॥ १० ॥ वही वास्तुपुरुष समर्थ ब्रह्माने भाद्रपदके कृष्णपक्षकी तृतीयाको रचाथा ॥११॥ शनिवारके दिन और कृत्तिकाके दिन उसका जन्महुआ उसदिन

माभयङ्कुरुवोदेवाविगृह्येतमहाबलम् ॥ निपात्याधोमुखंभूमौनिर्विशङ्का भविष्यथ ॥ ९ ॥ ततस्तैः क्रोधसन्तप्तैर्गृहीत्वातम्महाबलम् ॥ विनिक्षिप्तमधोवक्रंस्थितास्तत्रैवतेसुराः ॥ १० ॥ तमेववास्तुपुरुषंब्रह्मासमसृजत्प्रभुः ॥ कृष्णपक्षेतृतीयायांमासि भाद्रपदे तथा ॥११॥ शनिवारेभवज्जन्मनक्षत्रेकृत्तिकासुच ॥ योगस्तस्यव्यतीपातः करणंविष्टिसंज्ञकम् ॥ १२ ॥ भद्रान्तरेभवज्जन्मकुलिकेतुतथैवच ॥ क्रोशमानम्महाशब्दंब्रह्माणंसमपद्यत ॥ १३ ॥ चराचरमिदंसर्वन्त्वयासृष्टं जगत्प्रभो ॥ विनापराधेनचमांपीडयन्तिसुराभृशम् ॥ १४ ॥ वरंतस्मैददौ प्रीतोब्रह्मालोकपितामहः । ग्रामेवानगरेवापिदुर्गेवापत्तनेपिवा ॥ १५ ॥ प्रासादेचप्रपायांच जलोद्यानेतथैवच ॥ यस्त्वांनपूजयेन्मर्त्योमोहाद्वास्तुनर प्रभो ॥ १६ ॥

व्यतीपात योगथा और विष्टि करणथा॥१२॥भद्राओंकेमध्यमें और कुलिक योगमें उसका जन्महुआ-और महान् शब्द करताहुआ वह वास्तुपुरुष ब्रह्माके समीपगया ॥ १३ ॥ और बोला कि हेप्रभो! यह चराचर जगत् तुमने रचाहै और बिना अपराधके ये देवता मुझे अत्यन्त पीडा देतेहैं ॥ १४ ॥ फिर प्रसन्न हुए जगत्के पितामह ब्रह्मा उसको यह वरदेते भये कि ग्रामनगर दुर्ग (किला) पत्तन (सहर) इनमें ॥ १५ ॥ और प्रासाद (महल) प्याऊ और जलोद्यान (तलाव) इनमें जो मनुष्य मोहसे वास्तुपुरुष हे प्रभो! तुझे न पूजै ॥ १६ ॥

वह दरिद्रता और मृत्युको प्राप्त होताहै और उसको पदपद (बातबात) पर विघ्न होताहै—और वास्तुपूजाको नहीं करताहुआ मनुष्य तेरा भोजन होताहै ॥ १७ ॥ यह कहकर ब्रह्मज्ञाताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा शीघ्र अन्तर्धान होते भये इससे मनुष्य गृहके आरंभमें और प्रवेशमें वास्तुकी पूजाकरै ॥ १८ ॥ और द्वारके बनानेमें और तीनप्रकारके प्रवेशमें और प्रतिवर्ष यज्ञआदिमें और पुत्रके जन्ममें ॥१९॥ यज्ञोपवीत,विवाह और महोत्सवमें और जीर्णकेउद्धारमें और विशेषकर शल्यके न्यासमें अर्थात् टूटे फूटेके जोडनेमें॥२०॥ वज्र (विजली) और अग्निसे दूषितमें और भग्न (फूटा) में सर्प और चाण्डालसे युक्तमें और जिसघरमें उल्लू वसतेहों और जिस

अश्रियम्मृत्युमाप्नोतिविघ्नस्तस्यपदेपदे ॥ वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारोभविष्यति ॥ १७॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे सद्योदेवोब्रह्मविदांवरः ॥ वास्तुपूजांप्रकुर्वीतगृहारंभेप्रवेशने ॥ १८ ॥ द्वाराभिवर्तने चैवत्रिविधेचप्रवेशने॥प्रतिवर्षश्चयज्ञादौतथापुत्रस्यजन्मनि ॥१९॥ व्रतबन्धे विवाहेचतथैवचमहोत्सवे ॥ जीर्णोद्धारेतथाशल्यन्यासेचैवविशेषतः ॥ २० ॥ वज्राग्निदूषितेभग्नेसर्पचाण्डालवेष्टिते ॥ उलूकवासि तेसततरात्रौ काकाधिवासिते ॥ २१ ॥ मृगाधिवासितेरात्रौगोमार्जाराभिनादिते ॥ वारणाश्वादिविरुतेस्त्रीणांयुद्धाभिदूषिते ॥ २२ ॥ क पोतकगृहावासेमधूनांनिलयेतथा ॥ अन्यैश्चैव महोत्पातैर्दूषितेशांतिमाचरेत् ॥ २३ ॥ अथभूमिदर्शनम् ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामिलो कानांहितकाम्यया ॥ श्वेतारक्तातथापीताकृष्णावर्णानुपूर्व्यतः ॥ २४ ॥

घरमें ७ सातदिनतक काग वसेहों ॥ २१ ॥ और जिसमें रात्रिमें मृग वसै अथवा गौ बिलाव ये अत्यन्त शब्दकरैं-और जिसमें हाथीघो डे आदि अत्यन्त शब्दकरें और जो घर स्त्रियोंको युद्धसे अत्यन्त दूषितहो॥२२॥जिस घरमें कबूतरोंके घर हो-मधूकानिलय-अर्थात-मोहार बैठतीहो-और- इसप्रकारकेअनेक जो उत्पातहैं उनसे दूषित घरके होनेपर वास्तुशान्तिको करै ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर भूमिके दर्शनका वर्णन करतेहैं-इसके अनन्तर जगतके कल्याणकी कामनासे भूमिको वर्णन करताहूं कि ब्राह्मण आदिवर्णोंके घरोंकी क्रमसे श्वेत-रक्त-पीत-और कृष्णवर्णकी भूमि होतीहै ॥ २४ ॥

सुन्दर जिसमें गन्ध हो ऐसी श्वेतभूमि ब्राह्मणी-और रुधिरके समान जिसमे गन्धहो ऐसी भूमि क्षत्रिणी-सहतके समान जिसमें गंध हो ऐसी भूमि-वैश्या, और मदिराके समान जिसमें गंध हो ऐसी भूमि-शूद्रा होतीहै ॥ २५ ॥ जो भूमि-मधुर हो वह ब्राह्मणी-और जो कषैली हो वह क्षत्रिया और जो अम्ल हो (खट्टी) वह वैश्या और जो तिक्त(चरपरी) होतीहै वह शूद्रा कहीहै॥२६॥जो भूमि चकोर हो जिसका हाथी के समान आकारहो और जिसका सिंह बैल घोडाकी समान रूपहो और जिसका भद्रपीठ स्थानकी भूमि त्रिशूल और शिवालिंगके तुल्य हो ॥ २७ ॥ और प्रासादकी ध्वजा और कुंभ आदि जिसमें हों ऐसी भूमि–देवताओंकोभी दुर्ल्लभ है जो भूमि त्रिकोणहो-और जिसका

सुगन्धाब्राह्मणीभूमीरक्तगन्धा तुक्षत्रिणी ॥ मधुगन्धा भवेद्वैश्यामद्यगन्धाचशूद्रिणी ॥ २५ ॥ मधुराब्राह्मणीभूमिःकषायाक्षत्रियामता॥
अम्लावैश्याभवेद्भूमिस्तिक्ताशूद्राप्रकीर्तिता ॥ २६ ॥ चतुरस्रांद्विपाकारांसिंहोक्षाश्वेभरूपिणीम् ॥ वृत्तञ्चभद्रपीठञ्चत्रिशूलंलिंगसन्नि
भम् ॥ २७ ॥ प्रासादध्वजकुम्भादिदेवानामपिदुर्ल्लभाम् ॥ त्रिकोणांशकटाकारांशूर्प्पव्यजनसन्निभाम् ॥ २८ ॥ मुरजाकारस
दृशांसर्पमण्डूकरूपिणीम् ॥ खराजगरसङ्काशाम्बकाञ्चिपिटरूपिणीम् ॥ २९ ॥ मुद्गराभांतथोलूककाकसर्प्पनिभान्तथा ॥ शूकरो
ष्ट्रजसदृशांधनुःपरशुरूपिणीम् ॥ ३० ॥ कृकलासशवाकारान्दुर्गम्याश्चविवर्जयेत् ॥ मनोरमाचयाभूमिः परीक्षेतप्रयत्नतः ॥ ३१ ॥

शकट (गाडा)के समान आकारहो-और जो सूप औ वीजनेकी तुल्यहो ॥२८॥ और जो मुरज (मृदंग) बाजेकी तुल्यहो और सांप मैंडकके तुल्य-जिसका रूपहो-और जो गर्दभ और अजगरके समानहो और बगला और चिपिटके समान जिसका रूपहो ॥ २९ ॥ और मुद्गर-उल्लू-काक-इनकी जो तुल्यहो-शूकर-उष्ट्र-बकरी-इनकी जो तुल्य हो-धनुष-परशु-(कुहाडा) इनकी समान जिसका रूपहो ॥ ३० ॥ और-कृकलाश (कँकैंटा)और. शव(मुर्दा) जिसका इनके समान रूपहो और दुःखसे गमन करने योग्यहो, इतने प्रकारकी भूमिको वर्ज दे.

जो भूमि मनोरम हो उसकी यत्नसे परीक्षा करै ॥ ३१ ॥ और दूसरी-वह भूमि दृढ होतीहै जो उत्तर और पूर्वको नीचीहो-ब्राह्मणोंके गृहकी भूमि गम्भीर और क्षत्रियोंकी ऊंची होतीहै ॥ ३२ ॥ और वैश्योंकी-भूमि-सम (न ऊंची-न नीची) कहीहै और शूद्रोंके लिये विकट भूमि-श्रेष्ठ कहीहैं-अथवा सब वर्णोंके लिये समान जो भूमि है वह श्रेष्ठ कहीहै ॥ ३३ ॥ और सफेद वर्णकी भूमि सब वर्णोंको शुभ कहीहै जिस भूमिमें कुशा और काशहों- वह ब्राह्मणोंको और जिसमें दूब हो वह क्षत्रियोंको श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥ जिसमें फल पुष्प-लताहों वह वैश्योंको और जिसमें तृणहों वह शूद्रोंको श्रेष्ठहै-जो भूमि. नदीके घात (कटाव) के आश्रयमेंहो और जो बडे बडे

द्वितीयादृढभूमिश्चनिम्नाचोत्तरपूर्वके ॥ गम्भीराब्राह्मणीभूमिर्नृपाणांतुङ्गमाश्रिता ॥ ३२ ॥ वैश्यानांसमभूमिश्चशूद्राणांविकटास्मृता ॥ सर्वेषाञ्चैववर्णानांसमभूमिः शुभावहा ॥ ३३ ॥ शुक्लवर्णाचसर्वेषांशुभाभूमिरुदाहृता ॥ कुशकाशयुताब्राह्मीदूर्वानृपतिवर्गगा ॥ ३४ ॥ फलपुष्पलतावैश्याशूद्राणांतृणसंयुता ॥ नदीघाताश्रितांतद्वन्महापाषाणसंयुताम् ॥ ३५ ॥ पर्वताग्रेषुसंलग्नांगर्ताविवरसंयुताम् ॥ वक्रांसूर्यनिभांतद्वल्लकुटाभांकुरूपिणीम् ॥ ३६ ॥ मुशलाभाम्महाघोरांवायुनावापिपीडिताम् ॥ वल्लभल्लकसंयुक्तांमध्येविकटरूपिणीम् ॥ ३७ ॥ श्वशृगालनिभांरूक्षांदन्तकैः परिवारिताम् ॥ चैत्यश्मशानवल्मीकधूर्तकालयवर्जिताम् ॥ ३८ ॥ चतुष्पथमहावृक्षदेवमंत्रिनिवासिताम् ॥ दूराश्रिताञ्चभूगर्तयुक्ताञ्चैवविवर्जयेत् ॥ ३९ ॥ इतिभूमिलक्षणम् ॥

पत्थरोंसे युक्तहो ॥ ३५ ॥ और जो पर्वतके अग्रभागसे मिलीहो और जिसमें गढे और छिद्रहों जो ठेढी-और सूपके समानहो. जिसकी कान्ति लकुट-(दण्ड) के समानहो और जिस भूमिका निन्दित रूपहो ॥ ३६ ॥ और जो भूमि मुसलके समान और महाघोरहो- और जो-भल्ल-भल्लूक (रीछ) से युक्तहो और जिसका मध्यमें विकट रूपहो ॥ ३७ ॥ और जो कुत्ता-गीदड़के समानहो और जो रूखी और दातोंसे युक्त हो. और चैत्य श्मशान-वामी-और जंबूकका स्थान इनसे रहित हो ॥ ३८ ॥ और चतुष्पथ (चौराहा) महावृक्ष और देव

मंत्री-(भूत आदि) इनका जिसमें निवासहो. और जो नगरसे दूरहो. और जो गढोंसे युक्तहो-ऐसी भूमिको वर्जदे ॥ ३९ ॥ इति भूमिलक्षणम्॥इसके अनन्तर फलोंका वर्णन करतेहैं-जिस भूमिमें अपने वर्णकी गंध होय और जिसका सुंदर रूपहो-वह-भूमि धन धान्य-और सुखके देनेवाली होतीहै- और इससे विपरीत हो तो फलभी विपरीत होताहै-इससे भूमिकी परीक्षा-करनी ॥ ४० ॥ जो भूमि चकोरहो-वह महान् अन्न आदिको देतीहै. जिसकी हाथीके समान कान्तिहो वह महान् धन देतीहै, जो भूमि सिंहके तुल्यहै-वह गुणवान् पुत्रोंको देतीहै जो वृष (बैल)के समानहै-वह पशुओंकी वृद्धिको देतीहै ॥ ४१ ॥ जो भूमि वृत्त-वा भद्रपीठके तुल्यहै-वह श्रेष्ठ धनके

अथफलानि ॥ स्ववर्णगन्धासुरसाधनधान्यसुखावहा ॥ व्यत्ययेव्यत्ययफला अतःकार्यम्परीक्षणम् ॥ ४० ॥ चतुरस्नामहाधन्याद्विपाभाधनदायिनी ॥ सिंहाभासगुणान्पुत्रान्वृषाभापशुवृद्धिदा ॥ ४१ ॥ वृत्तासद्वित्तदाभूमिर्भद्रपीठनिभातथा ॥ त्रिशूलरूपावीराणामुत्पत्तिर्धनसौख्यदा॥४२॥ लिङ्गाभालिङ्गिनांश्रेष्ठाप्रासादध्वजसन्निभा ॥ पदोन्नतिंप्रकुरुतेकुम्भाभाधनवर्द्धिनी ॥ ४३ ॥ त्रिकोणशकटाकाराशूर्पव्यजनसन्निभा ॥ क्रमेणसुतसौख्यार्थधर्महानिकरीस्मृता ॥ ४४ ॥

देनेवाली होतीहै और जिस भूमिका त्रिशूलके समान आकारहै उस भूमिमें शूर वीरोंकी उत्पत्ति होतीहै. और वह धन और सुख देनेवाली होतीहै ॥ ४२ ॥ और जिसकी कांति लिंगकी समान है वह संन्यासीयोंके लिये श्रेष्ठहै और जो प्रासादकी ध्वजाके तुल्यहै-वह प्रतिष्ठाकी उन्नति करतीहै और जो कुंभके समानहै वह धनके बढानेवाली होतीहै ॥ ४३ ॥ जो भूमि त्रिकोण और जिसका शकटके समान आकार हो और जो सूप, वीजनेके समानहो वह भूमि पुत्र और सुख और धर्मकी हानिको क्रमसे करतीहै ॥ ४४ ॥

जो भूमि मुरजके समानहै वह वंशका नाश करती है और जो सर्प मैंडकके समानहै वह भयकी देतीहै और खरके समान जिसका आकारहै वह धनका नाश करतीहै और जो अजगरसे युक्तहै वह मृत्युको देतीहै ॥ ४५ ॥ और जो भूमि चिपिटा वा मुद्गर के समानहै वह पुरुषोंसे हीन रहतीहै- और जो काक- उलूके तुल्यहै वह दुःख- शोक भयको देतीहै ॥ ४६ ॥ और जो सर्पके समान हो- वह पुत्र-पौत्रोंके नष्ट करनेवाली- जो वंशकी समान हो- वह वंश नष्ट करनेवाली होतीहै- और जो शूकर- ऊंट बकरी धनुः- कुहाडा- इनके समान आकारवालीहो ॥ ४७ ॥ वह कुचैल मलिन और मूर्ख तथा ब्रह्महत्यारे पुत्रोंको पैदा करतीहै. और

मुरजावंशहासर्पमण्डूकाभांभयावहा ॥ नैःस्वंखरानुकाराचमृत्युदाऽजगरान्विता ॥ ४५ ॥ चिपिटापौरुषैर्हीनामुद्गराभातथैवच ॥ काकोलूकनिभातद्वद्दुःखशोकभयप्रदा ॥ ४६ ॥ सर्पाभापुत्रपौत्रघ्नीवंशाभावंशहानिदा ॥ शूकरोष्ट्राजसदृशीधनुःपरशुरूपिणी ॥ ॥ ४७ ॥ कुचैलान्मलिनान्मूर्खान्ब्रह्मघ्नाञ्जनयेत्सुतान् ॥ कृकलासशवाकारामृतपुत्राधनार्तिदा ॥ ४८ ॥ दुर्गम्यापापिनांवंशप्रजाभूमिं परित्यजेत् ॥ मनोरमासुतप्रदादृढाधनप्रदामता॥सुतार्थदातथाप्युदक्सुरेशदिक्प्लवामही ॥ ४९ ॥ गंभीरशब्दाजनयेत्पुत्रान्गंभीरनिः स्वनान् ॥ तुङ्गापदान्वितान्कुर्यात्समासौभाग्यदायिनी ॥ ५० ॥

जो करकैटा और मुर्देकी समानहो वह पुत्रोंकी मृत्यु देनेवाली और धनके नष्ट करनेवाली और पीडाकी दाता होतीहै ॥ ४८ ॥ जिसमें दुःखसे गमन किया जाय ऐसी भूमि और पापीयोंके वंशकी प्रजाकी जो भूमि है उसै त्यागदे. मनोरम भूमि पुत्र देनेवाली और मनोरम भूमि सुखदेनेवाली और दृढ भूमि धनदेनेवाली होतीहै और उत्तर पूर्वको निम्न जो भूमि वह पुत्र और धन देने वाली होतीहै ॥ ४९ ॥ जिस भूमिका गंभीर शब्द हो वह गंभीर शब्दवाले पुत्रोंको पैदा करतीहै और ऊंची

भूमि पदवीवाले पुत्रोंको पैदा करतीहै और सम भूमि सौभाग्यको देतीहै ॥ ५० ॥ और विकट भूमि शूद्रजाति और दुर्गके निवासी और चोरोंको शुभकी दाता होतीहै अन्य मनुष्योंको नहीं ॥ ५१ ॥ और अपने वर्णकाहै रूप जिसका ऐसी भूमि वर्णोंको सुख देतीहै और वर्णोंका अधिपति करतीहै और शुक्लवर्णकी भूमि सबके पुत्रपौत्र बढानेवाली होतीहै ॥ ५२ ॥ कुश और काशवाली भूमि ब्रह्मतेजवाले पुत्रोंको पैदा करतीहै और दूबसे युक्त भूमि शूरवीरोंको जन्मातीहै और फलसे युक्त भूमि धन और पुत्रोंको देतीहै ॥ ५३ ॥ और नदीके कटावकी भूमि मूर्ख और सन्तानहीनोंको पैदा करतीहै जिस भूमिके मध्य-

विकटाशूद्रजातीनांतथादुर्गनिवासिनाम् ॥ शुभदानापरेषांचतस्कराणांशुभावहा ॥ ५१ ॥ स्ववर्णवर्णास्वान्वर्णान्वर्णानामाधिपत्यदा॥ शुक्लवर्णाचसर्वेषाम्पुत्रपौत्रविवर्द्धिनी ॥५२॥ कुशकाशान्विताब्रह्मवर्चसान्कुरुतेसुतान् ॥ दूर्वान्वितावीरजानिः फलाढ्याधनपुत्रदा ॥ ५३ ॥ नदीघाताश्रितामूर्खान्मृतवत्सांस्तथैवच ॥ दरिद्रानश्ममध्यस्थागर्तावस्यामृषायुतान् ॥ ५४ ॥ विवरापशुपुत्रार्त्तिदायिनी सौख्यहारिणी ॥ वक्रातिवक्राजनयेत्पुत्रान्विद्याविहीनकान् ॥ ५५ ॥ शूर्पमार्जारलकुटनिभाभीतिसुतार्तिदा ॥ मुशलामुशलान्पुत्राञ्जनयेद्वंशघातकान् ॥ ५६ ॥ घोराघोरप्रदावायुपीडितावायुभीतिदा ॥ वल्लभल्लकसंयुक्तापशुहानिप्रदासदा ॥ ५७ ॥

में पत्थर हों वह दरिद्रियोंको और गढेवाली भूमि झूठे पुत्रोंको पैदा करतीहै ॥ ५४ ॥ जिस भूमिमें छिद्रहों वह पशु और पुत्र इनको दुःखकी दाता और सुखके नष्ट करनेवाली होतीहै और टेढी वा अत्यंत टेढी भूमि विद्यासे हीन पुत्रोंको पैदा करतीहै ॥ ५५ ॥ सूप बिलाव लकुट इनके तुल्य भूमि भय, पुत्रोंके दुःखकी दाता होतीहै और मुसलके समान भूमि वंशके नाशक मूसलचंद पुत्रोंको पैदा करतीहै ॥ ५६ ॥ घोर भूमि भयकी दाता होतीहै और वायुसे पीडित भूमि वायुके भयको देतीहै

वल्ल और भीलोंसे युक्त भूमि सदैव पशुओंकी हानिको देतीहै ॥ ५७ ॥ विकट कुत्ते और शृगालकी समान भूमि विकट पुत्रोंको देतीहै और रूखी भूमि कठोर और कुत्सित वचनोंके वक्ता पुत्रोंको देतीहै ॥ ५८ ॥ और चैत्यकी भूमि घरके स्वामीको भय देतीहै और वमीकी भूमि विपत्ति देतीहै और धूर्तोंके स्थानके समीपकी भूमि निश्चयसे पुत्रके मरणको देतीहै ॥ ५९ ॥ चौराहेमें कीर्ति कानाश और देवमंदिरमें घर बनानेसे उद्वेग होताहै और सचिव (मंत्री) के स्थानमें धनकी हानि और गढेमें गृह बनानेसे अत्यन्त विपत्ति होतीहैं ॥ ६० ॥ और जिस भूमिमें बहुतसे गढेहों उसमें जलकी प्यास, और कच्छपके समान भूमिमें धनका

विकटाविकटान्पुत्राञ्छ्वशृगालनिभातथा॥ददातिरूक्षापरुषादुर्वचाञ्जनयेत्सुतान् ॥ ५८ ॥ गृहस्वामिभयञ्चैत्येवल्मीकेविपदःस्मृताः ॥ धूर्तालयसमीपेतुपुत्रस्यमरणन्ध्रुवम् ॥ ५९ ॥ चतुष्पथेत्वकीर्तिः स्यादुद्वेगोदेवसद्मनि ॥ अर्थहानिश्चसचिवेश्वभ्रेविपदउत्कटाः ॥ ६० ॥ गर्तायान्तुपिपासास्यात्कूर्माभेधननाशनम् ॥ अथभूमिपरीक्षा ॥ निखनेद्धस्तमात्रेणपुनस्तेनैवपूरयेत् ॥ पांशुनाधिकमध्योनाश्रेष्ठाम ध्याधमाक्रमात् ॥ ६१ ॥ जलेनापूरयेच्छ्वभ्रंशीघ्रंगत्वापदैःशतम् ॥ तथैवागम्यवीक्षेतनहीनसलिलाशुभा ॥ अरत्निमात्रेश्वभ्रेवाह्यनु लिप्तेचसर्वतः ॥ ६२ ॥ घृतमामशरावस्थंकृत्वावर्तिचतुष्टयम् ॥ ज्वालयेद्भूपरीक्षार्थंसंपूर्णसर्वदिङ्मुखम् ॥ ६३ ॥

नाश होताहै। इसके अनन्तर भूमिकी परीक्षाको कहतेहैं। हस्तमात्र भूमिको खोदकर फिर उसी मट्टीसे भरैं, यदि मिट्टी अधिक मध्यम और न्यून हो जाय तो क्रमसे श्रेष्ठ, मध्यम, अधम फल जानना ॥ ६१ ॥ अथवा हस्तमात्रके गढेको जलसे भरदे और शीघ्रसौ १०० पैंड चलकर और उसी प्रकार आनकर देखे, जल कमहो जाय यदि तो भूमि शुभ नसमझनी अथवा विलस्त भर गढेको चारों तरफ लीपकर ॥ ६२ ॥ कच्चे सर्वेमें घीकरके चारों दिशाओंको पृथ्वीकी परीक्षाके लिये चार बत्ती बाले ॥ ६३ ॥

यदि चारों बत्ती जलती रहैं तो ब्राह्मण आदि वर्णोंके क्रमसे पूर्वआदि दिशाकी भूमिको ग्रहणकरैं अथवा हलसे जोतेहुए देश में सब प्रकारके बीजोंको बोदे ॥ ६४ ॥ यदि तीन पांच सात रात्रमें बीजमें क्रमसे यह फल जानना यदि तीन रातमें बोये हुये बीजोंमें अंकुर जम आवैं तो पृथ्वी उत्तम समझनी ॥ ६५ ॥ पांच रातमें जमैं तो मध्यम और सात रातमें जमैं तो अधम समझनी अथवा उस भूमिमें तिल जौं सरसौं इनको बोवे ॥ ६६ ॥ अथवा गृहकी भूमिकी सब दिशाओंमें सब अन्न बोवे जहां वे

दीप्तापूर्वादिगृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥ हलाकृष्टेतथोदेशेसर्वबीजानिवापयेत् ॥ ६४ ॥ त्रिपञ्चसप्तरात्रेणनप्ररोहन्तितान्यपि ॥ उत्तवी जात्रिरात्रेणसाङ्कुराशोभनामही॥६५॥मध्यमापञ्चरात्रेणसप्तरात्रेणनिन्दिता ॥ तिलान्वावापयेत्तत्रयवांश्चापिचसर्षपान् ॥६६॥ अथवासर्व धान्यानिवापयेच्चसमन्ततः ॥ यत्रनैवप्ररोहंतितांप्रयत्नेनवर्जयेत् ॥ ६७ ॥ व्रीहयःशालयोमुद्गागोधूमाः सर्षपास्तिलाः ॥ यवाश्चौ षधयःसप्तसर्वबीजानिचैवहि ॥६८॥ सुवर्णताम्रपुष्पाणिश्वभ्रमध्यगतानिच ॥ यस्यनाम्निसमायान्तिसाभूमिस्तस्यशोभना ॥ ६९ ॥ पां शवोरेणुतांनीत्वानिरीक्षेदन्तरिक्षगाः ॥ अधोमध्योर्द्धगानॄणांगतितुल्यफलप्रदा ॥ ७० ॥ कृष्टांप्ररूढबीजाङ्गोध्युषितांब्राह्मणैस्तथा ॥ गत्वामहींगृहपतिःकालेसांवत्सरोदिते ॥ ७१ ॥

संपूर्ण बीज नजमे उस भूमिको यत्नसे वर्जदे॥६७॥व्रीहि शाली मूंग गेहूं सरसौं तिल जौं ये सात सर्वौषधि और सब बीज कहंतेहैं ॥६८॥ ॥ ९ ॥
सुवर्ण-तामेंके रंगके पुष्प गढेके मध्यमें रक्खे हुए जिसके नामके आ जाय वह भूमि उसके लिये उत्तम कहीहै ॥ ६९ ॥ भूमिकी धूलि की रेणुको आकाशमें फैंककर देखैं यादि वे अधो भाग मध्यभाग ऊर्द्धभागमें प्राप्त होजाय तो अधोगति मध्यगति ऊर्ध्वगति देनेवाली वह भूमि होतीहै ॥ ७० ॥ जुती हुई जिस भूमिमें बीज जमेंहों अथवा जिसमें गौ और ब्राह्मण वसेहों ऐसी भूमिमें वर्षदिनके कहे

इसके अनन्तर शकुनोंको कहतेहैं कि-गृहमें प्रवेश होनेके समय पुण्याहवाचन
हुए मुहूर्तमें घरका स्वामी गमन करै (वसे) ॥ ७१ ॥ शंख और अध्ययनका शब्द जलका घट ब्राह्मणोंका समुदाय वीणा और ढोलका शब्द पुत्र करके सहित स्त्री गुरु (माता पिता आदि) मृदंग आदि बाजोंका शब्द और भेरीका शब्द ये उत्तम शकुनहैं ॥ ७२ ॥ अच्छे शुक्ल वस्त्रोंको धारण किये हुए कन्या-अच्छी रसीली और सुगन्धित मट्टी पुष्प सुवर्ण चांदी मोती मूंगा और अच्छे उत्तम भक्ष्य पदार्थ ये गृहप्रवेशके समय कल्याणके देनेवाले हैं ॥ ७३ ॥ मांस दही दुग्ध नृयान (पालकी आदि) छत्र मीन और मनुष्योंका मिथुन (जोडा) येभी कल्याण करनेवाले हैं ॥ ७४ ॥ मृग और अंजन (सुरमा) बँधा हुआ एक पशु पगडी चन्दन दर्पण वीजना और वर्द्धमान (कवा) येभी गृहप्रवेशके समय अवस्था और आरोग्य की वृद्धि देनेवाले होतेहैं ॥ ७५ ॥ निर्मल कमलका पुष्प गीतोंके शब्द सुफेद वृष मृग ब्राह्मण ये यदि घरमें जानेके समय मनुष्यके सम्मुख हों उस मनुष्यको धन्यहै अर्थात् ये उत्तमोत्तम फलके देनेवालेहैं । तथा गृहकर्मके करनेमें हाथी घोडा और सौभाग्यवती स्त्री और श्रेष्ठ स्त्री-ये- धन पुत्र और सुख आरोग्य इनके देनेवाली होतीहैं ॥ ७६ ॥ वेश्या अंकुश दीपक माला और वर्षा ये गृहारंभके वा

अथशकुनाः ॥ पुण्याहशंखाध्ययनाम्बुकुम्भाविप्राश्ववीणापटहस्वनानि ॥ पुत्रान्वितास्त्रीगुरवोमृदङ्गवाद्यानिभेरीनिनदाः प्रशस्ताः ॥ ७२ ॥ कन्यासुधौताम्बरवासकारीमृदः सुरस्यासुरभीसुगन्धाः ॥ पुष्पाणिचामीकररौप्यमुक्ताप्रवालभक्ष्याणिशुभावहानि ॥ ७३ ॥ आमिषंदधिदुग्धंचनृयानंछत्रमेदच ॥ मीनमिथुनंपुंसामायुरारोग्यवृद्धिदम् ॥ ७५ ॥ मृगारांजनबद्धैकपशुश्चोष्णीषचन्दनम् ॥ आदर्शव्यजनंवर्द्धमानाश्चापिशुभावहाः ॥ ७४ ॥ कमलममलङ्गीतारावःसितोक्षमृगाद्विजा गमनसमयेपुंसांधन्यागृहाद्यधिवासिते ॥ तंथावृषिर्गृहारंभेनिवेशेसमभीष्टदा ॥ ७७ ॥ गजहयसुवासिन्यस्तथाप्रवराङ्गनाधनसुतसुखारोग्यायुष्प्रदागृहकर्मणि ॥ ७६ ॥ गणिकाचाङ्कुशंदीपम्मालांबालांसुभूषिताम् ॥

गृहप्रवेशके समय होय तो ये अच्छी तरह अभीष्ट फलके देनेवाले होतेहैं॥७७॥अब खोटे शकुनोंको कहतेहैं- कि- खोटी वाणी शत्रुकी वाणी मद्य चर्म हाड पूले आदि तृण तुष(उस)सांपकी चर्म अंगारा ॥७८॥कपास लवण कीच नपुंसक तेल औषध विष्ठा काले अन्न रोगी तैल आदिसे अभ्यक्त॥७९॥पतित जटाधारी उन्मत्त शिरमुंडाये हुए नंगे शिर-इन्धन-विवरा(खोटाशब्द)इनको तथा पक्षी मृग मानुष्य ॥८०॥इन के दो भेदोंको बलती हुई दग्ध तथा जिनमें धूमां उठ रहाहो उन दिशाओंमें देखता हुआ पुरुष जो गृहप्रवेश करै तो उसका मरण बुद्धिमान्

16

अथापशकुनानि॥दुर्वाणीशत्रुवाणीचमद्यञ्चर्मास्थिरेवच ॥ तृणन्तुषन्तथासर्पचर्मचाङ्गारमेवच ॥७८॥ कार्पासलवणम्पङ्कक्लीबतैलौषधा निच॥ पुरीषंकृष्णधान्यानिव्याधिताभ्यक्तमेवच ॥ ७९ ॥ पतितोजटिलोन्मत्तौमुण्डीनग्नशिरास्तथा ॥ इन्धनानिविरावश्चद्विपक्षिमृग मानुषम् ॥ ८० ॥ ज्वलिताशासुदग्धासुधूमितासुचपश्यतः ॥ मरणंनिर्दिशेत्प्राज्ञस्तत्रशल्यंविनिर्दिशेत् ॥ ८१ ॥ यस्यापशकुन न्तस्यशल्यन्तत्रभवेद्गृहे ॥ तत्रवासन्नकुर्वीतगृहञ्चैवनकारयेत् ॥ ८२ ॥ अथखननविधिः ॥ ज्योतिश्शास्त्रानुसारेणसुदिने शुभवासरे ॥ सुलग्नेसुमुहूर्तेचसुस्नातः प्राङ्मुखोगृही ॥ ८३ ॥ पूजयेद्गणनाथञ्चग्रहांश्चकलशेस्थितान् ॥ परीक्षिते चभूभागेगोमयेनानुलिप्यच ॥ ८४ ॥

मनुष्य कहै-और उस भूमिमें दुःख कहै ॥ ८१ ॥ जिस मनुष्यको अपशकुनहो उस मनुष्यको दुःख होताहै इससे उस घरमें वास न करै और न ऐसी भूमिमें घर बनावै ॥ ८२ ॥ अब खननकी विधिको कहते हैं कि, ज्योतिःशास्त्रके अनुसार शोभन दिन और शुभवार सुंदर लग्न और अच्छी मुहूर्तमें भलीप्रकार स्नान करकै गृहस्थी पुरुष पूर्वको मुख करके बैठै ॥ ८३ ॥ और फिर गणपति कलशके ऊपर स्थापन किये नवग्रह इनका पूजन कर, फिर पूर्वोक्तप्रकारसे परीक्षाकी हुई उसी पृथिवीमें किसी जगह गौके गोबरसे लीपै ॥ ८४ ॥

वहां ब्राह्मण और ज्योतिषीका पूजन करै, जितनी भूमिमें गृह बनानाहो उतनी भूमिको ॥ ८५ ॥ गृही पुरुष पंचगव्य सर्वौषधिका जल पंचामृत इनसे सींचै और फिर शुद्धिकी कामनासे भूसंस्कारोंको करै ॥८६॥ और उस जगह पूर्व सुवर्ण जिसके गर्भमें और फलोंसे युक्त समस्त धान्योंसहित तथा समस्त गंध और सर्वौषधिसहित८७पुष्पोंसे सुशोभित रक्त जिसका वर्ण वस्त्र जिसके ऊपर लिपटाहो मंत्रोंसे अभिमंत्रित ऐसे घटका प्रथम स्थापन करके उसमें नवग्रह वरुण॥८८॥ पर्वत वन कानन नदी नद कर्णिका और समुद्रोंसहित पृथिवीका आवाहनकरके॥८९॥

तत्रसंपूजयेद्विप्रान्दैवज्ञश्चतथैवच ॥ यावत्प्रमाणाभूर्ग्राह्यागृहार्थन्तावतागृही ॥ ८५ ॥ पञ्चगव्यौषधिजलैस्तथापञ्चामृतेनच ॥ सेचयेच्छुद्धिकामेनभूसंस्कारांश्चकारयेत् ॥ ८६ ॥ तत्रकुम्भंनिवेश्यादौहेमगर्भंफलैर्युतम् ॥ सर्वधान्ययुतंसर्वगन्धिसर्वौषधैर्युतम् ॥ ८७ ॥ पुष्पान्वितंरक्तवर्णंसवस्त्रंमंत्रमंत्रितम् ॥ तस्मिन्नावाहयेत्खेटान्वरुणप्रमुखांस्तथा ॥ ८८ ॥ तस्मिन्नावाहयेद्भूमिंसशैलवनकाननाम् ॥ नदीनदसमायुक्ताङ्कर्णिकाभिश्चभूषिताम् ॥ ८९ ॥ सागरैर्वेष्टितान्तंत्रपूजयेत्प्रार्थयेत्ततः ॥ दिक्पालान्कुलदेवींश्चदेवान्यक्षांस्तथोरगान् ॥ ९० ॥ बलिञ्चदत्त्वाविधिवज्जलायेतिजपेत्ततः ॥ षड्ऋचंरुद्रजापञ्चकारयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ९१ ॥ तस्मिन्संपूजयेद्वास्तुंप्रार्थयेत्पूजयेत्ततः ॥ ॐनमोभगवतेवास्तुपुरुषायकपिलायच ॥ ९२ ॥ पृथ्वीधरायदेवायप्रधानपुरुषायच ॥ सकलगृहप्रासादपुष्करोद्यानकर्मणि ॥ ९३ ॥ गृहारंभप्रथमकालेसर्वासिद्धिप्रदायक ॥ सिद्धदेवमनुष्यैश्चपूज्यमानोदिवानिशम् ॥ ९४ ॥

पूजनकरैं दिक्पाल कुलदेवी देव यक्ष और उरग इनकी प्रार्थना और बलिको देकर जलाय इस मंत्रको जपै और षड्ऋच और रुद्री इनका विधिपूर्वक जप करै ॥९०॥९१॥ फिर उसी घटमें वास्तुकी पूजा और प्रार्थना करे और ॐनमोभगवते वास्तुपुरुषाय कापिलाय॥९२॥पृथ्वीधराय देवाय प्रधानपुरुषायच इसप्रकार कहकर नमस्कार करै और कहै कि समस्त गृह महल पुष्कर उद्यान आदिकर्म और गृहारंभके प्रथम समयमें

सब सिद्धियोंके देनेवाला और सिद्ध देवता मनुष्य ये जिसकी दिन रात सेवा करतेहैं ॥९४॥ ऐसे वास्तुपुरुष आप इस समय इस प्रजापति क्षेत्रमें आनकर स्थितहो और यहां आकर पूजाको ग्रहण करो और वरको दो ॥ ९५ ॥ हेवास्तुपुरुष! हे भूमिरूपीशय्यापर सोनेमें तत्पर हे प्रभो! आपको नमस्कार है. मेरे गृहको धन आन्य आदि करिकै समृद्ध (युक्त) सदैव करो ॥ ९६ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करके फिर भूमिमें पिष्टी वा चांवलोंसे नागरूप धारण किये हुये समस्त वास्तुपुरुषको लिखै ॥ ९७ ॥ और वेदके मंत्रोंसे आवा

गृहस्थानेप्रजापतिक्षेत्रेऽस्मिन्स्तिष्ठसाम्प्रतम् ॥ इहागच्छइमांपूजांगृहाणवरदोभव ॥ ९५ ॥ वास्तुपुरुषनमस्तेऽस्तुभूमिशय्यारतप्रभो ॥ मद्गृहन्धनधान्यादिसमृद्धंकुरुसर्वदा ॥ ९६ ॥ इतिप्रार्थ्यततोभूमौसंलिखेद्वास्तुपूरुषम् ॥ पिष्टातकैस्तंडुलैर्वानागरूपधरंविभुम् ॥ ९७ ॥ आवाहयेद्वेदमन्त्रैः पूजयेच्चस्वशक्तितः ॥ आवाहयाम्यहंदेवंभूमिस्थंचअधोमुखम् ॥ ९८ ॥ वास्तुनाथं जगत्प्राणंपूर्वस्यांप्रथमाश्रितम् ॥ विष्णोरराटेतिमंत्रेणपूजयेत्सर्पनायकम् ॥ ९९ ॥ नमोस्तुसर्पेभ्यइतिवापूजयेच्चस्वशक्तितः ॥ कुक्षिप्रदेशेनिखनेद्वास्तुनागस्यमन्त्रतः ॥ १०० ॥ त्रिषुत्रिषुचमासेषुनभस्यादिषुचक्रमात् ॥ यद्दिङ्मुखोवास्तुनरस्तन्मुखं सदनंशुभम् ॥ १०१ ॥

हन करै और अपनी शक्तिके अनुसार पूजन करै कि भूमिके विषै स्थित और अधोमुख वास्तुका मैं आवाहन करताहूं ॥ ९८ ॥ जो वास्तुके नाथहैं जो जगत्के प्राणहैं और जो प्रथम पूर्वदिशामें स्थितहैं ऐसे सबके स्वामी वास्तुपुरुषका विष्णोरराट इस मंत्रसे पूजन करै ॥ ९९ ॥ अथवा अपनी शक्तिके अनुसार नमोस्तु सर्पेभ्यः इस मंत्रसे पूजनकरै और पूर्वोक्त मंत्रको पढकर वास्तुनागकी कुक्षिके स्थानपर खननकरै (खोदे) ॥ १०० ॥ और भाद्रपद आदि तीन तीन मासोंमें क्रमसे पूर्व आदि दिशामें वास्तुपुरुषका मुख होताहै

जिसादिशाको वास्तुपुरुषका मुखहो उसीमें गृहका मुख शुभ होताहै ॥ १०१ ॥ अन्यदिशाको है मुख जिसका ऐसा घर दुःखशोक भयका देनेवाला होताहै और वृषकी संक्रान्तिसे तीन तीन संक्रांतियोंमें वेदीके विषै और सिंहकी संक्रांतिसे तीन २ संक्रांतियोंमें गृहके विषै॥१०२॥और मीनकी संक्रातिसे तीन२ सक्रांतियोंमें देवमंदिरके विषै और मकरकी संक्रांतिसे तीन २ संक्रातियोंमें तडागके विषै गिने तो पूर्व आदि दिशाओंमें शिरकरके वास्तुनाग तीन २ संक्रांतियोंमें सोतेहैं ॥ १०३ ॥ भाद्रपद आदि तीन २ महीनोंमें वास्तु पुरुषके वामपार्श्वके क्रोड (भाग) में घरका बनाना शुभहोताहै और पूर्वोक्त क्रमसे ईशानदिशासे कालसर्प चलताहै ॥ १०४ ॥

अन्यादिङ्मुखगेहन्तुदुःखशोकभयप्रदम् ॥ वृषार्कादित्रिकंवेद्यांसिंहादिगणयेद्गृहे ॥ १०२ ॥ देवालयेचमीनादितडागेमकरादिकम् ॥
पूर्वादिषुशिरः कृत्वानागश्शेतेत्रिभिस्त्रिभिः ॥ १०३ ॥ भाद्राद्यैर्वामपार्श्वेचतस्यक्रोडेगृहंशुभम् ॥ ईशानतः कालसर्पसंहारेणप्रसर्पति
॥१०४॥विदिक्षुशेषवास्तोश्चमुखन्त्याज्यश्चतुर्थकम्॥खनेच्चसौरमानेनव्यत्ययश्चाशुभंभवेत् ॥ १०५॥ चतुस्त्रिकादिशाला
नामेषदोषोनविद्यते॥एकंनागोडुसंशुद्ध्यामंदिरारम्भणंशुभम् ॥ १०६॥ अधोमुखेचनक्षत्रेशुभेह्निशुभवासरे॥चन्द्रतारानु
कूल्येचखननारम्भणंशुभम्॥१०७॥त्रिषुत्रिषुचमासेषुमार्गशीर्षादिषुक्रमात्॥पूर्वदक्षिणतोयेशपौलस्त्याशांक्रमादगुः१०८

ई	वायु	नैं०	अग्नि
भा	मा	फा	ज्ये
कु	पौ	चै	आ
का	मा	वै	श्रा

ईशान आदिविदिशाके मध्यमें वास्तुपुरुषका मुख जो चौथी विदिशामें है वह त्यागने योग्यहै और संक्रांतिके प्रमाणसे सौरमानकर खनन (खोदै) करै और विपरीत रीतिसे करै तो अशुभ होताहै ॥ १०५ ॥ जो घर चौथे वा तीसरे बनाया जाय उसमें यह दोष नहीं वास्तुनाग और नक्षत्रकी भली प्रकार शुद्धिसे एकवार मंदिरका आरंभ करना शुभ होताहै ॥ १०६ ॥ अधोमुख नक्षत्र शुभदिन और शुभवासरमें और चंद्रमा और तारागण इनकी अनुकूलतामें खनन करना शुभहोताहै ॥ १०७ ॥ और मार्गशिरसे

लेकर तीनतीन मासोंमें पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशाओंमें क्रमसे राहु रहताहै ॥ १०८ ॥ राहुकी दिशामें स्तंभके रखनेसे वंशका नाश और द्वार चढानेसे वह्निका भय और गमन करनेमें कार्यकी हानि और गृहके आरंभमें कुलका क्षय होताहै ॥ १०९ ॥ सूर्यवारसे लेकर क्रमसे नैर्ऋति उत्तर अग्नि पश्चिम ईशान दक्षिण वायव्य इन दिशाओंमें राहु वसताहै इन दिशाओंके चक्रमें मुखके विषे गमन और घरका बनाना उत्तमहै ॥ ११० ॥ राहुके शिरके स्थानमें खनन करै तौ आत्माका नाश और पृष्ठभागमें खनन करनेसे माता

स्तंभेवंशविनाशःस्याद्द्वारे वह्निभयंभवेत् ॥ गमनेकार्यहानिःस्याद्गृहारम्भेकुलक्षयः ॥ १०९ ॥ रक्षःकुवेराग्निजलेशया म्यवायव्यकाष्ठासुचसूर्य्यवारात् ॥ वसेदगुश्चाष्टसुदिग्भचक्रेमुखेविवर्ज्योगमनंगृहंच ॥ ११० ॥ शिरःखनेविनाशः स्यान्माता पित्रोश्चपृष्ठके ॥ स्त्रीपुत्रनाशः पुच्छेतुगात्रेपुत्रविनाशनम् ॥ १११ ॥ कुक्षौसर्वसमृद्धिः स्याद्धनधान्यसुतागमः ॥ सिंहादिषुचमासे षुआग्नेय्यांकुक्षिमाश्रितः ॥ ११२ ॥ वृश्चिकादिषुईशान्यांकुम्भादिषुचवायुदिक्‌ ॥ वृषादिषुचनैर्ऋत्यमुखंपुच्छंनशोभनम् ॥ ११३ ॥ कृत्तिकाद्यंसप्तपूर्वेमघाद्यंसप्तदक्षिणे ॥ मैत्राद्यंपश्चिमे सप्तधनिष्ठाद्यन्तथोत्तरे ॥ ११४ ॥

पिताका नाश और पुच्छमें खनन करनेसे स्त्रीपुत्रका नाश, राहुगात्रमें खनन करनेसे पुत्रका नाश होताहै ॥ १११ ॥ कुक्षिमें खनन करने से संपूर्ण ऋद्धि बढतीहै और धन पुत्रोंका आगमन होताहै सिंह आदि मासोंके विषै अग्निकोणमें रहताहै ॥ ११२ ॥ और वृश्चिक आदि मासोंमें ईशानमें और कुंभ आदि मासोंमें वायुकोणमें और वृषआदि मासोंमें नैर्ऋति कोणमें राहुका मुख होताहै और राहुको पुच्छ शोभन नहीं होती ॥ ११३ ॥ कृत्तिकाआदि सात नक्षत्र पूर्वमें, मघा आदि सात नक्षत्र दक्षिणमें, अनुराधा आदि सात नक्षत्र पश्चि

ममें धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र उत्तरमें रहतेहैं ॥ ११४ ॥ चंद्रमा अग्रभागमें होय तो स्वामीको भय होताहै और पीठपर चंद्रमा होय तो कर्मका कर्ता नष्ट होताहै दक्षिणमें होय तो धनको देतेहैं वामभागमें चंद्रमा होय तो स्त्री और सुखसंपदाओंको देताहै ॥ ११५ ॥ गृहमें मिले हुए नक्षत्रोंमें जिन नक्षत्रोंमें चंद्रमा होय उन सातों नक्षत्रोंमें शलाका कृत्तिका आदि नक्षत्रोंके क्रमसे रक्खै ॥ ११६ ॥ चंद्रमा और वास्तुका नक्षत्र अग्र और पृष्ठभागमें श्रेष्ठ नहीं होता लग्न और नक्षत्रसे विचारा हुआ यह चंद्रमा शीघ्र फलको देताहै ॥ ११७ ॥ गृहका चंद्रमा पीठपर हो वा सन्मुख होयतो शुभ नहीं होता वाम और दक्षिण भागका चंद्रमा वास्तुकर्ममें श्रेष्ठ होताहै ॥ ११८ ॥

अग्रेचन्द्रेस्वामिभयङ्कर्मकर्ताचपृष्ठके ॥ दक्षिणेचधनन्दद्युर्वामेस्त्रीसुखसंपदः ॥ ११५ ॥ गृहोपलब्धऋक्षेषुयत्रऋक्षेषुचन्द्रमाः ॥ शलाकासप्तकेदेयंकृत्तिकादिक्रमेणच ॥ ११६ ॥ ऋक्षश्चन्द्रस्यवास्तोश्चअग्रेपृष्टेनशस्यते ॥ लग्नाहक्षाद्विचार्य्योसौचन्द्रः सद्यः फलप्रदः ॥ ११७ ॥ गृहचन्द्रेसम्मुखस्थेपृष्ठस्थेनशुभंगृहम् ॥ वामदक्षिणगश्चन्द्रः प्रशस्तोवास्तुकर्मणि ॥ ११८ ॥ लोहदण्डं चसम्पूज्यभैरवञ्चतथैवच ॥ तद्दिक्पालन्नमस्कृत्यपृथिवीञ्चतथैवच ॥ ११९ ॥ शिवोनामेतिमन्त्रेणलोहदण्डंप्रपूजयेत् ॥ निवर्त यामीत्यृचावैध्यायेदीशमुमापतिम् ॥ १२० ॥ बलेनलोहदण्डेननिखनेद्वास्तुपूरुषम् ॥ यावत्प्रमाणांभुवमेतितावत्तस्यस्थितिर्भवे त् ॥ १२१ ॥ तंलोहदण्डंवस्त्राक्तंब्राह्मणायनिवेदयेत् ॥ पुत्राद्यंविषमेङ्गुल्येसमेङ्गुल्ये तुकन्यकाम् ॥ १२२ ॥

लोहदण्ड (फावला) और भैरव इनको भली प्रकार पूजकर और दशों दिग्पाल और भूमिको नमस्कार करिकै ॥ ११९ ॥ शिवोनामा० इस मंत्रसे लोहदण्डका भली प्रकार पूजन करै और निर्वर्तयामि० इस मंत्रसे पार्वतीके पति महादेवका भलीप्रकार ध्यान करै ॥ १२० ॥ और लोहके दण्डको लेकर जोरसे वास्तुपुरुषका खनन करै वह लोहका दण्ड जितना अधिक भूमिमें प्रविष्टहो जाय उतने कालतक उस गृहकी स्थिति होतीहै ॥ १२१ ॥ वस्त्रसे ढकेहुए उस लोहदण्डको ब्राह्मणके प्रति निवेदन करै यदि लोहदण्डकी विषम अंगुलिहों

तो पुत्रोंको देताहै और सम अंगुलिहों तो कन्याओंको देताहै ॥ १२२ ॥ और जिस लोहदण्डकी न सम अंगुलिहों नविषमहों वह दुःख दायी होताहै उस वास्तुपुरुषके खननसमयमें शुभ वाणी और मंगल और सुन्दर वस्तुका दर्शन ॥ १२३ ॥ और वेद और गीतकी ध्वनि और पुष्पफलका लाभ वेणु वीणा मृदंग इनका सुनना और देखना शुभ होताहै ॥ १२४ ॥ दही दूध कुशा इन द्रव्योंका दर्शन कल्याणकारी होताहै और सुवर्ण चांदी तामा शंख मोती मूंगा ॥ १२५ ॥ मणि रत्न बैडूर्य स्फटिक सुखकी दाता मट्टी और गरुडका

निर्दिशेत्तुतयोर्मध्येलोहखण्डार्त्तिदन्तथा ॥ तस्मिन्कालेशुभांवाणीम्मङ्गल्यंचारुदर्शनम् ॥ १२३ ॥ वेदगीतध्वनिंपुष्पफलला भन्तथैवच ॥ वेणुवीणामृदङ्गानांश्रवणंदर्शनंशुभम् ॥ १२४ ॥ दधिदूर्वाङ्कुशाश्चेतिकल्याणंद्रव्यदर्शनम् ॥ सुवर्णरजतन्ताम्रं शंखमौक्तिकविद्रुमान् ॥ १२५ ॥ मणयोरत्नवैडूर्य्यस्फाटिकंसुखदामृदः ॥ गारुडञ्चफलंपुष्पंमृन्मयंगुल्ममेवच ॥ १२६ ॥ खाद्या निकन्दमूलानिसाभूमिः सुखदायिनी ॥ कण्टकञ्चतथासर्पखर्जूरंदर्दुमेवच ॥ १२७ ॥ वृश्चिकाश्मकवज्रञ्चविवरंलोहमुद्गरम् ॥ केशा ङ्गारकभस्मञ्चचर्मास्थिलवणन्तथा ॥ १२८ ॥ रुधिरञ्चतथामज्जारसाक्तातानशोभनाः ॥ ॥ इतिवास्तुशास्त्रेभूम्यादिपरीक्षालक्षण वर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

फल पुष्प और मिट्टीका गुल्म (गुच्छा) ॥ १२६ ॥ और भक्षण करनेयोग्य कंदमूल इनका दर्शन होयतो वह भूमि सुख देनेवाली होती है और कंटक सांप खजूर दर्दु ॥१२७॥ विच्छु पत्थर वज्र छिद्र लोहका मुद्गर केश अंगार भस्म चर्म अस्थि लवण ॥१२८॥ और रुधिर मज्जा इनका दर्शन होय तो और जो भूमि रससे युक्त होय इतनी भूमि श्रेष्ठ नही होती ॥ ॥ इति वास्तुशास्त्रे भूम्यादिपरीक्षालक्षणे पण्डित मिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतिसहिते प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इसके अनंतर स्वप्नआदिकी विधिको कहतेहैं गणेश लोकपाल विशेषकर पृथिवी और ग्रह इनका कलशके ऊपर मंत्रशास्त्रके अनुसार पूजनकरके ॥ १२९ ॥ सामर्थ्यके अनुसार सामग्रीयोंका संचय करिके शुद्ध देशमें कुशासनपर बैठे और भूमिमें शुद्ध वस्त्रके ऊपर शिरके स्थानमें लक्ष्मीका पूजन भली प्रकार करै ॥ १३० ॥ और पद्मा भद्रकाली इनको बली देकर और सर्व बीज सर्व रत्न और सर्वौषधियोंसे युक्त ऐसे घटोंको ॥ १३१ ॥ अपने दोनों तटोंमें रक्खे जो रमणीक नवे और शुद्ध जलसे युक्तहों और पुष्पोंका संचय करिकै और स्वस्ति

अथस्वप्नविधिः ॥ गणेशंलोकपालांश्चपृथिवींचविशेषतः ॥ ग्रहांश्चकलशेपूज्ययथामन्त्रंयथोदितम् ॥ १२९ ॥ यथाकल्पमुपस्कृत्यशुचौदेशेकुशासनः ॥ भूमौशुद्धेनवस्त्रेणशीर्षेसंपूजयेच्छ्रियम् ॥ १३० ॥ पद्माश्चभद्रकालीश्चबलिन्दत्त्वातथैवच ॥ सर्वबीजान्वितान्कुंभान्सर्वरत्नौषधैर्युतान् ॥ १३१ ॥ कृत्वोभयतटेरम्यान्नवाञ्छुद्धोदकान्वितान् ॥ कल्पयित्वासुमनसः कृत्वास्वस्त्ययनादिकम् ॥ १३२ ॥ सावधानःशुचिः सूक्ष्मक्षौमवासाजितेन्द्रियः ॥ प्राङ्मुखोरुद्ररुद्रेतिहृदिरुद्रविधिंजपेत् ॥ १३३ ॥ षडृचंरुद्रजापञ्चकारयेत्प्रयतः शुचिः ॥ १३४ ॥ प्रकारांतरम् ॥ दुकूलमुक्तामणिभृन्नरेन्द्रः समंत्रिदैवज्ञपुरोहितोंतः ॥ स्वदेवतागारमनुप्रविश्यनिवेशयेत्तत्रदिगीश्वरार्चाम् ॥ १३५ ॥ अभ्यर्च्यमन्त्रैस्तुपुरोहितस्तामतश्चतस्यांभुविसंस्कृतायाम् ॥ दर्भैश्चकृत्वान्तरमक्षतैस्तान्किरेत्समन्तात्सितसर्षपांश्च ॥ १३६ ॥

वाचनको करिकै ॥१३२॥ सावधान और शुद्ध और सूक्ष्म रेशमके वस्त्रोंको धारण किये जितेन्द्रिय हुआ पुरुष पूर्वाभिमुख होकर रुद्र रुद्र इस प्रकार कहकर हृदयमें रुद्रविधिको जपै ॥ १३३ ॥ और छः ऋचाहैं जिसमें ऐसे रुद्रजपको सावधान होकर करावे ॥ १३४ ॥ और दूसरा प्रकार यह है कि दुकूल मोती इनको धारण करके मंत्री ज्योतिषी पुरोहित सहित राजा अपने देवताके मन्दिरमें प्रवेश करिके वहां दिशाओंके ईश्वरोंकी पूजाका स्थापन करे ॥ १३५ ॥ और पुरोहित मंत्रोंसे उस पूजाको करिके उस संस्कृत भूमिमें कुशाओंके

24

मध्यमें किये हुए अक्षत और सफेत सरसोंको बखेरैं ॥ १३६ ॥ ब्राह्मी दूब नागयूथी इनको भी बखेरै फिर राजा तकीया लगाकर पुष्प फलोंसहित पूर्ण घटोंको क्रमसे चारौं दिशाओंको रखकर शयन करै ॥ १३७ ॥ और यज्जाग्रतो दैवमुदेतिदूरम्० इत्यादि मंत्रोंको सावधानीसे पढता हुआ और एकवार लघु भोजन करता और दक्षिणपार्श्वसे सोता हुआ राजा गुरुकी आज्ञाके अनुसार स्वप्नकी परीक्षाकरै ॥ १३८ ॥ हे शंभो त्रिनेत्र रुद्र वरके दाता वामन विरूप स्वप्नके अधि

ब्राह्मींसदूर्वामथनागयूथिङ्कृत्वोपधानंशिरसिक्षितीशः ॥ पूर्णान्घटान्पुष्पफलान्वितांस्तानाशासुकुर्य्याच्चतुरः क्रमेण ॥ १३७ ॥
यज्जाग्रतोदूरमुदैतिदैवमावर्त्यमन्त्रान्प्रयतस्तथैतान् ॥ लघ्वेकभुग्दक्षिणपार्श्वशायीस्वप्नंपरीक्षेतयथोपदेशम् ॥ १३८ ॥ नमः शम्भो
त्रिनेत्रायरुद्रायवरदायच ॥ वामनायविरूपायस्वप्नाधिपतयेनमः ॥ १३९ ॥ भगवन्देवदेवेशशूलभृद्वृषवाहन ॥ इष्टानिमेसमाच
क्ष्वस्वप्नेसुप्तस्यशाश्वतम् ॥ १४० ॥ एकवस्त्रः कुशास्तीर्णेसुप्तः प्रयतमानसः ॥ निशान्तेपश्यतिस्वप्नंशुभंवायदिवाशुभम् ॥ १४१ ॥
चतुरस्रांसमांशुद्धांभूमिङ्कृत्वाप्रयत्नतः ॥ तस्मिन्दिक्साधनङ्कार्यंवृत्तमध्यगतेदिशि ॥ १४२ ॥ पूर्वप्लवेभवेल्लक्ष्मीराग्नेय्यांशोकमा
दिशेत् ॥ याम्यांयातियमद्वारंनैर्ऋतेचमहाभयम् ॥ १४३ ॥

पति जो आपहै उनको नमस्कारहै ॥ १३९ ॥ हे भगवन् हेदेवदेवेश हेशूलधारी हे वृषवाहन सोतेहुए मुझे सदैव वांछित फल-को दो ॥ १४० ॥ एक वस्त्र धारण किये कुशाके आसनपर सावधान मनसे सोता हुआ राजा रात्रिके अन्तमें शुभ वा अशुभ स्वप्नको देखताहै ॥ १४१ ॥ चकोर समान शुद्ध भूमिको यत्नसे इकसार करके उसमें वृत्तके मध्यकी दिशामें दिशाका साधन करै ॥ १४२ ॥ पूर्वकी तरफ भूमिका निचान होय तो लक्ष्मी, अग्निकोणमें होय तो शोक, दक्षिणदिशामें होय तो मरण, नै-

र्ऋत दिशामें होय तो महाभय ॥ १४३ ॥ पश्चिममें होय तो कलह, वायव्य दिशामें होय तो मृत्युको, उत्तरको होय तो वंशकी वृद्धि, ईशानमें होय तो रत्नोंके संचयको कहै ॥ १४४ ॥ और जिस भूमिकी निचाई दिङ्मूढ हो अर्थात् किसी दिशाको नहो-यतो कुलका नाश और जो टेढी होय तो दरिद्रताको कहै अब समयकी शुद्धिको वर्णन करते हैं जो मनुष्य चैत्रमें नवीन गृहको बनवाताहै वह व्याधिको प्राप्त होताहै वैशाखमें धन और रत्नोंको और ज्येष्ठमें मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १४५ ॥ आषाढमें भृत्य और रत्नोंको और पशुओंके नाशको प्राप्त होताहै श्रावणमें मित्रके लाभको और भाद्रपदमें हानिको प्राप्त

पश्चिमेकलहङ्कुर्य्याद्वायव्याम्मृत्युमादिशेत् ॥ उत्तरेवंशवृद्धिः स्यादीशानेरत्नसञ्चयः ॥ १४४ ॥ दिङ्मूढेकुलनाशः स्याद्वक्रेदारिद्र्यमादिशेत् ॥ अथसमयशुद्धिः ॥ चैत्रेव्याधिमवाप्नोतियोनवङ्कारयेद्गृहम् ॥ वैशाखेधनरत्नानिज्येष्ठेमृत्युस्तथैवच ॥ १४५ ॥ आषाढेभृत्यरत्नानिपशुवर्जमवाप्नुयात् ॥ श्रावणेमित्रलाभन्तुहानिंभाद्रपदेतथा ॥ १४६ ॥ युद्धंचैवाश्विनेमासिकार्तिकेधनधान्यकम् ॥ धनवृद्धिर्मार्गशीर्षेपौषेतस्करतोभयम् ॥ १४७ ॥ माघेत्वग्निभयम्विन्द्याल्लक्ष्मीर्वृद्धिश्चफाल्गुने ॥ गृहसंस्थापनंसूर्य्येमेषस्थेशुभदंभवेत् ॥ १४८ ॥ वृषस्थेधनवृद्धिः स्यान्मिथुनेमरणंभवेत् ॥ कर्कटेशुभदंप्रोक्तंसिंहेभृत्यविवर्द्धनम् ॥ १४९ ॥ कन्यारोगन्तुलासौख्यंवृश्चिकेधनधान्यकम् ॥ कार्मुकेचमहाहानिर्मकरेस्याद्धनागमः ॥ १५० ॥

होताहै ॥ १४६ ॥ आश्विनमासमें युद्धको कार्तिकमें धन धान्यको मार्गशिरमें धनकी वृद्धि पौषमासमें चौरसे भयको प्राप्त होताहै ॥ १४७ ॥ माघ मासमें अग्निका भय फाल्गुन मासमें लक्ष्मी और वंशकी वृद्धिको प्राप्त होताहै मेषके सूर्यमें गृह-का स्थापन होय तो शुभदायी होता है ॥ १४८ ॥ वृषके सूर्यमें धनकी वृद्धि मिथुनके सूर्यमें मरण कर्कके सूर्यमें गृह सुख का दाता सिंहके सूर्यमें भृत्योंकी विशेषकर वृद्धि होतीहै ॥ १४९ ॥ कन्यामें रोग तुलमें सुख वृश्चिकमें धनधान्य धनुषमें

महाहानि मकरमें धनका आगम होताहै ॥ १५० ॥ कुंभमें रत्नोंका लाभ और मीनमें गृहका आरंभ करै तौ भयानक स्वप्न होतेहैं और धन मीन मिथुन कन्याके सूर्य ये मास दोषके दाता कहेहैं ॥ १५१ ॥ ज्येष्ठ कार्तिक माघ और सिंह ये संक्रांतिके मानसे शोभन कहेहैं और फाल्गुन माघ वैशाख और श्रावण और आश्विन ॥ १५२ ॥ और कार्तिकमें गृहका बनाना पुत्र पौत्र और धनको देताहै और निषिद्धकालोंमें भी अपने अनुकूल शुभ दिनमें ॥ १५३ ॥ तृण काष्ठ गृहके आरंभमें मासका दोष नहीं

कंभेतुरत्नलाभःस्यान्मीनेस्वप्नंभयावहम् ॥ चापमीननृयुक्कन्यामासा दोषावहाः स्मृताः ॥ १५१ ॥ ज्येष्ठोर्जमाघसिंहाख्याः सौरमानेतुशोभनाः ॥ मासेतपस्येतपसिमाधवेनभसित्विषे ॥ १५२ ॥ ऊर्जेचगृहनिर्माणंपुत्रपौत्रधनप्रदम् ॥ निषिद्धेष्वपिकाले षुस्वानुकूलेशुभेदिने ॥ १५३ ॥ तृणदारुगृहारंभेमासदोषोनविद्यते ॥ पाषाणेष्टयादिगेहानिनिन्द्यमासेनकारयेत् ॥ १५४ ॥ निन्द्यमासेपिचन्द्रस्यमासेनशुभदंगृहम् ॥ गोचराष्टकवर्गाभ्यांवामवेधंविचिन्तयेत् ॥ १५५ ॥ दशान्तरदशादीनांविचारश्चात्र कर्मणि ॥ गुरुशुक्रवलेविप्रान्सूर्यभूमिजयोस्तथा ॥ १५६ ॥ शशिसौम्यवलेसौरेवर्णानुक्रमपूर्वशः ॥ गृहारंभंप्रकुर्वीतवर्ण नाथवलेसति ॥ १५७ ॥

कहाहै और पाथर ईट आदिके घरोंको निन्दित मासमें नकरावै ॥ १५४ ॥ और निंदित मासमें भी चंद्रमाके माससे गृह शुभदायी होताहै और गृहगोचर और अष्टकवर्गोंसे वामवेधकी विशेषकर चिन्ता करै ॥ १५५ ॥ और इस गृहारम्भकर्ममें भी दशा और अन्तर्दशाकी विशेषकर चिन्ताकरै और गुरु और शुक्रके बलमें ब्राह्मण सूर्य मंगलके बलमें क्षत्रिय ॥ १५६ ॥ सोम और बुधके बलमें वैश्य और शनैश्चरके बलमें [illegible] होनेपर गृहका आरंभ करै ॥ १५७ ॥

और सूर्य चंद्रमाका बल सब वर्णोंको कहाहै विषम राशिका सूर्य होय तो स्वामीको और चंद्रमाका बल होय तो स्त्रीको पीडा होतीहै ॥ १५८ ॥ और विषमराशिके शुक्रसे लक्ष्मीका नाश और जीव (बृहस्पति) से सुखकी संपदाओंका नाश बुधसे पुत्रपौत्रोंका नाश मंगलसे भाई बांधवोंको पीडा होतीहै ॥ १५९ ॥ और शनैश्चरसे दासवर्गोंको पीडा होतीहै इसमें संशय नही और विशेषकर सूर्यके बलमें बुद्धिमानोंने गृहका आरंभ कहाहै ॥१६०॥ सब वर्णोंको सूर्यकी शुद्धि कहीहै दशाका स्वामी और वर्णका स्वामी बलहीन होय ॥ १६१ ॥ और पीडित नक्षत्रपर सूर्य होय तो कदाचित् गृहका आरंभ न करै. जन्मके सूर्यमें उदरका रोग, दूसरेमें अर्थका नाश ॥१६२॥ तीसरेमें धनका लाभ, चौ

सर्वेषामपिवर्णानांसूर्यचंद्रबलंस्मृतम् ॥ विषमस्थेरवौस्वामीपीड्यतेगृहिणीविधौ ॥ १५८ ॥ शुक्रेणपीड्यतेलक्ष्मीर्जीवेनसुखसंपदः ॥ बुधेनपुत्रपौत्राश्चभौमेनभ्रातृबान्धवाः ॥ १५९ ॥ सौरेणदासवर्गाश्चपीड्यंतेनात्रसंशयः ॥ विशेषेणतुसूर्यस्यबलेप्रोक्तंगृहंबुधः ॥ १६० ॥ सर्वेषामपिवर्णानांरविशुद्धिर्विधीयते ॥ दशापतौहीनबलेवर्णनाथेतथैवच ॥ १६१ ॥ पीडितर्क्षगतेसूर्य्येन विदध्यात्कदाचन ॥ प्रथमेकोष्ठरोगंचद्वितीयेचार्थनाशनम् ॥ १६२ ॥ तृतीयेधनलाभंचचतुर्थेभयदोरविः ॥ पञ्चमेपुत्रनाशाय शत्रुनाशायशत्रुगे ॥ १६३ ॥ स्त्रीकष्टंसप्तमेसूर्येमृत्युश्चाष्टमगेहगे ॥ नवमेधर्मनाशायदशमेकर्मसंयुतिः ॥ १६४ ॥ एकादशेभवेल्लक्ष्मीर्द्वादशेचधनक्षयः ॥ पुत्रेद्वितीयेद्यूनेचधर्मेमध्यबलोरविः ॥ १६५ ॥ द्वितीयपुत्राङ्कगतोविश्वाहात्परतः शुभः ॥ अस्तगानीचराशिस्थाः परराशौपरैर्जिताः ॥ १६६ ॥ वृद्धस्थाबालभावस्थावक्रगाश्चातिचारगाः ॥ रिपुदृष्टिवशंयाताउल्कापातेनदूषिताः ॥१६७॥

थेमें भयका दाता होताहै पांचमेंमें पुत्रका नाश छठेमें शत्रुका नाश ॥१६३॥ सातमेंमें स्त्रीको कष्ट आठमेंमें मृत्यु, नवमेंमें धर्मका नाश दशमेंमें कर्मका योग होताहै ॥१६४॥ ग्यारमेंमें लक्ष्मी होतीहै और बारमेंमें धनका नाश होताहै पांचमें दूसरे द्यून (सातवें) और नौमें सूर्य होय तो मध्यबली होताहै ॥ १६५ ॥ दूसरे पांचमे नवमे स्थानका सूर्य त्रयोदश १३ दिनसे परै शुभ कहाहै अस्त हुये और नीच राशिके और परराशिके और अन्य गृहोंके जीतेहुए ॥ १६६ ॥ और वृद्धअवस्था और बालअवस्थामें स्थितहुए वक्री और अतिचारी औ

र शत्रुकी दृष्टिके वशमें प्राप्त हुए और उलकाके पातसे दूषित जो गृह हैं ॥ १६७ ॥ वे गृहके आरंभमें फल नहीं देते इससे उनका गृहके आरंभमें भली प्रकार पूजन करै स्वामीके हस्तप्रमाण वा ज्येष्ठी पत्नीके हाथसे ॥ १६८ ॥ और ज्येठे पुत्रके हाथसे वा कर्मकारके हाथसे अनामिकापर्यन्त हाथ होताहै और वह ऊपरको उठाये हुये मनुष्यका पांचमां भाग होताहै ॥ १६९ ॥ कनिष्ठिका वा मध्यमाके प्रमाणसै घरको बनवावै स्वामीके हस्तप्रमाण वा पत्नीके हस्तप्रमाणसे ॥ १७० ॥ मनुष्योंका घर पुरातन आचार्योंने

नफलन्तिग्रहागेहप्रारंभेतान्प्रपूजयेत् ॥ स्वामिहस्तप्रमाणेनज्येष्ठपत्नीकरेणच ॥ १६८ ॥ ज्येष्ठपुत्रकरेणापिकर्मकारकरेणच ॥ अनामिकान्तंहस्तः स्यादूर्द्ध्वबाहोःशरांशकः ॥ १६९ ॥ कनिष्ठिकामध्यमावाप्रमाणेनैवकारयेत् ॥ स्वामिहस्तप्रमाणेनज्येष्ठपत्नीकरेणच ॥ १७० ॥ गर्भमात्रंभवेद्गेहंनृणांप्रोक्तंपुरातनैः ॥ स्वामिहस्तप्रमाणेनगृहंकुर्य्यादतन्द्रितः ॥ १७१ ॥ हस्तादिरेणुपर्य्यन्तमयुग्मंयुग्ममेवच ॥ कृष्णपक्षेतिथिंषष्ठींगण्डान्तेरविसंक्रमे ॥ १७२ ॥ रविभौमदिनेविष्टयांव्यतीपातेचवैधृतौ ॥ मासदग्धंवारदग्धंतिथिंषष्ठींविवर्जयेत् ॥ १७३ ॥ अनुक्तेष्वेवधिष्ण्येषुनकर्त्तव्यंकदाचन ॥ क्रकचन्तिथिदग्धञ्चयोगानांवज्रसंज्ञकम् ॥ १७४ ॥ उत्पातैर्दूषितंमृक्षन्निसर्गन्दर्शसंज्ञकम् ॥ वज्रव्याघातशूलेषुव्यतीपातातिगण्डयोः ॥ १७५ ॥

गर्भमात्र कहाहै और स्वामीके हस्तप्रमाणसे सावधानीसे गृहको करै ॥ १७१ ॥ और हस्तसे लेकर रेणुपर्यंत अयुग्म वा युग्म गृहका प्रमाण होताहै. कृष्णपक्षकी षष्ठीतिथिको गण्डान्त और सूर्यके संगममें ॥ १७२ ॥ रविवार और भौम भद्रा व्यतीपात वैधृतिमें मासदग्ध वारदग्ध नक्षत्रको और षष्ठीतिथिको विशेषकर वर्जदे ॥ १७३ ॥ और शास्त्रमें नहीं कहे हुये नक्षत्रोंमें कदाचित् गृहको न करै क्रकचयोग दग्धातिथि वज्रयोग ॥ १७४ ॥ उत्पातोंसे दूषित नक्षत्र अमावास्या वज्र व्याघात शूल व्यतीपात अतिगंड ॥ १७५ ॥

विष्कंभ गंड परिघ इनसे वर्जित योगोंमें गृहका आरंभ कहाहै. स्वाती अनुराधा ज्येष्ठा गान्धर्व (धनिष्ठा) भग (पूर्वाफा०) रोहिणी॥१७६॥
इनमें स्तंभकी उचाई आदिको करै और अन्य नक्षत्र आदिको वर्जदे. गृहके विस्तारसे (चौडाई) गुणित दैर्घ्य (लम्बाई)को आठसे वि
भक्त करे (भागदे) ॥ १७७ ॥ जो शेषबचै वें आय ध्वज आदि होतेहैं, उनके ये आठ भेदहैं,, ध्वज धूम्र सिंह श्वान गौ गर्दभ हाथी काग ये
आठ प्रकारकी ध्वजा आदि होतेहैं ॥१७८॥ और इन आय ध्वजाआदियोंकी स्थिति होतीहै अपने स्थानसे पांचमें स्थानमें महान् वैर हो

विष्कंभगण्डपरिघंवर्जयोगेषुकारयेत् ॥ स्वातीमैत्रेथमाहेन्द्रेगान्धर्वेभगरोहिणे ॥१७६॥ स्तम्भोच्छ्रायादिकर्तव्यमन्यत्रपरिवर्जयेत्॥वि
स्तारेणहतंदैर्घ्यंविभजेदष्टभिस्ततः॥१७७॥यच्छेषंसंभवेदायोध्वजाद्यास्तेस्युरष्टधा॥ध्वजोधूम्रोहरिः श्वागौः खरेभौवायसोष्टमः॥१७८॥
पूर्वादिदिक्षुचाष्टानांध्वजादीनामपिस्थितिः ॥ स्वस्थानात्पञ्चमेस्थानेवैरत्वञ्चमहद्भवेत् ॥ १७९ ॥ विषमायः शुभः प्रोक्तः समायः
शोकदुःखदः ॥ स्वस्थानगाबलिष्ठाः स्युर्नचान्यस्थानगाः शुभाः ॥ १८० ॥ ध्वजः सिंहेतौचगजेह्येतेगविशुभप्रदाः ॥ वृषोनपूजि
तोह्यत्रध्वजः सर्वत्रपूजितः ॥ १८१ ॥ वृषसिंहगजाश्चैवपुटकर्पटकोटयोः ॥ द्विपः पुनः प्रयोक्तव्योवापीकूपसरःसुच ॥ १८२ ॥
मृगेन्द्रमासनेदद्याच्छयनेषुगजंपुनः ॥ वृषम्भोजनपात्रेषुछत्रादिषुपुनर्ध्वजम् ॥ १८३ ॥ अग्निवेश्मसुसर्वेषुगृहेवस्तूपजीविनाम् ॥
धूमंनियोजयेत्केचिच्छ्वानंम्लेच्छादिजातिषु ॥ १८४ ॥

ताहै ॥१७९॥ विषम आय (विस्तार) शुभ कहाहै और सम आय शोक और दुःखका दाता होताहै अपने स्थानके गृह बलिष्ठ होतेहैं और अन्य
स्थानके नहीं होते॥१८०॥ध्वज सिंह और हाथी गौ ये शुभदायी होतेहैं वृष (बैल) पूजित नहीं होता और ध्वजा सर्वत्र पूजित होतीहै ॥१८१॥
वृष सिंह गज ये पुट कर्पट और कोटमें और हाथी वापी कूप और तडागमें करना योग्यहै॥१८२॥सिंहकी ध्वजा आसनमें हाथीकी ध्वजा
शयनमें भोजनके पात्रोंमें वृषकी और छत्र आदिमें ध्वजाको बनवावै ॥१८३॥ और अग्निके सब स्थानोंमें और वस्त्रोंसे जो जीविका करतेहैं

उनके गृहोंमें धूमकी ध्वजाओंको बनवावै और कोई यह कहतेहैं कि म्लेच्छआदि जातीयोंमें श्वानकी ध्वजा बनावै ॥ १८४ ॥ वैश्य के गृहमें खरकी ध्वजा श्रेष्ठहै और शेषकुटीआदिमें काककी ध्वजा श्रेष्ठ है और वृष सिंह ध्वज ये प्रासाद पुर और वेश्म इनमें श्रेष्ठ होतेहैं ॥ १८५ ॥ गजायमें वा ध्वजायमें हाथीयोंका घर शुभ होताहै और ध्वजायमें अश्वोंका स्थान और खरायमें और वृषमें ॥ १८६ ॥ गजाय वा वृषध्वजमें पशुओंका स्थान उष्ट्रोंका गृह करवावै तो शुभदायी होता है ॥ १८७ ॥ शय्याके

खरोवैश्यगृहेशस्तोध्वांक्षः शेषकुटीषुच ॥ वृषसिंहध्वजाश्चापिप्रासादपुरवेश्मसु ॥ १८५ ॥ गजायेवांध्वजायेवागजानांसदनं शुभम् ॥ अश्वालयंध्वजायेचखरायेवृषभेपिवा ॥ १८६ ॥ उष्ट्राणांमन्दिरङ्कार्यङ्गजायेवावृषध्वजे ॥ पशुसद्मवृषायेचध्वजाये वाशुभप्रदम् ॥ १८७ ॥ शय्यासुवृषभः शस्तः पीठेसिंहः शुभप्रदः ॥ अमत्रच्छत्रवस्त्राणांवृषायेवाध्वजेपिवा ॥ १८८ ॥ पादुकोपानहौकार्यौसिंहायेप्यथवाध्वजे ॥ स्वर्णरूप्यादिधातूनामन्येषांतुध्वजःस्मृतः ॥ १८९ ॥ ब्राह्मणेषुध्वजः शस्तः प्रतीच्याङ्कारयेन्मुखम् ॥ सिंहश्चभूभृतांशस्त उदीच्याञ्चमुखंशुभम् ॥ १९० ॥ विशांवृषः प्रागवदनंशूद्राणांदक्षिणेगजः ॥ सर्वेषामेवचायानांध्वजः श्रेष्ठतमोमतः ॥ १९१ ॥

स्थानमें वृषराशि और पीठ (आसन) के स्थानमें सिंह शुभदायी होते हैं पात्र छत्र वस्त्र इनका स्थान वृषाय वा ध्वजमें श्रेष्ठ होताहै ॥ १८८ ॥ पादुका (खडाऊ) और उपानह ये दोनों वृषाय वा ध्वजमें करनें सुवर्ण और रौप्यआदि धातु और अन्य स्थानमें ध्वज श्रेष्ठ कहाहै ॥ १८९ ॥ ब्राह्मणोंमें ध्वज श्रेष्ठ होताहै और ब्राह्मण पश्चिमदिशाको गृहका मुख बनवावै क्षत्रियोंको सिंह श्रेष्ठ कहाहै और उत्तरको गृहका मुख श्रेष्ठ कहाहै ॥ १९० ॥ वैश्योंको वृष श्रेष्ठ कहाहै और पूर्वाभिमुख गृह शुभ होताहै और शूद्रोंको गजाय और दक्षिणा

भिमुख गृह श्रेष्ठ कहेहैं और सब आयोंमें गजका आय श्रेष्ठ कहाहै॥१९१॥क्षत्रिय और वैश्योंको ध्वजाय श्रेष्ठ कहाहै यह बृहस्पतिने कहाहै धर्मका अभिलाषी ब्राह्मण सिंहायको अवश्य त्यागदे ॥ १९२ ॥ सिंहके आयमें घरमें चण्डता और अल्पसन्तान होतीहै,ध्वजायमें पूर्ण सिद्धि और वृषाय पशुओंकी वृद्धि देताहै ॥ १९३ ॥ गजायमें समस्त संपदा बढतीहै शेष आय शोक और दुःखके दाता होतेहैं गृह के पिण्डको अर्थात् हाथोंकी संख्याको नौ ९ नौ ९ ॥ ६ ॥ ८ ॥ ३ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ॥ १९४ ॥ इनसे गुणने और क्रमसे,नाग ८ ॥

ध्वजायः क्षत्रियविशोः प्रशस्तोगुरुरब्रवीत् ॥ सिंहायः सर्वथात्याज्योब्राह्मणेनंवृषेप्सुना ॥ १९२ ॥ सिंहायेचण्डतागेहेअल्पापत्यः प्रजायते ॥ ध्वजायेपूर्णसिद्धिः स्याद्वृषायः पशुवृद्धिदः ॥ १९३ ॥ गजायेसंपदांवृद्धिः शेषायाः शोकदुःखदाः ॥ पिण्डेनवाङ्काङ्गग जवन्हिनागाष्टसागरैः ॥ १९४ ॥ नागैश्वगुणितेभक्तेक्रमादेतेपदार्थकाः ॥ नागाद्रिनवसूर्य्याष्टभातिथ्यृक्षखभानुभिः ॥ १९५ ॥ आयो वारोंशकोद्रव्यमृणमृक्षांतिथिर्युतिः ॥ आयुश्चाथगृहेशर्क्षगृहभैक्यंमृतिप्रदम् ॥ १९६ ॥ संपूर्णाः शुभदाह्येतेह्यसंपूर्णास्त्वनिष्टदाः ॥ धिष्ण्येचवसुभिर्भक्तेव्ययः स्याच्छेषकाङ्कके ॥ १९७ ॥ धनाधिकंगृहवृद्ध्यैनिर्द्धनायऋणाधिकम् ॥ व्ययान्वितेक्षेत्रफलेध्रुवा द्यक्षरसंयुते ॥ १९८ ॥

॥ ७ ॥ ९ ॥ १२ ॥ ८॥१२ ॥ १५ ॥ २७ ॥ १२० ॥ इनका भाग देनेपर ये पदार्थ क्रमसे होतेहैं ॥१९५॥ कि आय वार अंशक द्रव्य ऋण नक्षत्र तिथि युति और आयु और गृहके स्वामीका नक्षत्र और गृहका नक्षत्र एक होजाय तो गृह मृत्युका दाता होताहै ॥ १९६ ॥ ये संपूर्ण शुभके दाता और जो असंपूर्ण होय तो अनिष्टको देतेहैं और गृहमें ८ आठका भाग देनेपर जो शेष अंक रहै उसमें व्यय होताहै ॥ १९७ ॥ जिस घरमें धन अधिकहो उसमें वृद्धि और जिसमें ऋण अधिक हो उसमें निर्धनता होतीहै व्ययसे युक्त क्षेत्रके फलमें

ध्रुवआदि अक्षरोंको मिलाकर ॥ १९८ ॥ और तीनका भाग देकर शेषमें क्रमसे इन्द्र यम भूमिका स्वामी इनके अंशक होते हैं इंद्रके अंशमें पदवीकी वृद्धि और महान् सुख होताहै ॥ १९९ ॥ यमके अंशमें मरण और अनेक प्रकारके निश्चयसे रोग शोक होतेहैं राजाके अंशमें धन धान्यकी प्राप्ति और पुत्रोंकी वृद्धि होतीहै ॥ २०० ॥ और राशिकूट आदि संपूर्णकी चिन्ताभी गृहके आरंभमें करै दुसरी और बारमीं राशि गृह और गृहके स्वामीके होय तो निश्चयसे दरिद्रता होतीहै और त्रिकोण (९।५) में सन्तानका अभाव होताहै ॥ २०१ ॥ और ज षडष्टक (६।८) में धनका अभाव और विपरीत (८।६) में धन कहाहै और द्यून ७ में पुत्र स्त्रीका लाभ होताहै ॥ २०२ ॥ और ज

त्रिभिःशेषेक्रमादिन्द्रयमभूम्याधिपांशकाः ॥ इन्द्रांशेपदवीवृद्धिर्महत्सौख्यंप्रजायते ॥ १९९ ॥ यमांशेमरणंनूनंरोगशोकमनेकधा ॥ राजांशेधनधान्याप्तिः पुत्रवृद्धिश्चजायते ॥ २०० ॥ राशिकूटादिकंसर्वंदम्पत्योरिवचिन्तयेत् ॥ नैःस्वंद्विर्द्वादशेनूनंत्रिकोणेह्यन पत्यता ॥ २०१ ॥ षडष्टकेनैधनंस्याद्व्यत्ययेनधनंस्मृतम् ॥ द्यूनस्थितेपुत्रलाभंस्त्रीलाभश्चतथैवच ॥ २०२ ॥ जन्मतृतीयेच तथाधनधान्यागमोभवेत् ॥ दशमैकादशेचन्द्रोधनायुर्बहुपुत्रदः ॥ २०३ ॥ चतुर्थाष्टमरिष्फस्थोमृत्युपुत्रविनाशदः ॥ त्रिको णेत्वनपत्यंस्यात्केचिद्बन्धुगृहेशुभम् ॥ २०४ ॥ वदन्तिचन्द्रंमुनयोनैतन्ममनतंस्मृतम् ॥ अश्विन्यादित्रयंमेषेसिंहेप्रोक्तंमघा त्रयम् ॥ २०५ ॥ मूलादित्रितयश्चापेशेषराशिद्विकेद्विके ॥ सूर्य्यारवारराश्यंशाः सदावह्निभयप्रदाः ॥ २०६ ॥

न्मसे तीसरी राशिमें धन धान्यका आगमन होताहै दशमा और ग्यारमां चंद्रमा धन आयु और बहुत पुत्रोंको देताहै ॥ २०३ ॥ चौथा आठमां बारमां चंद्रमा मृत्यु और पुत्रोंके नाशको देताहै और त्रिकोण (९।५) में सन्तानका अभाव और कोई आचार्य त्रिकोण को बन्धु गृहमें शुभ ॥ २०४ ॥ चंद्रमाको मुनिजन कहतेहैं यह मेरा मत नहीं अश्विनीसे आदिलेकर तीन नक्षत्र मेषमें और मघा आदि तीन सिंहमें कहे हैं ॥ २०५ ॥ और मूलआदि तीन धनमें कहेहैं और शेषराशि दोदो नक्षत्रोंमें समझनी आदित्य और मंगलवार

और इनकी राशियोंके अंश सदैव अग्निके भयको देतेहैं ॥ २०६ ॥ और शेष गृहोंके वार अंश कर्ताकी इष्टसिद्धिको देतेहैं गृहका
आगत नक्षत्र यदि राशिरूपहो ॥ २०७ ॥ तो उसके नवांशके वशसे सदैव गृहको जानै विपत्तारा विपत्तिको देतीहै प्रत्यरि प्रति
कूल (उलटा) फलको देतीहै ॥ २०८ ॥ निधन नामकी तारा सर्वथा मरणको देतीहै वर्जने योग्य ताराओंमें इन ताराओंमें गृहानिर्मा
ण अशुभदायी होताहै ॥ २०९ ॥ प्रत्यरितारा महान् भयको देतीहै और तेईसमें नक्षत्रमें होय तो मृत्युको देतीहै निधन नामकी जो

शेषग्रहणाम्वारांशाः कर्त्तुरिष्टार्थसिद्धिदाः॥गृहस्यागतभंयत्तुतद्विराश्यात्मकंयदि॥२०७॥तन्नवांशवशात्तत्रज्ञातव्यंसर्वदागृहम्॥ विपत्प्र
दाविपत्ताराप्रत्यरीप्रतिकूलदा ॥ २०८॥ निधनाख्यातुयातारासर्वथानिधनप्रदा ॥ विवर्ज्यतारकास्वेतन्निर्माणमशुभप्रदम् ॥२०९॥
प्रत्यरिस्तूग्रभयदात्रिविंशर्क्षेतुमृत्युदा ॥ निधनाख्यातुयातारास्त्रीसुतार्तिप्रदायिनी ॥२१०॥ कुर्वन्नज्ञानतोमोहाद्दुःखभाग्व्याधिभाग्भ
वेत् ॥ तिथौरिक्तेदरिद्रत्वंदर्शेगर्भनिपातनम् ॥ २११ ॥ कुयोगेधनधान्यादिनाशः पातश्चमृत्युदः ॥ वैधृतिः सर्वनाशायनक्षत्रैक्येतथै
वच ॥ २१२ ॥ आयुर्विहीनेगेहेतुदुर्भगत्वम्प्रजायते ॥ नाडीवेधोनशुभदस्ताराऽरोगभयप्रदा ॥ २१३ ॥ गणवैरेपुत्रहानिर्धन
हानिस्तथैवच ॥ योनौकलिर्महादुःखंयमांशेमरणद्वयम् ॥ २१४ ॥

तारा है वह स्त्री और पुत्रोंको दुःखदायी होती है ॥ २१० ॥ अज्ञान वा मोहसे इनमें गृहको बनावै तो दुःख और व्याधिका भोगी होताहै
रिक्ता तिथिमें दरिद्रता और अमावस्यामें गर्भका पात होताहै ॥ २११॥ कुयोगमें धन धान्य आदिका नाश और पात मृत्युको देताहै और
वैधृति और नक्षत्रकी एकतामें सबका नाश होताहै॥ २१२ ॥ अवस्थासे हीन घर होय तो स्वामी दुर्भागी होताहै नाडीका वेध अशुभको
देताहै और तारा रोग और भयको देतीहै ॥ २१३ ॥ गणके वैरमें पुत्र और धनकी हानि होती है और योनिमें कलह और

महादुःख होताहै और यमके अंशमें दोनोंका मरण होताहै ॥ २१४ ॥ नक्षत्रकी एकतामें स्वामीकी मृत्यु और वंशका नाश-वर्णकी एकतामें होताहै-पापग्रहके वारमें दरिद्रता और बालकोंका मरण होताहै ॥ २१५ ॥ कोई आचार्य शनैश्चर की प्रशंसा करतेहैं परन्तु शनैश्चरमें चौरोंका भय होताहै हेवरानने (पार्वती) स्वामीके हस्तप्रमाणसे गृहको बनावै रेखासे लेकर हस्तपर्यन्त विषम संख्या श्रेष्ठ कहीहै ॥ २१६ ॥ हाथके प्रमाणसे अधिक होय तो अंगुलोंको लेकर वा छोडकर गणित

नक्षत्रैक्येस्वामिमृत्युर्वर्णैवंशविनाशनम् ॥ पापवारेदरिद्रत्वंशिशूनाम्मरणन्तथा ॥ २१५ ॥ केचिच्छंनिंप्रशंसन्तिचौरभीति स्तुजायते ॥ स्वामिहस्तप्रमाणेनगृहंकुर्याद्वरानने ॥ रेखादिहस्तपर्यन्तमोजसंख्याप्रशस्यते ॥ २१६ ॥ करमानादधिकंचेत्तदाङ्गुला निप्रदायहित्वाच ॥ क्षेत्रफलङ्गणितेनप्रसाधयेदिष्टसिद्धचर्थम् ॥ २१७ ॥ करमानादधिकंचेदङ्गुलानिप्रसाधयेत् ॥ दीर्घेदेयानिवानूनं नविस्तीर्णेकदाचन ॥ २१८ ॥ अङ्गुलैः कल्पितानाभिर्वर्गीकृत्यपदंभवेत् ॥ प्राप्तहस्तादिमानंस्यात्कुर्य्यादापतनंततः ॥ २१९ ॥ एकादशकरादूर्ध्वंयावद्द्वात्रिंशहस्तकम् ॥ तावदायादिकंचिंत्यंतदूर्ध्वंनैवचिन्तयेत् ॥ २२० ॥ आयव्ययौमासशुद्धिंनजीर्णोंचिन्त येद्गृहे ॥ शिलान्यासम्प्रकुर्वीतमध्येतस्यविधानतः ॥ २२१ ॥

से क्षेत्रफलको इष्ट सिद्धिके लिये सिद्धकरै ॥ २१७ ॥ हाथके मानसे अधिक होय तो अंगुलिको सिद्धकरै और गृहके दीर्घ (लंबाई) में अंगुलोंको दे और विस्तारमें कदाचित् न दे ॥ २१८ ॥ अंगुलोंसे कल्पना की जो नाभि है उसका वर्ग करनेसे पद होताहै इस प्रकार प्राप्त हुआ जो हस्तआदिका मान उसको करकै फिर गृहको बनवावै ॥ २१९ ॥ ग्यारह हाथसे आगै बत्तीस हाथ पर्यन्त आयादिककी चिन्ताकरै और उसके ऊपर नकरै ॥ २२० ॥ आय व्यय और मासकी शुद्धि इनकी

चिन्ता जीर्ण गृहमें नकरै और गृहके मध्यमें विधिपूर्वक शिलाका स्थापन करै ॥ २२१ ॥ ईशान दिशामें देवतागृह पूर्वमें स्नानका मंदिर अग्निकोणमें पाकका स्थान और उत्तरमें भाण्डोंका स्थान बनवावै ॥ २२२ ॥ अग्नि और पूर्वके मध्यमें दधिमथनेका मंदिर अग्नि और दक्षिण दिशाके मध्यमें घृतका घर श्रेष्ठ कहाहै ॥ २२३ ॥ दक्षिण और नैर्ऋतिके मध्यमें मलके त्यागनेका स्थान और नैर्ऋत और पश्चिमके मध्यमें विद्याके अभ्यासका मन्दिर बनवावै ॥ २२४ ॥ पश्चिम और वायुकोणके

ईशान्यांदेवतागेहम्पूर्वस्यांस्नानमन्दिरम् ॥ आग्नेय्यांपाकसदनंभाण्डाशगारमुत्तरे ॥ २२२ ॥ आग्नेयपूर्वयोर्मध्येदधिमन्थनमन्दिरम् ॥ अग्निप्रेतेशयोर्मध्येआज्यगेहंप्रशस्यते ॥ २२३ ॥ याम्यनैर्ऋत्ययोर्मध्येपुरीषत्यागमन्दिरम् ॥ नैर्ऋत्याम्बुपयोर्मध्येविद्याभ्यासस्य मन्दिरम् ॥ २२४ ॥ पश्चिमानिलयोर्मध्येरोदनार्थगृहंस्मृतम् ॥ वायव्योत्तरयोर्मध्येरतिगेहंप्रशस्यते ॥ २२५ ॥ उत्तरेशान योर्मध्येऔषधार्थन्तुकारयेत् ॥ नैर्ऋत्यांसूतिकागेहन्नृपाणांभूतिमिच्छताम् ॥ २२६ ॥ आसन्नप्रसवेमासिकुर्याच्चैवविशेषतः ॥ तद्वत्प्रसवकालेस्यादितिशास्त्रेषुनिश्चयः ॥ २२७ ॥ मासेतुनवमेप्राप्तेपूर्वपक्षेशुभेदिने ॥ प्रसूतिसंभवेकालेगृहारम्भणमिष्यते ॥ २२८ ॥ गुरोरधोलघुःस्थाप्यः पुरस्तादूर्ध्ववन्न्यसेत् ॥ गुरुभिःपश्चिमेपूर्वेसर्वलघ्ववाधिर्विधिः ॥ २२९ ॥

मध्यमें रोदनका घर कहाहै वायु और उत्तरके मध्यमें रति (भोग) का घर श्रेष्ठ कहाहै ॥ २२५ ॥ उत्तर और ईशानके मध्यमें औषधका स्थान बनवावै और भूमिके अभिलाषी राजाओंको सूतिकाका घर नैर्ऋत दिशामें कहाहै ॥ २२६ ॥ वह विशेष कर प्रसव कालके समीप मासमें करना और तैसेहीं प्रसव कालमें बनवावै यह शास्त्रोंका निश्चयहै ॥ २२७ ॥ नवम मासके आनेपर पूर्वपक्षके शुभ दिनमें प्रसूतिके प्रारंभ समयमें गृहका आरंभ श्रेष्ठ कहाहै ॥ २२८ ॥ गुरुके नीचे लघुकी स्थापना

करै और उसके आगे ऊर्द्धके समान स्थापनाकरै गुरुओंसे पश्चिम और पूर्वमें सब लघुओंकी अवधिकी विधि होतीहै ॥ २२९ ॥ लघुस्थानमें अलिंद (देहली) को रक्खै और गुरुस्थानमें नरक्खै गृहके द्वारसे प्रदक्षिण क्रमसे जो अलिंदहैं उनके सोलह १६ प्रकार होतेहैं ॥ २३० ॥ पहिला गृह ध्रुव संज्ञक धन धान्यका और सुखका दाता होताहै दूसरा धान्य नामक गृह मनुष्योंको धान्य देता है और तीसरा जय विजयको देताहै ॥ २३१ ॥ और चौथा नंद स्त्रियोंकी हानिको निश्चयसे देताहै और खर सम्पत्तिका नाश

स्यादलिन्दोलघुस्थानेनालिन्दंगुरुमाश्रितम् ॥ प्रदक्षिणैर्गृहद्वारादलिन्दैर्दशषड्विधा ॥ २३० ॥ ध्रुवसंज्ञंगृहंत्वाद्यंधनधान्यसुखप्रदम् ॥ धान्यन्धान्यप्रदंनॄणांजयंस्याद्विजयप्रदम् ॥ २३१ ॥ नन्दंस्त्रीहानिदंनूनंखरंसंपद्विनाशनम् ॥ पुत्रपौत्रप्रदङ्कान्तंश्रीप्रदंस्यान्मनोरमम् ॥ २३२ ॥ सुवक्रम्भोगदन्नूनन्दुर्मुखंविमुखप्रदम् ॥ सर्वदुःखप्रदंक्रूरंविपलंशत्रुभीतिदम् ॥ २३३ ॥ धनदन्धनदंगेहंक्षयंसर्वक्षयावहम् ॥ आक्रन्दंशोकजनकंविपुलंश्रीयशःप्रदम् ॥ २३४ ॥ विपुलंनामसदृशन्धनदंविजयाभिधम् ॥ २३५ ॥ प्रदक्षिणेसप्तमुखादलिन्दंविद्याल्लघुस्थानसमाश्रितञ्च ॥ गृहस्यपूर्वादिगतेष्वलिन्देष्वेवंभवेयुर्दशषड्भेदाः ॥ २३६ ॥ भवेयुर्नशुभालिन्दंगृहङ्कापालसंज्ञकम् ॥ विस्ताराद्द्विगुणङ्गेहंगृहस्वामिविनाशनम् ॥ २३७ ॥

करताहै कान्त गृह पुत्र पौत्रोंको देताहै मनोरम गृह लक्ष्मीको देताहै ॥ २३२ ॥ सुवक्र गृह निश्चयसे भोग देताहै दुर्मुख गृह विमुखताको देताहै क्रूरगृह सब दुःखोंको देताहै विपुल गृह सब शत्रुओंकी भीतिको देताहै ॥ २३३ ॥ धनदगृह धनको देताहै क्षय सबके क्षयको देताहै आक्रंद शोकको पैदा करताहै विपुल श्री और यशको देताहै ॥ २३४ ॥ विपुल नामके सदृश फलको देताहै और धनदगृहको विजय कहतेहैं ॥ २३५ ॥ प्रदक्षिण क्रमसे सप्त मुखसे लघुस्थानमें रक्खे हुए अलिंदको जानैं गृहके पूर्व आदि दिशाओंमें रक्खेहुए अलिन्दोंमें क्रमसे सोलह भेद होतेहैं ॥ २३६ ॥ जिसमें शुभ अलिंद न हो वह गृह कापाल

नामका होताहै विस्तारसे दूना गृह- गृह और स्वामी दोनोंको नष्ट करताहै ॥ २३७ ॥ उस गृहको निरर्थक कहतेहैं और उसमें राजासे भय होताहै और कोई बुद्धिमान् मनुष्य आलिन्दसे रहित द्वारको कहते हैं ॥ २३८ ॥ और कोई अलिंद और शालाको और कोई आलिंदकको कहतेहैं घरसे बाहिरकी जो दिशा हैं और जो गृहसे अत्यंत निकसी हुई॥२३९॥काष्ठा हैं वे, काष्ठका जो घर वह अलिंदसंज्ञक कहाताहै गृहके बाहिरकी जो दिशा और गृहके भीतरकी जो दिशाहैं उनका ॥२४०॥ कोष्ठरूपसे बनाया जो तिरछा घर

निरर्थकन्तद्गृहंस्याद्भयंवाराजसंभवम् ॥ केचिदलिन्दकंद्वारंप्रवदन्तिमनीषिणः ॥ २३८ ॥ केचिदलिन्दंशालाञ्चकेचिच्चालिन्दक ञ्चतत् ॥ गृहबाह्यस्थिताःकाष्ठागृहमत्यन्तनिर्गताः ॥ २३९ ॥ काष्ठाकाष्ठस्ययद्गेहन्तद्वाचालिन्दसंज्ञकम् ॥ गृहाद्बहिश्चये काष्ठागृहस्यांतर्गताश्चये ॥ २४० ॥ तेषाङ्कोष्ठीकृतन्तिर्यग्गेहञ्चालिन्दसंज्ञकम् ॥ स्तंभहीनंगृहाद्बाह्यान्निर्गतङ्काष्ठनिर्मितम् ॥ २४१ ॥ मध्यादूर्ध्वंगतङ्गेहंतच्चवालिंदसंज्ञकम् ॥ यत्रालिन्दश्चतत्रैवद्वारमार्गप्रशस्यते ॥ २४२ ॥ अलिन्दंद्वारहीनञ्चगृहंकोटीसमंस्मृतम् ॥ यत्रालिन्दंतत्रशालातत्रद्वारञ्चशोभनम् ॥ २४३ ॥ शालालिन्दद्वारहीनंनगृहङ्कारयेद्बुधः ॥ यद्वास्तुनिचविस्तारः सैवोच्छ्रायः शुभः स्मृतः ॥ २४४ ॥ शूकशालोगृहः कर्योविस्ताराद्द्विगुणोदश ॥ चतुःशालगृहस्यैवमुच्छ्रायोव्यासससम्मितः ॥ २४५ ॥

उसको अलिन्द कहतेहैं वह स्तंभसे हीन घरसे बाहिरको निकसा हुआ काष्ठका होताहै॥२४१॥ गृहके मध्यसे ऊर्ध्व भागमें गयाहुआ जो घर है कोई उसे अलिंद कहतेहैं. जिस भागमें आलिंद हो उसीमें द्वारका मार्ग श्रेष्ठ कहाहै ॥ २४२ ॥ आलिंद और द्वारसे हीन गृहको टके समान कहाहै जहां अलिंद हो वहीं शाला और द्वार श्रेष्ठ कहाहै ॥ २४३ ॥ शाला आलिंद द्वार इनसे हीन गृहको बुद्धिमान् मनुष्य न बनवावै जो वास्तुका विस्तारहो उतनीही उंचाई शुभ कहीहै ॥ २४४ ॥ विस्तारसे दूना शूकशाल नामका गृह बनवाना दश और

चारशालाके गृहकी उंचाई व्यासके समान होतीहै ॥ २४५ ॥ विस्तारसे दूनी लंबाई एकशाला (एकमजला) के गृहकी होतीहै जो गृह विस्तीर्ण होताहै वह उंचाईमें एक शालाका होताहै ॥२४६॥ और द्विशालमें दूना और त्रिशालमें त्रिगुण कहाहै और चतुःशालमें पंचगुणा जानना उससे ऊपर गृहको न बनवावै ॥२४७॥ जिसकी शिखा गृहके त्रिभागकी हो वह उत्तमसंज्ञक होताहै यदि एकशाला गृहकी आज्ञा य तब आठ और सताईसकी संशुद्धि (भाग) से सौम्यवर्जित अर्थात् उत्तरशालासे हीन करना और यदि दोशालाओंसे युक्त घर बनाना होय तो दक्षिण और पश्चिममें शाला बनानी॥२४८॥और तीन शालाका घर बनाना होय तो पूर्वकी वा उत्तरकी शालासे रहित घर बनाना और

विस्तारादूद्विगुणंदैर्घ्यमेकशालेप्रशस्यते ॥ विस्तीर्णयद्भवेद्गेहन्तदूर्ध्वंत्वेकशालकम् ॥ २४६ ॥ द्विशालेद्विगुणम्प्रोक्तन्त्रिशालेत्रिगुणन्तथा ॥ चतुश्शालेपञ्चगुणंतदूर्ध्वन्नैवकारयेत् ॥ २४७ ॥ शिखाचैवत्रिभागन्तुगृहश्चोत्तमसंज्ञकम् ॥ एकन्नागोडुसंशुद्ध्याद्वेचदक्षिणपश्चिमा ॥ २४८ ॥ त्रिशालेपूर्वतोहीनङ्कार्यंवासौम्यवर्जितः ॥ ऊर्ध्वभागत्रयन्त्यक्त्वाअधोभागद्वयन्तथा ॥२४९॥ मध्येनाभिंविजानीयादितिप्राहपराशरः ॥ पूर्वादिषुचतुर्दिक्षुवाममेकादयोध्रुवाः ॥२५०॥ विस्तारस्याथदैर्घ्यस्यतथैवैकैकसंयुतम् ॥ वामंवातादिकोणेषुध्रुवंविस्तारदैर्घ्ययोः ॥ २५१ ॥ एकाद्याः स्वेच्छयासर्वेकार्यावेदसमन्विताः ॥ अनेनैवप्रकारेणक्रियमाणेचवास्तुनि ॥ २५२ ॥

शालाका विभागभी इसी पूर्वोक्त विधिसे करना पूर्वमें उपर तीनभागको छोडकर और पश्चिममें दो भागोंको छोडकर॥३४९॥जो मध्यभाग होताहै वह नाभि जाननी यह पराशर ऋषिने कहाहै उसमें शालाको बनवावै इसी प्रकार पूर्व आदि चारों दिशाओंमें एक आदि ध्रुव वाममार्गसे होते हैं॥२५०॥ विस्तार और दैर्घ्य (अर्थात्) चौडाई और लंबाईके एक एक भागको मिलाकर वायव्य आदि कोणोंमें विस्तार और दैर्घ्यका ध्रुव होताहै वह ध्रुव उत्तर शालासे हीन घरमें न देना॥२५१॥एक शालावाले गृहसे लेकर चार शालापर्यन्त गृह बनवाने इसीप्रकारसे बन

वाने योग्य शालासे युक्त गृहमें ॥२५२॥ पहिले आचार्य आयव्यय आदिकी जो शुद्धि उसका विचार नहीं करते अर्थात् एकशालायुक्त गृहमें आय व्यय आदिका विचार करना और दोशालासे युक्तमें नहीं करना क्योंकि निर्गम और अलिंद आदि जो गृहोंकी चारों दिशाओंमें हैं वे गृहोंके चारों दिशाओंमें जो होतेहैं वे सब दोशाला आदिके घरमें नहीं मानने और न. वास्तुशालाआदिका विचार करना ॥ २५३ ॥

आयव्ययादिसंशुद्धिंनचिंतयंतिपूर्वजाः ॥ अस्यार्थः ॥ यदिवास्तुनिएकमेवगृहंक्रियतेतदानागोड्डुसंशुद्धयासौम्यवर्जितमुत्तरशालाहीनंगृहं यदिद्विशालकंगृहंक्रियतेतदादक्षिणपश्चिमेशालाकार्या त्रिशालेपूर्वतोहीनंकार्यं त्रिशालेउत्तरशालयावाहीनंकार्यं शालाविभागस्तु अनेनैवविधानेनकार्यः पूर्वेऊर्द्धभागत्रयंत्यक्त्वापश्चिमेभागद्वयंत्यक्त्वायोमध्यगतोभागः सनाभिः तत्रशालानविधेया ॥ अनेनैवप्रकारेणपूर्वादिदिक्षुएकादयोविस्तारदैर्घ्यस्यएकैकंभागंसंयोज्यवातादिकोणेषुउत्तरशालाहीनत्वांन्नदेयंसर्वेएकाद्याश्चतुःशालांतावेदसमन्विताः कार्याः ॥ अनेनैवप्रकारेणशालायुतेवास्तुनिआयव्ययादिशुद्धिर्नचिन्तनीया ॥ एकशालेआयव्ययादिनिचारःकर्तव्यःद्विशालेआयव्ययादिशुद्धिर्नविचारणीया यतः निर्गमालिंदानिपूर्वादीनियानिचतुर्दिशंवेश्मनांतानिनग्राह्याणि ॥ नोतद्वास्तुपरिग्रहाः ॥ २५३ ॥ ब्राह्मणानांचतुःशालंक्षत्रियाणांत्रिशालकम् ॥ द्विशालंस्यात्तुवैश्यानांशूद्राणामेकशालकम् ॥ २५४ ॥ सर्वेषामेववर्णानामेकशालंप्रशस्यते ॥ एकशालन्द्विशालंवात्रिशालन्तुयशालकम् ॥ २५५ ॥ यथालिन्दंगृहंकुर्यात्तादृक्शालाप्रशस्यते ॥ शालादिभिर्नकर्त्तव्यंनकुर्यात्तुङ्गनिम्नकम् ॥ २५६ ॥

ब्राह्मणोंका गृह चार शालाओंका क्षत्रियोंका तीन शालाओंका वैश्योंका दोशालाओंका और शूद्रोंका एक शालाओंका होताहै॥२५४॥ और सब वर्णोंका एक शालाओंका घर श्रेष्ठ कहाहै एक २।३।४। शालाके ॥ २५५ ॥ गृहमें जिसप्रकार अलिंद आदि बनवावै उसी प्रका

रकी शाला श्रेष्ठ होतीहै और केवल शाला आदि युक्त गृहको और कहीं ऊंचै और कहीं नीचे गृहको न बनवावै ॥ २५६ ॥ तिससे समान शालाको और समान (बराबर) परकोटेको बनवावै कर्क वृश्चिक मीन ये उत्तरके द्वारमें स्थित होतेहैं ॥ २५७ ॥ मेष सिंह धन ये पूर्वके द्वारमें स्थित होतेहैं वृष मकर कन्या ये दक्षिणके द्वारमें स्थित होतेहैं ॥ २५८ ॥ मिथुन तुल कुंभ ये पश्चिमके द्वारमें स्थित होतेहैं और इसी क्रमसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंका वास होताहै ॥ २५९ ॥ जिस दिशाकी राशि कहीहैं उसी दिशामें शाला श्रेष्ठ होतीहै अथवा

समांशालान्ततःकुर्यात्समंप्राकारमेवच ॥ कुलीरवृश्चिकौमीनउत्तरद्वारसंस्थिताः ॥ २५७ ॥ मेषसिंहधनुर्द्धाराःपूर्वद्वारेषुसंस्थिताः ॥ वृषभंमकरंकन्यायाम्यद्वारेसमाश्रिताः ॥ २५८ ॥ मिथुनंतुलकुंभौचपश्चिमद्वारमाश्रिताः ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः शूद्राश्चैवयथा क्रमम् ॥ २५९ ॥ यद्दिशाराशयः प्रोक्तास्तस्मिन्शालाप्रशस्यते ॥ अथवापूर्वभागेतुब्राह्मणाउत्तरेनृपाः ॥ २६० ॥ वैश्यानांद क्षिणेभागेपश्चिमेशूद्रकास्तथा ॥ आग्नेयादिक्रमेणैवअन्त्यजावर्णसङ्कराः ॥ २६१ ॥ ज्ञातिभ्रष्टाश्चचौराश्वविदिक्याः शोभनाः स्मृताः ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः शूद्राः प्रागादिषुस्मृताः ॥ २६२ ॥ अष्टोत्तरशतंहस्तविस्तारान्नृपमन्दिरम् ॥ कार्यंप्रधानमन्यानितथाष्टाष्टौ चतानितु ॥ २६३ ॥ विस्तारंपादसंयुक्तंतेषान्दैर्घ्यंप्रकल्पयेत् ॥ एवंनृपाणांपञ्चैवगृहाणिशुभदानिच ॥ २६४ ॥

पूर्वभागमें ब्राह्मण उत्तरमें क्षत्रिय ॥ २६० ॥ दक्षिणमें वैश्य और पश्चिममें शूद्र और अग्निकोण आदिके क्रमसे अन्त्यज आदि वर्णसंकरोंका वास होताहै ॥ २६१ ॥ जातिसे भ्रष्ट और चौर ये विदिशाओंमें होतेहैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये पूर्व आदि दिशाओंमें कहेहैं ॥ २६२ ॥ हाथोंके विस्तारसे १०८ हाथका राजाओंका मन्दिर होताहै वही प्रधान बनवाना अन्य आठों दिशाओंके मंदिर इस क्रम से बनवाने ॥ २६३ ॥ इनके विस्तारके पादसे युक्त लम्बाईकी कल्पना करै इसप्रकार राजाओंके गृह पांचही शुभदायी होतेहैं ॥ २६४ ॥

और चौसठ ६४ हाथके घरमें छठे २ भागसे हीन वे पांच गृह होतेहैं उनका विस्तार और लंबाई छः भागसे युक्त होतीहै ॥ २६५ ॥ और चौंसठ हाथसे न्यून मंत्रीयोंके पांच घर होतेहैं और छठे ६ भागसे युक्त अथवा विस्तारसे आधी उनकी लंबाई होतीहै ॥ २६६ ॥ राजा की राणीयोंके भी पांचही गृह श्रेष्ठ लिखेहैं और वे ८० अस्सी हाथके विस्तारसे छः छः हाथ लम्बाईके होतेहैं ॥ २६७ ॥ और राणीयोंके घरकी दीर्घतासे ३० हाथ अधिक युवराजोंके घर होतेहैं और युवराजके घरसे ५० हाथ अधिक राजाके भाईयोंके घर होतेहैं ॥ २६८ ॥

षड्भिःषड्भिर्विहीनाश्चचतुःषष्टिमितस्यच ॥ पञ्चैवतस्यविस्तारंदैर्घ्यंषड्भागसंयुतम् ॥ २६५ ॥ षष्टिश्चतुर्विहीनानिवेश्मानिसाचिवस्यच ॥ पञ्चषष्ठांशसंयुक्तन्दैर्घ्यन्तस्यार्द्धमेवच ॥ २६६ ॥ नृपाणाम्महिषीणाञ्चप्रशस्तम्पञ्चचैवहि ॥ षड्भिः षड्भिश्चवर्ज्यानिअशीत्याश्चतथैवच ॥ २६७ ॥ त्रिंशद्युतन्तद्दैर्घ्यंश्चयुवराजगृहाणिच ॥ पञ्चाशदूर्ध्वंतस्यैवभ्रातॄणांप्रभवन्तिच ॥ २६८ ॥ नृपमन्त्रिगृहाणाञ्च अन्तरेयत्प्रमाणकम् ॥ सामन्तराजपुत्राणाम्प्रवराणांगृहंस्मृतम् ॥ २६९ ॥ नृपाणांयुवराजस्यगृहाणामन्तरेणयत् ॥ तद्गृहङ्कञ्चुकी वेश्याकलाज्ञानान्तथैवच ॥ २७० ॥ युवराजमन्त्रिणान्तुप्रभवेद्धियदन्तरम् ॥ अध्यक्षदूतगेहन्तत्कर्मसुकुशलाश्चये ॥ २७१ ॥ अध्यक्षाधिकृतानाञ्चरतिकोशप्रमाणकम् ॥ चत्वारिंशच्चतुर्हीनाःपञ्चगेहाभवन्तिहि ॥ २७२ ॥

और राजा मंत्री इनके घरोंके बीचका जो प्रमाण उतना घर सामंत और राजपुत्रोंमें श्रेष्ठोंका घर कहाहै ॥ २६९ ॥ राजा और युवराजके गृहोंके बीचका जो प्रमाणहै उतना घर कंचुकी वेश्या और कलाओंके ज्ञाताओंका होताहै ॥ २७० ॥ युवराज और मंत्रीयों के घरका जो मध्य प्रमाणहो उतना प्रमाणका घर अध्यक्ष (साक्षी) दूत इनके कर्ममें जो कुशल हैं उनके घर होतेहैं ॥ २७१ ॥ अध्यक्ष अधिकारी इनके घरभी रति और कोश घरके प्रमाणमें होतेहैं और छत्तीस ३६ हाथमें जिनका प्रत्येक प्रमाण हो

ऐसे पांच घर होते हैं ॥ २७२ ॥ और इनसे छठे भागसे युक्त जिनकी लम्बाई हो ऐसे घर ज्योतिषी और वैद्योंके होतेहैं और पुरोहितोंका घरभी इसी प्रकारका सुखदायी होताहै इसके अनंतर सबके गृहोंको कहताहूं ॥ २७३ ॥ ३२ बत्तीस हाथसे युक्त जिसका विस्तारहो ऐसा घर ब्राह्मणोंका होताहै और विस्तारके तुल्यहै भाग जिसका ऐसेही उनकी लंबाई होनी चाहिये ॥ २७४ ॥ और क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंका घर पूर्वोक्त ही समझना. राजा और सेनापतियोंके घरका जो मध्य भागहो उतने

षड्भागसंयुतन्दैर्घ्यन्दैवज्ञभिषजान्तथा ॥ पुरोहितानांशुभदंसर्वेषांकथयाम्यतः ॥ २७३ ॥ हस्तद्वात्रिंशतायुक्तंविस्तारस्याद्द्विजालयम् ॥ विस्तारसदृशांशस्तुदैर्घ्यन्तस्यप्रकल्पयेत् ॥ २७४ ॥ त्रयाणांक्षत्रियादीनामालयंपूर्वचोदितम् ॥ नृपसेनापतेर्गेहस्यान्तरंयद्भवेदिह ॥ २७५ ॥ तत्कोशगेहंभवतिरतिगेहन्तथैवच ॥ सेनापतिगृहाणाञ्चअन्तरेयत्प्रमाणकम् ॥ २७६ ॥ चातुर्वर्णस्ययद्गेहंतद्राजपुरुषंमतम् ॥ अथपारशवादीनांमातापित्रोर्यदन्तरम् ॥ २७७ ॥ ब्राह्मणस्यचयन्मानंशूद्रेणसहयद्भवेत् ॥ मूर्द्धाविसिक्तक्षत्रासुतथैवमृतकण्टकः ॥ २७८ ॥ पश्चाच्छ्रमिजनानाञ्चयथेष्टङ्कारयेद्गृहम् ॥ शतहस्तोच्छ्रितङ्कार्यंचतुःशालंगृहंभवेत् ॥ २७९ ॥ प्रमितन्त्वेकशालन्तुशुभदन्तत्प्रकीर्तितम् ॥ सेनापतिनृपादीनांसप्तत्यासहितेकृते ॥ २८० ॥

प्रमाणका कोशघर और रतिघर होतेहैं और सेनापतिके घरके मध्यका जो प्रमाणहो ॥ २७६ ॥ वह चारों वर्णोंके राजपुरुषोंका घर कहाहै और मातापिताके घरका जो मध्य प्रमाणहो उतना पारशव आदिके घरका प्रमाण होताहै ॥ २७७ ॥ ब्राह्मणके घरका प्रमाण शूद्रके घरके संग जो होय वह घर मूर्द्धाभिषिक्त और मृतकण्टकका होताहै ॥ २७८ ॥ इनके पीछे श्रमीजन (भृत्य आदि) के घरको अपनी इच्छाके अनुसार बनवावै जिस घरमें चार शाला हों उसकी उचाई सौ १०० हाथकी बनवावै ॥ २७९ ॥ और जो एक

शालाका हो वह प्रमितही सुखदायी कहाहै सेनापति और राजाके घरके प्रमाणके व्यासमें सत्तर ७० मिलाकर ॥ २८० ॥ और १४ का भाग देनेपर भागोंके प्रमाणसे शालामान कहाहै और ३५ का भाग देनेपर वही अलिंदका मान होताहै ॥ २८१ ॥ और शालाके तीसरे भागकी तुल्य वीथी (गली) बनवानी और भवनसे पूर्व भागमें उष्णीष वा वस्त्र बनवानेका स्थान और पश्चिममें शयनका स्थान होता है ॥ २८२ ॥ और जो शेषों पार्श्वोंमें अवष्टम्भ सहित और सब दिशाओंमें दृढ होताहै विस्तारके सोलमें भागमें चार हाथ मिलाकर

व्यासेचतुर्दशहृतेशालमानंविनिर्दिशेत् ॥ पञ्चत्रिंशद्धृतेन्यत्रालिन्दमानंभवेच्चतत् ॥ २८१ ॥ शालात्रिभागतुल्याचकर्तव्यावीथिकाबहिः ॥ भवनात्पूर्वतोष्णीषंपश्चात्स्वापाश्रयंभवेत् ॥ २८२ ॥ सावष्टंभंपार्श्वयोस्तुसर्वत्रसुस्थिरतंभवेत् ॥ विस्तारषोडशांशस्तु चतुर्हस्तयुतश्चयः ॥ २८३ ॥ तदन्तरस्योच्चतरंप्रमाणंप्रवदेद्बुधः ॥ द्वादशभागेनोनंचसमस्तानांप्रकल्पयेत् ॥ २८४ ॥ यजन्ते राजसूयाद्यैः क्रतुभिर्ह्यवनीश्वराः ॥ नलैरर्द्धाष्टमैस्तेषाङ्कारयेद्भवनोत्तमम् ॥ २८५ ॥ तथाचसप्तमैरेवविप्राणाङ्कारयेद्गृहम् ॥ अर्द्धषष्ठैःक्षत्रियाणांवैश्यानामर्द्धपंचमैः ॥ २८६ ॥ त्रिभिस्सार्द्धैश्चशूद्राणांभवनंशुभदंस्मृतम् ॥ स्वगृहाणांविभागेनप्रमाणमिहलक्षयेत् ॥ २८७ ॥

जो प्रमाणहो ॥ २८३ ॥ उतना प्रमाण उसके मध्यकी उंचाईका बुद्धिमानोंने कहाहै और समस्त घरोंकी उंचाई द्वादश भागसे न्यून बनवानी ॥ २८४ ॥ पृथिवीके प्रति राजा राजसूय आदि यज्ञोंसे जो परमेश्वरका पूजन करतेहैं उनका उत्तम भवन आठ जिनमें आधेहों ऐसे नलोंसे बनवावै ॥ २८५ ॥ और सात जिनमें आधेहों ऐसे नलोंसे ब्राह्मणोंके घरोंको बनवावै और छः जिनमें आधेहों उनसे क्षत्रियोंका पांच जिनमें आधेहों ऐसे नलोंसे वैश्योंका घर बनवावै ॥ २८६ ॥ और ३ ॥ जिनमें आधे हों ऐसोंसे शूद्रोंका घर बनवाना

कहाहै अपने अपने गृहोंके विभागसे यहां प्रमाण देखना ॥ २८७ ॥ विस्तार और आयाम जो १६ नलोंसे गुननेसे आवै उतना प्रमाण कहाहै जो विषम आवैं तो शुभदायी होतेहैं और सम दुःखदायी होतेहैं ॥ २८८ ॥ और व्याससे सोलमें भागका जो प्रमाण वह सब गृहोंकी मिति (प्रमाण) कहीहै यह उन गृहोंका प्रमाणहै जो पक्की ईटोंके हों काष्ठकी ईटोंके कदाचित नही ॥ २८९ ॥ राजा और सेनापतिके जो घर उसके द्वारका प्रमाण बुद्धिमानोंने १८८ एकसौ अठासी अंगुलका कहाहै ॥ २९० ॥ और ब्राह्मण आदिकोंके द्वारका

विस्तारायामगुणितन्नलैःषोडशभिः स्मृतम् ॥ विषमाः शुभदाह्येतेसमादुःखप्रदायकाः ॥ २८८ ॥ व्यासाच्चषोडशोभागः सर्वेषां मितयः स्मृताः ॥ पक्केष्टकाकृतानाञ्चनदारूणांकदाचन ॥ २८९ ॥ नृपसेनापतिगृहमष्टाशीतिशतैर्युताः ॥ अङ्गुलानिद्वारमानम्प्रवदन्तिमनीषिणः ॥ २९० ॥ विप्रादीनांतथासप्तविंशतिस्त्वंगुलानिच ॥ द्वारस्यमानंतत्प्रोक्तंत्रिगुणोच्छ्रायमुच्यते ॥ २९१ ॥ उच्छ्रायहस्तसंख्यायाः परिमाणान्यंगुलानिच ॥ शाखाद्वयेपिबाहुल्यंकार्यंद्वादशसंयुतम् ॥ २९२ ॥ उच्छ्रायात्सप्तगुणितादशेति पृथुतामता ॥ भागः पुनर्नवगुणाऽशीत्यंशस्ततएवच ॥ २९३ ॥ दशांशहीनस्तस्याग्रः स्तंभानांपरिमाणकम् ॥ वेदास्रोरुचकः स्तंभोवज्रोष्टास्त्रियुतोमतः ॥ २९४ ॥

प्रमाण २७ सत्ताईस अंगुलका कहाहै द्वारका प्रमाण जो कहाहै उससे तिगुनी ऊंचाई शास्त्रमें कहीहै ॥ २९१ ॥ ऊंचाईके हाथोंकी जो संख्या है उतनेही प्रमाणके अंगुल दोनों शाखाओंमें अधिक बनवाने और बारह अंगुल और मिलाने ॥ २९२ ॥ और ऊंचाईसे सात गुनी दशा पृथुता (लम्बाई चौडाई) कहीहै और नौगुणेमें ८० अस्सीमां जो अंश उसै भाग और तत कहतेहैं ॥ २९३ ॥ दशमें अंशसे हीन उसका अग्र कहाहै अब स्तम्भोंके प्रमाणको कहतेहैं जिसमें ४ कोण हो उस स्तम्भको रुचक और जिसमें आठ

कोणहो उसै वज्र कहतेहै ॥ २९४ ॥ और जिसमें १६ कोण हो वह द्विवज्र और जिसमें ३२ बतीस कोणहो उसै प्रलीनक कहतेहैं और जो सम वृत्त (गोल) उसको वृत्त नामका स्तंभ पण्डितोंने कहाहै ॥ २९५ ॥ स्तंभके नौ प्रकार बांटकर उद्वहन घटको बनवाने अर्थात् स्तंभके पासके काष्ठोंको लगावै और पद्म उत्तरौष्ठकोभी भागसे ऊन भागसे बनवाने स्तम्भके नीचेके काष्ठको पद्म उत्तरौष्ठ कहते हैं॥ २९६ ॥ भारकी तुला के ऊपर जिनकी तुलाऊपर हो उनकी स्तंभके समान अधिकता होतीहै और वे एक २ पाद ऊन होतीहै ॥ २९७ ॥ और निषिद्धसे रहित जो अलिंद उसके समान जो घर हैं वह सर्वतोभद्र अर्थात् सब प्रकारसे मांगलिक हो

द्विवज्रः षोडशास्त्रिःस्याद्विगुणास्त्रिः प्रलीनकः ॥ समंतवृत्तोवृत्ताख्यः स्तंभः प्रोक्तोद्विजोत्तमैः ॥ २९५ ॥ विभज्यनवधास्तंभंकुर्यादुद्वहनंघटम् ॥ पद्मंचसोत्तरोष्ठंचकुर्य्याद्भावोनभागतः ॥ २९६ ॥ स्तंभसमंबाहुल्यंभारतुलानामुपर्य्युपरियासाम् ॥ भवति तुलायतुलानामूनंपादेनपादेन ॥ २९७ ॥ अप्रतिषिद्धालिंदंसमंततोवास्तुसर्वतोभद्रम् ॥ नृपविबुधसमूहानांकार्यंद्वारैश्चतुर्भिरपि ॥ २९८ ॥ द्विशालानिगृहाणि ॥ याम्यशालान्यसेदादौद्वितीयापश्चिमेततः ॥ तृतीयाचोत्तरेस्थाप्याचतुर्थीपूर्वपश्चिमा ॥ २९९ ॥ दक्षिणेदुर्मुखंकृत्वापूर्वेचखरसंज्ञकम् ॥ तद्वाताख्यम्भवेद्गेहंवातरोगप्रदंस्मृतम् ॥ ३०० ॥ दक्षिणेदुर्मुखङ्गेहम्पाश्चिमेधान्यसंज्ञकम् ॥ सिद्धार्थाख्यंद्विशालञ्चसर्वसिद्धिकरन्नृणाम् ॥ ३०१ ॥

ताहै राजा और देवताओंके समूहोंका जो घर है वह चार दरवाजोंका बनवाना ॥ २९८ ॥ अब दोशाला आदिके गृहोंको कहतेहैं पहिली शाला दक्षिणमें बनवानी फिर दूसरी पश्चिममें तीसरी उत्तरमें और चौथी पूर्व पश्चिमके मध्यमें बनवानी ॥ २९९ ॥ जिस घरमें दक्षिण दिशामें दुर्मुखका चिह्नहो और पूर्वमें खरका चिह्न हो वह घर वात नामका होताहै और वह वातरोगका प्रदाता शास्त्रमें कहाहै ॥ ३०० ॥ जो घर दक्षिणमें दुर्मुखहो और पश्चिममें धान्यसंज्ञकहो वह दोशालाका घर

सिद्धार्थ नामका होताहै और वह मनुष्योंकी सब सिद्धियोंको करता है ॥ ३०१ ॥ और जो पश्चिममें धान्य नामका हो और उत्तरमें जयसंज्ञकहो और जिसमें दो शालाहों उसे यमसूर्य कहते हैं और वह मृत्यु और नाशका दाता होता है ॥ ३०२ ॥ जो पूर्वमें खरनामका हो और उत्तरमें धान्यसंज्ञकहो और जिसमें दो शाला हों वह दण्डनामका होताहै और वह दण्डको वारम्वार देताहै ॥ ३०३ ॥ और जो दक्षिणमें दुर्मुखहो और उत्तरमें जयसंज्ञक होय और जिसमें दो शालाहों वह वात नामका होताहै उसमें बन्धु और धनका नाश होताहै ॥ ३०४ ॥ जो पूर्वदिशामें खर नामका हो और पश्चिममें धान्यसंज्ञक हो और जिसमें दो शालाहों उस गृहको चुलकी

पश्चिमेधान्यनामानमुत्तरेजयसंज्ञकम् ॥ यमसूर्य्यन्द्विशालन्तन्मृत्युदन्नाशदंस्मृतम् ॥ ३०२ ॥ पूर्वेतुखरनामानमुत्तरेधान्यसंज्ञकम् ॥ दण्डाख्यन्तद्द्विशालंस्याद्दण्डंकुर्य्यात्पुनःपुनः॥३०३॥दुर्मुखन्दक्षिणेकुर्य्यादुत्तरेजयसंज्ञकम् ॥ वाताख्यं तद्द्विशालंतुबन्धुनाशंधनक्षयम् ॥ ३०४ ॥ खरञ्चपूर्वदिग्भागेपश्चिमेधान्यसंज्ञकम्॥गृहञ्चुल्कीद्विशालन्तत्पशुवृद्धिधनप्रदम्॥३०५॥ विपक्षंदक्षिणेभागेपश्चिमेक्रूरसंज्ञकम् ॥ शोभनाख्यंद्विशालन्तद्धनधान्यकरम्परम् ॥ ३०६ ॥ विजयन्दक्षिणेभागेविजयंचैवपश्चिमे ॥ द्विशालञ्चैवकुम्भाख्यंपुत्रदारादिसंयुतम् ॥ ३०७ ॥ धनञ्चपूर्वदिग्भागेधान्यञ्चैवतुपश्चिमे ॥ नन्दाख्यन्तद्द्विशालञ्चधनदंशोभनंस्मृतम् ॥ ३०८ ॥

कहते हैं वह पशुओंकी वृद्धि और धनको देताहै ॥ ३०५ ॥ जो घर दक्षिण भागमें विपक्ष नामका हो और पश्चिममें क्रूरसंज्ञक हो और जिसमें दो शाला हों वह घर शोभन नामका होताहै वह धन और धान्यको देता है ॥ ३०६ ॥ जो दक्षिण भागमें और पश्चिम भागमें विजय नामका हो और जिसमें दो शाला हों उस घरको कुंभ कहते हैं वह पुत्र और स्त्री आदिसे युक्त रहता है ॥३०७॥ जो पूर्वदिशामें धन नामका और पश्चिममें धान्य नामका हो और जिसमें दो शाला हों वह घर नंदनामका होताहै और धनको देताहै और शोभन

नामका होता है ॥ ३०८ ॥ जो सब दिशाओंमें विजय नामका हो और जिसमें दो शाला हों वह शंकनामका होताहै और मनुष्यों
को शुभदायी होताहै ॥ ३०९ ॥ जो सब दिशाओंमें विपुल हो और जिनमें दो शालाहों उस घरको संपुट नामक कहते हैं और धनधा
न्यको देताहै ॥३१०॥ जो सब दिशाओंमें धनद हो वा सुवक्र वा मनोरम हो वह घर कान्त नामका होताहै और वह सब घरोंमें शोभन
कहाहै ॥ ३११॥ दो शालाओंके घरोंके ये १३ भेद इन गृहोंके फलपाकके लिये मैंने विस्तारसे कहे ॥ ३१२ ॥ पूर्वदक्षिण १ दक्षिणपश्चिम

विजयंसर्वदिग्भागेद्विशालाख्यन्तदेवहि ॥ शङ्खाख्यन्नामतद्गेहंशुभदश्चनृणांभवेत्॥३०९॥विपुलंसर्वदिग्भागेद्विशालन्तत्प्रजायते॥तानि
संपुटसंज्ञानिधनधान्यप्रदानिच ॥ ३१० ॥ धनदंसर्वदिग्भागेसुवक्रंवामनोरमम् ॥ कान्तंनामतुतद्गेहंसर्वेषांशोभनंस्मृतम् ॥ ३११ ॥
द्विशालानान्तद्गृहाणांभेदाश्चैवत्रयोदश ॥ फलपाकार्थमेतेषाम्मयाप्रोक्तंसुविस्तरात् ॥ ३१२ ॥ पूर्वयाम्यमथयाम्यपश्चिमंपश्चिमो
त्तरमथोत्तरपूर्वकम् ॥ प्राक्प्रतीचमथदक्षिणोत्तरंवास्तुषड्विधमिदंद्विशालकम् ॥ ३१३ ॥ अथत्रिशालानि ॥ उत्तरद्वारहीनंयत्त्रिशाल
न्धनधान्यदम् ॥ हिरण्यनाभनामानंराज्ञांसौख्यविवर्द्धनम् ॥ ३१४ ॥ प्राग्द्वारशालहीनन्तुसुक्षेत्रन्नामतद्गृहम् ॥ वृद्धिदंपुत्रपौत्राणा
न्धनधान्यसमृद्धिदम् ॥ ३१५ ॥ याम्यशालाविहीनन्तात्रिशालंचुल्हिसंज्ञकम् ॥ विनाशनंधनस्यापिपुत्रपौत्रादिनाशनम् ॥ ३१६ ॥

२ पश्चिमउत्तर ३ उत्तरपूर्व ४ प्राक्पश्चिम ५ और दक्षिण उत्तर ६ इन भेदोंसे दो शालाका वास्तु छः प्रकारका होता है ॥ ३१३ ॥ इसके
अनन्तर तीन शालाओंके वास्तुको कहते हैं, उत्तरके द्वारसे जो रहितहो ऐसा तीन शालाका गृह हिरण्यनाभि नामका होता है वह धन
धान्यको देताहै और राजाओंके सुखको बढाता है ॥३१४॥ और जिसमें पूर्वके द्वारकी शाला नहो वह गृह सुक्षेत्र नामका होताहै और
पुत्र पौत्रोंकी वृद्धि और धन धान्यकी समृद्धिको देता है ॥ ३१५ ॥ और दक्षिणकी शालासे जो रहितहो और जिसमें तीन शालाहों

ऐसे घरको चुलही कहतेहैं उसमें धन और पुत्र पौत्र आदिका नाश होता है ॥ ३१६ ॥ जो घर पश्चिमकी शालासे रहितहो उस घरको पक्षघ्न कहतेहैं वह पुत्रोंको दोषका दाता और पुरवासीयोंकी शत्रुताको देता है ॥ ३१७ ॥ तीन शालाके गृहोंके ये चार भेद मैंने कहे इस से घरके कर्ममें बुद्धिमान् मनुष्य इनका विचारकर घरको बनवावै ॥ ३१८ ॥ इसके अनन्तर चार शालाओंके घरोंको कहते हैं-जिस घर में चारों तरफ अलिंदोंका स्थापन नहो और जिसमें चार द्वारहों उस वास्तुको सर्वतोभद्र कहते हैं और एक ग्राममें चार शालाके घरमें

प्रत्यक्छालाविहीनन्तुपक्षघ्नंनामतद्गृहम् ॥ पुत्राणान्दोषदश्चैवपरञ्चपुरवासिनाम् ॥ ३१७ ॥ चत्वारोमीमयाप्रोक्ताभेदाश्चैवचतुर्दश ॥ तस्माद्विचार्यकुर्वीतगृहकर्मणिकोविदः ॥ ३१८॥ अथचतुःशालानि ॥ अलिन्दानांह्यवच्छेदोनास्तियत्रसमन्ततः ॥ तद्वास्तुसर्वतोभद्रं चतुर्द्वारसमन्वितम् ॥ एकग्रामेचतुःशालेदुर्भिक्षेराज्यविप्लवे ॥ ३१९ ॥ स्वामिनोनीयमानायाम्प्रतिशुक्रन्नदुष्यति ॥ नृपा णांविबुधानाञ्चगृहंसौख्यप्रदायकम् ॥ ३२० ॥ प्रदक्षिणान्तगैःसर्वैः शालाभित्तिरलिन्दकैः ॥ विनापरेणद्वारेणनन्द्यावर्तमितिस्मृतम् ॥ ३२१ ॥ श्रेष्ठंसुतारोग्यकरंसर्वेषांशुद्धजन्मनाम् ॥ द्वारालिन्दोगतस्त्वेकोनेत्रयोर्दक्षिणागतः ॥ ३२२ ॥ विहायदक्षिणद्वारंवर्द्ध मानमितिस्मृतम् ॥ शुभदंसर्ववर्णानांवृद्धिदंपुत्रपौत्रदम् ॥ ३२३ ॥

दुर्भिक्ष राज्यके उपद्रवमें ॥ ३१९ ॥ यदि स्वामी अपनी स्त्रीको संग शुक्रास्तमें लेजाय तो सन्मुख शुक्रका दोष नहीं. राजा और देवताओंका जो घरहै वह सुखदायी होताहै ॥ ३२० ॥ जिसकी प्रदक्षिणाके अन्तमें सबतरफ शाला भींत अलिंद हों और पश्चिमका द्वार न हो उस घरको नन्द्यावर्त कहतेहैं ॥ ३२१ ॥ वह शुद्ध जन्मवाले श्रेष्ठ पुरुषोंको सुख और आरोग्यका दाता और श्रेष्ठ कहाहै और जिसकी दक्षिण दिशामें एक द्वारका अलिन्द नेत्रभागमें हो ॥ ३२२ ॥ और दक्षिणमें द्वार नहो उस घरको वर्द्धमान

कहतेहैं वह सब वर्णोंको शुभदायी वृद्धि पुत्र पौत्रोंको देताहै ॥३२३॥ जिसके पश्चिम और उत्तरमें अलिंदहो और पूर्वदिशापर्यन्त दोअलिंद उठे हुएहो और उनके मध्यमें एक अलिंदहो और पूर्वको जिसका द्वारहो उसघरको स्वस्तिक और सुखदायी कहतेहैं ॥ ३२४ ॥ जिस घरमें पूर्व और पश्चिममें दो अलिंद हो और गृहके अन्ततक दो अलिंदहो और उत्तरको जिसका द्वार नहो उस घरको रुचक नामका कहतेहैं ॥ ३२५ ॥ ॥ इति वास्तुशास्त्रे समगृहादिनिर्माणे पं० मिहिरचंद्रकृतभाषाविवृतिसहिते द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ इससे

पश्चिमोत्तरतोलिन्दः प्रागन्तौद्वौतदुत्थितौ ॥ अन्यस्तन्मध्यविधृतः प्राग्द्वारंस्वस्तिकंशुभम् ॥ ३२४ ॥ प्राक्पश्चिमावलिन्दौयावंतगौ तद्द्वौपरौ ॥ सौम्यद्वारंविनातुस्याद्रुचकाख्यन्तुतत्स्मृतम् ॥ ३२५ ॥ इतिवास्तुशास्त्रेसमगृहादिनिर्म्माणेद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथातःसम्प्रवक्ष्यामिगृहकालविनिर्णयम् ॥ यथाकालंशुभंज्ञात्वातदाभवनमारभेत् ॥ ३२६ ॥ मृदुध्रुवस्वातिपुष्यधनिष्ठाद्वितयेरवौ ॥ मूलेपुनर्वसौसौम्यवारेप्रारंभणंशुभम् ॥ ३२७ ॥ आदित्यभौमवर्जन्तुवाराः सर्वेशुभावहाः ॥ द्वितीयाचतृतीयाचषष्ठीचपञ्चमीतथा ॥ ३२८ ॥ सप्तमीदशमीचैवद्वादश्येकादशीतथा ॥ त्रयोदशीपञ्चदशीतिथयःस्युः शुभावहाः ॥ ३२९ ॥ दारिद्र्यम्प्रतिपत्कुर्या च्चतुर्थीधनहारिणी ॥ अष्टम्युच्चाटनञ्चैवनवमीशस्त्रघातिनी ॥ ३३० ॥

आगे कालका निर्णय कहतेहैं- कालके अनुसार शुभ मुहूर्तको जानकर भवनका प्रारंभ करै ॥ ३२६ ॥ मृदु (मृ० रे० चि० अ०) ध्रुव (उ० ३ रो०) स्वाति धनिष्ठा श्रवण मूल पुनर्वसु इनपर सूर्यहो और सौम्यवार होय तो गृहका प्रारंभ श्रेष्ठ होताहै ॥ ३२७ ॥ आदित्य भौमको छोडकर समस्त वार शुभदायी होतेहैं और । २ । ३ । ६ । और । ५ । पंचमी ॥ ३२८ ॥ ७ । १० । १२ । ११ । १३ । और पूर्णिमा १५ ये तिथि शुभदायी कहीहैं ॥ ३२९ ॥ प्रतिपदा दारिद्र्यको करतीहैं और अष्टमी उच्चाटन करतीहै और नवमी

शस्त्रोंसे घात करातीहै ॥ ३३० ॥ अमावस्याको राजसे भय चतुर्दशीको पुत्र और दाराका नाश होताहै धनिष्ठा आदि
पांच । ५ । नक्षत्रोंमें स्तंभका स्थापन नकरै ॥ ३३१ ॥ और सूत्रधार शिलाका स्थापन और प्रन्कार आदिको करले दोप्रकारका
यामित्र वेध उपग्रह और कर्तरी योग येभी वर्जने योग्यहैं ॥ ३३२ ॥ एकार्गल लत्ता युति और क्रकच योग दो प्रकारका पात
वैधृति येभी वर्जितहैं ॥ ३३३ ॥ कुलिक कंटक काल और यमघंट और जन्मसे तीसरा पांचमां और छठा तारा और नक्षत्र

दर्शेराजभयम्भूतेसुतदारविनाशनम् ॥ धनिष्ठापञ्चकेनैवकुर्यात्स्तंभसमुच्छ्रयम् ॥ ३३१ ॥ सूत्रधारशिलान्यासंप्राकारादिसमाल
भेत् ॥ यामित्रंद्विविधंवर्ज्यंवेधोपग्रहकर्त्तरि ॥ ३३२ ॥ एकार्गलन्तथालत्तायुतिक्रकचसंज्ञकाः ॥ पातन्तुद्विविधंवर्ज्यंव्यतीपातश्च
वैधृतिः ॥ ३३३ ॥ कुलिकङ्कटकङ्कालंयमघण्टन्तथैवच ॥ जन्मतृतीयपञ्चाङ्गतारावर्ज्यानिभानिच ॥ ३३४ ॥ कुयोगावनसं
ज्ञश्चतथात्रिस्पृक्खलन्दिनम् ॥ पापलग्नानिपापांशाः पापवर्गास्तथैवच ॥ ३३५ ॥ कुयोगास्तिथिवारोत्थास्तिथिभोत्थाभवारजाः ॥
विवाहादिषुयेवर्ज्यास्तेवर्ज्यावास्तुकर्मणि ॥ ३३६ ॥ वास्तुचक्रंप्रवक्ष्यामियच्चव्यासेनभाषितम् ॥ यस्मिन्नृक्षेस्थितोभानुस्तदादौ
त्रीणिमस्तके ॥ ३३७ ॥ चतुष्कमग्रपादेस्यात्पुनश्चत्वारिपाश्चिमे ॥ पृष्ठेचत्रीणिऋक्षाणिदक्षकुक्षौचतुष्ककम् ॥ पुच्छेचत्वारिऋक्षा
णिकुक्षौचत्वारिवामतः ॥ ३३८ ॥

वर्जितहैं ॥ ३३४ ॥ कुयोग और वनसंज्ञक योग और तीन तिथियोंका जिसमें स्पर्शहो ऐसा दुष्टदिन पाप लग्न और पापका नवांश
और पापग्रहोंका वर्गयेभी वर्जितहैं ॥ ३३५ ॥ तिथि वारके कुयोग और तिथि नक्षत्रके कुयोग और तिथि वारका कुयोग जो
विवाह आदिमें वर्जितहैं वे वास्तुकर्ममें भी वर्जितहैं ॥ ३३६ ॥ उस वास्तुचक्रको कहताहूं- जो व्यासने कहाहै जिस नक्षत्र
पर सूर्य होय उससे लेकर तीन नक्षत्र मस्तकपर रक्खै ॥ ३३७ ॥ चार नक्षत्र अग्रपाद और चार नक्षत्र पश्चिम पादमें और तीन नक्षत्र

पीठपर और चार नक्षत्र दाहिनी कुक्षिमें और चार नक्षत्र पूंछपर और चार नक्षत्र वाम कुक्षिमें रक्खै ॥ ३३८ ॥ और तीन नक्षत्र मुखपर होतेहैं. इस प्रकार अठाईस तारा होतेहैं शिरका तारा अग्निका दाह करताहै अग्रपादमें गृहसे उद्वास (निकसना) ॥ ३३९ ॥ पश्चिम पादके नक्षत्रोंमें स्थिरता और पीठके नक्षत्रोंमें धनका आगम और दक्षिण कुक्षिके नक्षत्रमें लाभ और पुच्छके नक्षत्रोंमें स्वामीका नाश होताहै ॥ ३४० ॥ वाम कुक्षिके नक्षत्रमें दरिद्रता और मुखके नक्षत्रोंमें निरंतर पीडा होतीहै और पुनर्वसु नक्षत्रोंमें राजा आदिके सूतिकागृहको बनवावै ॥ ३४१ ॥ श्रवण और अभिजित् नक्षत्रोंमें सूतिकागृहमें प्रवेश

मुखेभत्रयमेवस्युरष्टाविंशतितारकाः ॥ शिरस्ताराग्निदाहायगृहोद्वासोग्रपादयोः ॥ ३३९ ॥ स्थैर्य्यंस्यात्पश्चिमेपादेपृष्ठेचैवंधनागमः ॥ कुक्षौस्याद्दक्षिणेलाभः पुच्छेचस्वामिनाशनम् ॥ ३४० ॥ वामकुक्षौचदारिद्र्यम्मुखेपीडानिरन्तरम् ॥ पुनर्वसौनृपादीनाङ्कर्तव्यंसूतिकागृहम् ॥ ३४१ ॥ श्रवणाभिजितोर्मध्येप्रवेशन्तत्रकारयेत् ॥ चरलग्नेचरांशेचसर्वथापरिवर्जयेत् ॥ ३४२ ॥ जन्मभाच्चोपचयभेलग्नेवर्गेतथैवच ॥ प्रारम्भणंप्रकुर्वीतनैधनंपरिवर्जयेत् ॥ ३४३ ॥ पापैस्त्रिषष्ठायगतैः सौम्यैः केन्द्रत्रिकोणगैः ॥ निर्माणङ्कारयेद्धीमानष्टमस्थैः खलैर्मृतिः ॥ ३४४ ॥ मनुष्यलग्नेसौम्यानान्दृग्योगेयोगतस्तथा ॥ कुम्भंविहायान्यतरेलग्नेसौम्यग्रहान्विते ॥ ३४५ ॥

करवावै और चर लग्न और चरलग्नके नवांशको सर्वथा वर्जदे ॥ ३४२ ॥ जन्मकी राशिसे उपचय (वृद्धि) का लग्न और उपचयकी राशिमें प्रारंभ करै और जन्मलग्नसे आठमें लग्नको वर्जदे ॥ ३४३ ॥ पापग्रह । ३ । ६ । ११ । में सौम्य ग्रह केन्द्र (१ । ४ । ७ । १०) और त्रिकोण (९ । ५ ।) मेंहो ऐसे लग्नमें बुद्धिमान् मनुष्य गृहको बनवावै और अष्टम लग्नमें पापग्रह होंय तो मरण होताहै ॥ ३४४ ॥ मनुष्यलग्न होय और सौम्यग्रहोंकी दृष्टिका योग होय तो कुंभसे भिन्न किसी सौम्यग्रहसे युक्त लग्नमें ॥ ४४५ ॥

52

जलाशय आदि वास्तुओंका प्रारंभ शुभदायी कहाहै ॥ ३४६ ॥ इसके अनंतर योगोंका वर्णन करतेहैं कि गुरु लग्नमें हो सूर्य छठे हो और सौम्यग्रह द्यून ७ में हो शुक्र सुख (४) में हो तीसरे शनैश्चर हो ऐसे लग्नमें बनाया जो घर उसकी सौ १०० वर्षकी अवस्था होतीहै ॥ ३४७ ॥ शुक्र लग्नमें हो और दशमें सौम्यग्रह हो सूर्य लाभ ११ । स्थानमें हो गुरु केन्द्र में होय तो उस लग्नमें बनाया मंदिर सौ १०० वर्ष टिकताहै ॥ ३४८ ॥ चौथे गुरु हो १० दशमें चंद्रमा हो लाभमें मंगल और सूर्य हो ऐसे लग्नमें जिसका प्रारंभ किया जाय उसकी ८० अस्सी वर्षकी अवस्था होतीहै ॥ ३४९ ॥ लग्नमें शुक्र हो पंचममें गुरु हो छठे ६ मंगल हो

जलाशयादिवास्तूनांप्रारम्भःशुभदः स्मृतः ॥ ३४६ ॥ अथयोगाः ॥ गुरुर्लग्नेरविःषष्ठेद्यूनेसौम्येसुखेसिते ॥ तृतीयस्थेर्कपुत्रेचतद्गृहंशतमायुषम् ॥ ३४७ ॥ भृगुर्लग्नेंबरेसौम्येलाभस्थानेचभास्करे ॥ गुरुः केन्द्रगतोयत्रशतवर्षाणितिष्ठति ॥ ३४८ ॥ हिबुकेज्येंबरेचन्द्रेलाभेचकुजभास्करौ ॥ आरंभः क्रियतेयस्यअशीत्यायुः क्रमाद्भवेत् ॥ ३४९ ॥ लग्नेभृगौपुत्रगेज्येषष्ठेभौमेतृतीयगे ॥ रवौयस्यगृहारम्भेसचतिष्ठेच्छतद्वयम् ॥ ३५० ॥ लग्नस्थौगुरुशुक्रौचारिपुराशिगतेकुजे ॥ सूर्य्येलाभगतेयस्यद्विशताब्दानितिष्ठति ॥ ३५१ ॥ स्वोच्चस्थोवाभृगुर्लग्नेस्वोच्चेजीवेसुखस्थिते ॥ स्वोच्चेलाभगतेमंदेसहस्राणांसमास्थितिः ॥ ३५२ ॥ स्वोच्चेस्वभवनेसौम्यैर्लग्नस्थैर्वापिकेन्द्रगैः ॥ प्रारम्भः क्रियतेयस्यशतद्वयंसतिष्ठति ॥ ३५३ ॥

तीसरे सूर्य हो ऐसे लग्नमें जिस घरका आरंभ वह २०० वर्षतक टिकताहै ॥ ३५० ॥ लग्नमें गुरु शुक्र स्थित हों और छठी राशिपर मंगल हो और सूर्य लाभमें हो ऐसे लग्नमें बनायाहुआ घर २०० वर्षतक टिकताहै ॥ ३५१ ॥ अपने उच्चका शुक्र लग्नमें हो और अपने उच्चका बृहस्पति सुख ४ में हो और अपने उच्चका सूर्य लाभमें हो ऐसे लग्नमें जिस घरका आरंभ किया जाय ऐसा घर हजार १००० वर्षतक टिकताहै ॥ ३५२ ॥ अपने उच्चके वा अपने अपने गृहके वा लग्नमें स्थित अथवा केंद्रमें

स्थित सौम्य ग्रह हो ऐसे लग्नमें जिसका प्रारंभ हो वह गृह सौवर्षतक टिकताहै ॥ ३९३ ॥ कर्कलग्नमें चंद्रमा और केन्द्रमें बृह
स्पति और मित्रगृह वा अपने उच्चके अन्य ग्रह होय तो उस घरमें चिरकालतक लक्ष्मी होती है ॥ ३९४ ॥ पुष्य तीनों उत्तरा श्लेषा मृगशि
र श्रवण रोहिणी और जलके नक्षत्र शतभिषा इनमें बनाया हुआ घर लक्ष्मीसे युक्त होताहै ॥ ३९५ ॥ विशाखा चित्रा शतभिषा आर्द्रा
पुनर्वसु धनिष्ठा और शुक्रवार सहित इन नक्षत्रोंमें बनायाहुआ घर अन्नको देताहै ॥ ३९६ ॥ हस्त मघा चित्रा अश्विनी और अनुरा
धा बुधवार सहित इन नक्षत्रोंमें बनाया घर धन पुत्र और सुखदायी होताहै ॥ ३९७ ॥ अब कुयोगोंका वर्णन करतेहैं कि-छठेस्थानमें

कर्कलग्नगतेचन्द्रेकेन्द्रस्थानेचवाक्पतिः ॥ मित्रस्वोच्चस्थितैः खेटैर्लक्ष्मीस्तस्यचिरम्भवेत् ॥ ३९४ ॥ इज्योत्तरात्रयाहीन्दुविष्णु
धातृजलोडुषु ॥ वरुणासहितेष्वेषुकृतङ्गेहंश्रियायुतम् ॥ ३९५ ॥ द्विदैवत्वाष्ट्रवारीशरुद्रादितिवसूडुषु ॥ शुक्रेणसहितेष्वेषुकृ
तन्धान्यप्रदंगृहम् ॥ ३९६ ॥ हस्तार्यमत्वाष्ट्रदस्रचानुराधोडुभेषुच ॥ बुधेनसहितेष्वेषुधनपुत्रसुखप्रदम् ॥ ३९७ ॥ कुयोगाः ॥
शत्रुक्षेत्रगतैः खेटैर्नीचस्थैर्वापराजितैः ॥ प्रारम्भेयस्यभवनेलक्ष्मीस्तस्यविनश्यति ॥ ३९८ ॥ एकोपिपरभागस्थोदशमेसप्तमेपिवा ॥
वर्णाधिपेबलैर्हीनेतद्गृहम्परहस्तगम् ॥ ३९९ ॥ पापान्तरगतेलग्नेनचसौम्ययुतेक्षिते ॥ अष्टमस्थेऽर्कपुत्रेचअशीत्यब्दाद्विहन्यते॥३६०॥
मन्देलग्नगतेचैवकुजेसप्तमसंस्थिते ॥ शुभैरवीक्षितेवापिशतवर्षाणिहन्यते ॥ ३६१ ॥

ऐसे ग्रह पडे होय जो नीचके हो वा पराजितहो ऐसे लग्नमें जिस गृहका प्रारंभहो उसमें लक्ष्मीका नाश होताहै ॥ ३९८॥ जिस लग्नमें एकभी
गृह परभागमें स्थितहो वा दशम सप्तममें स्थितहो और वर्णका स्वामी बलसे हीनहो तो वह घर परहस्तगामी होजाताहै ॥३९९॥ पापगृहों
के अन्तर्गत लग्न हो और सौम्य ग्रहोंसे युक्त और दृष्ट नहो और अष्टम स्थानमें शनैश्चर होय तो वह घर अस्सी वर्षके मध्यमें
नष्ट होजाताहै ॥ ३६० ॥ शनैश्चर लग्नमें स्थितहो और मंगल ७ सप्तमभवनमें और लग्नमें शुभग्रहोंकी दृष्टि नहोय तो वह घर सौ १००

वर्षमें नष्ट होजाताहै ॥३६१॥क्षीण चंद्रमा लग्नमें हो और अष्टम स्थानमें मंगलहो ऐसे लग्नमें जिसका प्रारंभ हो वह घर शीघ्र नष्ट होजाताहै ॥ ३६२ ॥ दशाका पति और वर्णका नाथ बलसे हीनहो और पीडितनक्षत्रपर सूर्य हो ऐसे लग्नमें कदाचित घरको न बनवावै ॥ ३६३ ॥ मघा मूल पुष्य भाग्य (पूर्वाफा०)रेवती इनमें बनाया हुआ घर ॥ ३६४ ॥ और मंगल सहित इनमें बनाया घर अग्निसे भस्म होजाताहै ॥ ३६५ ॥ मूल रेवती कृत्तिका पूर्वाषाढा पूर्वाफाल्गुनी हस्त और सातमां मघा ॥ ३६६ ॥ मंगलसे युक्त इन नक्षत्रोंमें और मंगलवारमें

लग्नगेशशिनिक्षीणेमृत्युस्थानेचभूसुते ॥ प्रारम्भः क्रियतेयस्यशीघ्रन्तद्धिविनश्यति ॥ ३६२ ॥ दशायतौबलैर्हीनेवर्णनाथेतथैवच ॥ पीडितर्क्षगतेसूर्येनविदध्यात्कदाचन ॥ ३६३ ॥ पितृमूलयेज्यभाग्यार्कपौष्णभेषुचयत्कृतम् ॥ ३६४ ॥ कुजेनसहितेष्वेषुगृहं सन्दह्यतेग्निना ॥ ३६५ ॥ मूलञ्चरेवतीचैवकृत्तिकाषाढमेवच ॥ पूर्वाफाल्गुनिहस्तेचमघाचैवतुसप्तकम् ॥ ३६६ ॥ एषुभौमेन युक्तेषुवारेतस्यैववेश्मयत् ॥ अग्निनादह्यतेकृत्स्नंपुत्रनाशःप्रजायते ॥ ३६७ ॥ अग्निनक्षत्रगेसूर्येचन्द्रेवातत्रसंस्थिते ॥ निर्मितम्मन्दिर न्नूनमग्निनादह्यतेचिरात् ॥ ३६८ ॥ ज्येष्ठानुराधकेचैवभरणीस्वातिपूर्वभे ॥ धनिष्ठास्वपिऋक्षेषुशनिस्तिष्ठेद्दिनस्यच ॥ ३६९ ॥ कृपणोनामतः प्रोक्तोधनधान्यादिकेगृहे ॥ पुत्रेजातेथवातस्मिन्गृह्यतेयक्षराक्षसैः ॥ ३७० ॥

जो घर बनाया जाताहै वह संपूर्ण अग्निसे दग्ध होताहै और उसमें पुत्र नष्ट होजाताहै ॥ ३६७ ॥ अग्निके नक्षत्रमें सूर्य वा चंद्रमा स्थितहो य तो ऐसे लग्नमें बनायाहुआ मंदिर थोडे दिनोंमें निश्चयसे दग्ध अग्निसे होताहै ॥ ३६८ ॥ ज्येष्ठा अनुराधा भरणि स्वाती पूर्वा तीनों और धनिष्ठा इन नक्षत्रोंमें और शनैश्चरके दिन-बनाया मंदिर ॥ ३६९ ॥ नामसे कृपण कहाताहै और धन धान्यसहितभी उस घरमें उत्पन्न

हुआ पुत्र यक्ष और राक्षसोंसे ग्रहण कियाजाताहै ॥ ३७० ॥ प्रासादोंमें वापी कूप आदिमें भी यही फल होताहै तिससे शुभका अभिला
षी मनुष्य विचारकर घरका आरंभ करै ॥ ३७१ ॥ मकर वृश्चिक कर्क लग्नमें गृहका आरंभ होय, तो नाश हो मेष तुल धन लग्नमें होय तो
काममें दीर्घसूत्रीको कन्या मीन मिथुनमें होयतो निश्चयसे अर्थके लाभको कुंभ सिंह और वृषमें सिद्धिको ऐसे ज्योतिःशास्त्रके ज्ञाता वर्ण
न करतेहैं ॥ ३७२ ॥ मध्याह्नमें कियाहुआ वास्तु कर्ता और धनके नाशको देताहै अर्द्धरात्रिमें भी तैसाही फलहै और संध्यामेंभी गृहके
आरंभको न करै ॥ ३७३ ॥ इसके अनंतर भावोंके फलको कहतेहैं–लग्नमें सूर्य होय तो वज्रका पात चंद्रमा होय तो कोशकी हानि मंगल

प्रासादेष्वेवमेवंस्याद्वापीकूपेषुचैवहि ॥ तस्माद्विचार्यकुर्वीतगृहारंभंशुभेप्सुना ॥ ३७१ ॥ नाशन्दिशंतिमकरालिकुलीरलग्नेमेषे
घटेधनुषिकर्मसुदीर्घसूत्रम् ॥ कन्याझषेमिथुनगेध्रुवमर्थलाभंज्योतिर्विदः कलशसिंहवृषेषुसिद्धिम् ॥ ३७२ ॥ मध्याह्नेतुकृतंवास्तुकर्त्तु
र्वित्तविनाशनम् ॥ महानिशास्वपितथासन्ध्ययोर्नैवकारयेत् ॥ ३७३ ॥ अथभावफलानि ॥ लग्नेऽर्केवज्रपातः स्यात्कोशहानिश्चशी
तगौ ॥ मृत्युर्विश्वम्भरापुत्रेदारिद्र्यंरविनन्दने ॥ ३७४ ॥ जीवेधर्मार्थकामाः स्युः पुत्रोत्पत्तिश्चभार्गवे ॥ चन्द्रजेकुशलाशक्तिर्या
वदायुः प्रवर्त्तते ॥ ३७५ ॥ द्वितीयस्थेरवौहानिश्चन्द्रेशत्रुक्षयंभवेत् ॥ भूमिजेबन्धनम्प्रोक्तंनानाविघ्नानिभानुजे ॥ ३७६ ॥
बुधेद्रविणसंपत्तिर्गुरौधर्माभिवर्द्धनम् ॥ यथाकामविनोदेनभृगौकामंव्रजेत्फलम् ॥ ३७७ ॥ तृतीयस्थेषुपापेषुसौम्येष्वेवविशेषतः ॥
सिद्धिः स्यादचिरादेवयथाभिलषितम्प्राति ॥ ३७८ ॥

होय तो मृत्यु शनैश्चर लग्नमें होय तो दारिद्र्य होताहै ॥ ३७४ ॥ बृहस्पति होय तो धर्म अर्थ काम, शुक्र होय तो पुत्रोंकी उत्पत्ति बुध
होय तो जन्मभर अच्छे कर्मोंमें प्रवृत्ति होती है ॥ ३७५ ॥ दूसरे स्थानमें सूर्य होय तो हानि चंद्रमा होय तो शत्रुओंका नाश मंगल होय
तो बन्धन और शनैश्चर होय तो नानाप्रकारके विघ्न होतेहैं ॥ ३७६ ॥ बुध होय तो धनकी सम्पत्ति बृहस्पति होय तो धर्मकी वृद्धि और
शुक्र होय तो यथेच्छ आनंदसे फलोंकी कामना सिद्ध होतीहैं ॥ ३७७ ॥ तीसरे स्थानमें पापग्रह होय और विशेषकर सौम्यग्रह होय तो

अलपकालमेंही अपनी इच्छालुसार सिद्धि होतीहै ॥ ३७८ ॥ चौथेस्थानमें बृहस्पति होय तो राजासे पूजा प्राप्त होती है, बुध होय तो धनका लाभ और शुक्र होय तो भूमिका लाभ होताहै ॥ ३७९ ॥ सूर्य होय तो मित्रका वियोग मंगल होय तो मंत्रका भेद चंद्रमा होय तो बुद्धिका नाश और शनैश्चर होय तो सबका नाश होताहै ॥ ३८० ॥ पंचममें बृहस्पति होय तो मित्र और अन्न धनका आगमन होताहै शुक्र होय तो पुत्र और सुखकी प्राप्ति बुध होय तो रत्नोंका लाभ होताहै ॥ ३८१ ॥ सूर्य होय तो पुत्रोंका दुःख चंद्रमा होयतो कलह कहाहै. मंगल होय तो कार्यका विरोध शनैश्चर होय तो बंधुओंमें लड़ाई होतीहै ॥ ३८२ ॥ छठे स्थानमें सूर्य होय

चतुर्थस्थानगेजीवेपूजासंपद्यतेनृपात् ॥ चन्द्रजेचार्थलाभः स्याद्भूमिलाभश्चभार्गवे ॥३७९॥ वियोगः सुहृदांभानौमन्त्रभेदोमहीसुते ॥ बुद्धिनाशोनिशानाथेसर्वनाशोर्कनन्दने ॥ ३८० ॥ पंचमेतुसुराचार्येमित्रंवसुधनागमः ॥ शुक्रेपुत्रसुखावाप्तीरत्नलाभस्तथेन्दुजे॥३८१॥ सुतदुःखंसहस्रांशौशशाङ्केकलहः स्मृतः ॥ भौमेकार्यविरोधःस्यात्सौरेबन्धुविमर्दनम् ॥ ३८२ ॥ षष्ठस्थानगतेसूर्य्येरोगनाशंम्विनिर्दिशेत् ॥ चन्द्रेपुष्टिः कुजेप्राप्तिः सौरेशत्रुबलक्षयः ॥३८३॥ गुरौमन्त्रोदयः प्रोक्तोभृगौविद्यागमोभवेत् ॥ सम्यग्ज्ञानार्थकौशल्यन्नक्षत्रपतिनन्दने ॥ ३८४ ॥ सप्तमस्थानगेजीवेबुधेदैत्यपुरोहिते ॥ गजवाजिधरित्रीणाक्रमल्लाभंविनिर्दिशेत् ॥ ३८५ ॥ भास्करेकीर्तिभङ्गः स्यात्कुजेविपदमादिशेत् ॥ हिमगौक्लेशआयासः पतङ्गव्यङ्गताभयम् ॥ ३८६ ॥

तो रोगके नाशको कहै चंद्रमा होयतो पुष्टि मंगल होय तो प्राप्ति शनैश्चर होयतो शत्रुओंके बलका क्षय होताहै ॥ ३८३ ॥ बृहस्पति होय तो मंत्रका उदय कहाहै शुक्र होय तो विद्याका आगम कहाहै और बुध होय तो भलीप्रकार ज्ञान और अर्थमें कुशलता होतीहै ॥ ३८४ ॥ सातमें स्थानमें बृहस्पति बुध और शुक्र होय तो क्रमसे गज वाजी और पृथिवीके लाभको कहे ॥ ३८५ ॥ सूर्य होय तो कीर्तिका नाश होताहै मंगल होयतो विपत्तियोंको कहै चंद्रमा होय तो क्लेश और परिश्रम होताहै

सूर्य होय तो अंगहीनता और भय होताहै ॥ ३८६ ॥ अष्टमस्थानमें सूर्य होय तो वैरियोंसे दुःख होताहै चंद्रमा होय तो हानि मंगल शनैश्चर होंय तो रोगका भय होताहै ॥ ३८७ ॥ बुध होय तो मान और धनकी प्राप्ति बृहस्पति होय तो विजय होताहै शुक्र होयतो मंत्रके ज्ञाताभी मनुष्यके यहां अपने जनोंसे भेद होताहै ॥ ३८८ ॥ बृहस्पति नवमस्थानमें होय तो विद्या भोग आदिका आनंद होताहै बुध होय तो अनेक प्रकारके भोग और शुक्र होय तो विजय होताहै ॥ ३८९ ॥ चंद्रमा होय तो धातुओंका नाश कहाहै सूर्य होय तो धर्मकी हानि मंगल होय तो धनका नाश शनैश्चर होय तो धर्ममें दूषण होता

नैधनेचसहस्रांशौविद्विषोजनितःपदः ॥ हानिः शीतमयूखेचभौमेसौरेचरुग्भयम् ॥ ३८७ ॥ बुधेमानधनप्राप्तिर्जीवेचविजयोभवेत् ॥ शुक्रेस्वजनभेदः स्यान्मंत्रज्ञस्यापिदेहिनः ॥ ३८८ ॥ वागीशेनवमस्थानेविद्याभोगादिनन्दनम् ॥ बुधेविविधभोगाश्चजीवेचविजयो भवेत् ॥ ३८९ ॥ चन्द्रेधातुक्षयः प्रोक्तोधर्महानिश्चभास्करे ॥ कुजेचार्थक्षयोविद्याद्रविजेधर्मदूषणम् ॥ ३९० ॥ दशमस्थानगेशुक्रे शयनासनसिद्धयः ॥ सुराचार्येमहत्सौख्यंविजयंस्त्रीधनम्बुधे ॥ ३९१ ॥ मार्तण्डेवसुहृद्वृद्धिश्चन्द्रेशोकविवर्द्धनम् ॥ भौमेरत्नागमः प्रोक्तः कोणेकीर्तिविलोपनम् ॥ ३९२ ॥ लाभस्थानेषुसर्वेषुलाभस्थानंविनिर्दिशेत् ॥ व्ययस्थानेषुसर्वेषुविनिर्देश्योव्ययः सदा ॥ ३९३ ॥ स्वोच्चेपूर्णफलः प्रोक्तः पादोनंस्वर्क्षगोग्रहः ॥ स्वत्रिकोणेर्द्धफलदः पादम्मित्रगृहाश्रितः ॥ ३९४ ॥

है ॥ ३९० ॥ दशमें स्थानमें शुक्र होय तो शयन आसनकी सिद्धि होती है बृहस्पति होय तो महान् सुख, बुध होय तो विजय और स्त्री और धनकी वृद्धि होतीहै ॥ ३९१ ॥ सूर्य होयतो मित्रोंकी वृद्धि चंद्रमा होयतो शोककी वृद्धि होतीहै मंगल होय तो रत्नोंका आगम और शनि होय तो कीर्तिका लोप होताहै ॥ ३९२ ॥ लाभ स्थानमें संपूर्ण ग्रह होंय तो लाभको कहे और व्यय १२ स्थानमे संपूर्ण ग्रह होय तो सदैव व्ययको कहैं ॥ ३९३ ॥ अपने उच्चका ग्रह होयतो पूर्ण फल कहाहै अपनी

राशिका ग्रह होय तो पादोन कहाहै अपने त्रिकोणका होय तो आधा फल देताहै मित्रके गृहका होय तो चौथाई फलको देताहै ॥ ३९४ ॥ समराशि वा रिपुकी राशिके ग्रह होंय तो समता और कष्ट फलको देतेहैं. नीचराशिमें स्थित ग्रह निष्फल कहाहै और वर्गका होय तो श्रेष्ठफलका दाता शुभ कहाहै ॥ ३९५ ॥ ॥ इति वास्तुशास्त्रे पं० मिहिरचंद्रकृतभाषाविवृतिसहिते तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ उत्तम मध्यम निंदितभेदसे तीन प्रकारके गृह चौदह १४ प्रकारके कहेहैं, उनके संक्षेपसे प्रमाणको कहताहुं ॥ ३९६ ॥ वह गृह दोप्र कारका कहाहै और शरीर भिन्न २ प्रकारका होताहै और गृह नामका शरीर होताहै और शयनके चक्रमें शय्याको गृह कहतेहैं

समर्क्षेरिपुराशौचसमकष्टफलौग्रहौ ॥ नीचस्थोनिष्फलः प्रोक्तोवर्गेसत्फलदः शुभः ॥ ३९५ ॥ इतिवास्तुशास्त्रेतृतीयोऽध्यायः॥३ ॥
चतुर्दशविधाःप्रोक्ता गृहाश्चोत्तममध्यमाः ॥ निन्दिताश्चप्रमाणञ्चकथयामिसमासतः ॥ ३९६॥ गृहन्ताद्द्विविधंप्रोक्तंशरीरन्तुपृथग्विधम्॥ शरीरन्तुगृहन्नामशय्याशयनचक्रके ॥ ३९७ ॥ शय्यामानंस्वदेहेनसमङ्कार्यंसुखेप्सुना ॥ एकाशीत्यङ्गुलाशय्यानवत्यङ्गुलसम्मिता ॥ ३९८ ॥ तदर्द्धेनचविस्तीर्णापादुकाव्द्यङ्गुलौ ॥ आसनन्तुप्रकर्त्तव्यंशय्याविस्तारमानकम् ॥ ३९९ ॥ विस्तारंपादहीनन्तुतद्विस्तारंप्रकल्पयेत् ॥ उपानहौप्रकर्तव्यौस्वपादप्रमितौतथा ॥ ४०० ॥ पादुकेनतथाकार्येअन्यथादुःखशोकदौ ॥ अष्टाङ्गुलेनमानेनशय्यामानंप्रकल्पयेत् ॥ १ ॥

॥ ३९७ सुखका अभिलाषी मनुष्य शय्याका प्रमाण अपने देहके प्रमाण कितना करै शय्या ८१ इक्यासी अंगुलकी वा न०वह अंगुल के प्रमाणकी शय्या होतीहै ॥ ३९८ ॥ और उसके आधे प्रमाणसे उसका विस्तार होताहै और उसके पादुक (पावे) द्व्यतङ्गुल होतेहैं अर्थात् आधे अंगुल उंचे होतेहैं और शय्याके विस्तारके प्रमाणकाही आसन बनवाना ॥ ३९९ ॥ और उसके विस्तारसे पाद कम उसके विस्तारको अर्थात् चौड़ाईको करै और अपने चरणोंके समान उपानह बनवावै ॥ ४०० ॥ और पादुकभी चरणोंके समा-

नहीं बनवावै अन्यथा बनवावै तो दुःख और शोकको देतेहैं. आठ अंगुलके मानसे शय्याका प्रमाण बनवावै ॥ १ ॥ अथवा कामकी इच्छावाले राजाओंकी अन्यभी शय्या कहीहै ॥२॥ सौ अंगुलकी शय्या राजाओंकी बडी कहीहै ॥ ३ ॥ राजाके कुमारोंकी शय्या नव्वह अंगुलकी और मंत्रियोंकी शय्या ८४ चौरासी अंगुलकी होतीहै उससे बारह १२ अंगुल कम वलय और पर्यंकके ऊपर कल्पनाकी हुई ॥ ॥ ४ ॥ अथवा २८ अंगुल कम पुरोहितोंकी शय्या होतीहै उससे आधा और ८ अंश कम विष्टंभ (पाया) कहाहै ॥ ५ ॥ और तीस ३० अंगुलके मानका आयाम (चौडाई) और एक पादभर उंचाई कहीहै. संपूर्ण वर्णोंकी शय्या ८१ अंगुलकी कहीहै ॥ ६ ॥

अथवाह्यपरांप्रोक्तानृपाणाङ्काम्यमिच्छताम् ॥२॥ शताङ्गुलानृपाणान्तुंमहतीपरिकीर्तिता ॥ ३ ॥ कुमाराणान्तुनवतिः साषड्नातुमंत्रिणाम् ॥ साद्वादशोनावलयपर्य्यङ्कोपरिकल्पिता ॥ ४ ॥ पुरोहितानाञ्चतथाहीनाधृत्यङ्गुलैस्ततः ॥ अर्द्धन्ततोष्टांशहीनंविष्टम्भःपरिकीर्तितः ॥ ५ ॥ आयामास्त्र्यंशमानन्तुपादोच्छ्रायन्तुनिर्दिशेत् ॥ सर्वेषाञ्चैववर्णानामेकाशीतिमितास्मृता ॥६॥ सामंतानान्तुनवतिः सैकाशीतिमितातथा ॥ स्वदेहान्नातिदीर्घासानविस्तारातथैवच ॥ ७ ॥ हीनारोगप्रदादीर्घादुःखदासुखदासमा ॥ पाषाणैर्निर्मितंयत्तुतद्गृहम्मन्दिरंस्मृतम् ॥ ८ ॥ पक्वेष्टकंवास्तुनामभवनंहितमुत्तमम् ॥ अनिष्टकैःसुमनन्तुसुधारङ्कर्दमेनतु ॥ ९ ॥ मानस्यंवर्द्धितंकाष्ठैर्वेत्रैश्चचन्दनंस्मृतम् ॥ वस्त्रैश्चविजयंप्रोक्तंराज्ञांशिल्पिविकल्पितम् ॥ १० ॥

और सामन्तोंकी शय्या ९० अंगुल वा ८१ अंगुलकी कही है और वह शय्या न अपने देहसे लम्बीहो और न चौडी हो ॥ ७ ॥ अपने शरीरसे हीन शय्या रोगको देतीहै और शरीरसे लम्बी दुःखको और समान शय्या सुखको देतीहै. पत्थरोंसे बनाया जो घर उसै मंदिर कहते हैं ॥ ८ ॥ और पक्की ईंटोंसे बनाया जो घरहै उसै भवन कहतेहैं वह हित और उत्तम होताहै और कच्ची ईंटोंसे जो बनाहो उसे सुमन और कीच वा गारेसे बनाहो उसै सुधार कहतेहैं ॥ ९ ॥ काष्ठोंसे जो बनाया हो

और राजाओंका वस्त्रोंसे बनाया जो शिलिपयोंकी कल्पनासे स्थान
उसको मानस्य और वेंतोंसे जो बनाया हो उसको चंदन कहतेहैं और राजाओंका वस्त्रोंसे बनाया स्थानहै उसे कालिमा कहतेहैं और गृहस्थीयोंके चार स्थान उत्तम
उसे विजय कहतेहैं ॥१०॥ और जो आठमां तृणकी जातियोंसे बनाया स्थानहै उसे कालिमा कहतेहैं और गृहस्थीयोंके चार स्थान उत्तम
होतेहैं॥११॥कि सुवर्णसे चांदीसे तामेसे और लोहेसे बनेहुए वे चारों कहेहैं. सुवर्णसे बने हुएको कर और चांदीसे बने हुएको श्रीभव कहते
हैं ॥१२॥ तामेसे बनेहुएको सूर्यमंत्र और लोहेसे बने हुएको चण्ड नाम कहतेहैं और देव दानव गन्धर्व यक्ष राक्षस और पन्नग॥१३॥ ये पूर्वो

कालमेतिचविज्ञेयमष्टमंतृणजातिभिः ॥ उत्तमानिचचत्वारिगृहाणिगृहमेधिनाम् ॥ ४११ ॥ सौवर्णराजतंताम्रमायसंचप्रकीर्तितम् ॥
सौवर्णन्तुकरन्नामराजतंश्रीभवन्तथा ॥ १२ ॥ ताम्रेणसूर्यमन्त्रन्तुचण्डनामतथायसम् ॥ देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगाः ॥ १३ ॥
द्वादशैतेप्रकारास्तुगृहाणांनियताः स्मृताः ॥ जातुषंत्वनिलंनामप्रायुवंवारिबन्धकम् ॥ १४ ॥ एवंसर्वासुजातीषुगृहाणिचचतुर्द
श ॥ चत्वारश्चोत्तमायेचतेगृहावर्णपूर्वकाः ॥ १५ ॥ शुभदाब्राह्मणादीनांसर्वेषामपिशोभनाः ॥ उत्तमाः शुद्धकालेषुस्थाप्याः शु
द्धविधानतः ॥ १६ ॥ काष्ठादिकृतगेहेषुकालापेक्षांनकारयेत् ॥ तृणदारुगृहारम्भेविकल्पंनैवकारयेत् ॥ १७ ॥ सौवर्णा
दिगृहारंभेमासदोषोनविद्यते ॥ पञ्चाङ्गशुद्धकालेतुनचैत्रसिंहपौषके ॥ १८ ॥

जिसमें हो उसको प्रायुव कहतेहैं॥१४॥
क गृहोंके बारह प्रकार नियमसे कहेहैं लाखसे बनाया जो घर है उसको अनिल और जलका बन्धन जिसमें हो उसको प्रायुव कहतेहैं॥१४॥
इसप्रकार संपूर्ण जातियोंमें१४प्रकार के घर होतेहैं चार जो पूर्वोक्त उत्तम घर हैं वे ब्राह्मण आदि वर्णोंके क्रमसे होतेहैं ॥१५॥ और ब्राह्मण
आदिकोंको शुभदायी होतेहैं और सब वर्णोंके लियेभी शोभन हैं उत्तम घरोंका शुभकालमें और शुद्धविधिसे स्थापन करना ॥ १६ ॥
काष्ठआदिसे बनाये हुए घरोंमें कालकी अपेक्षाको नकरै तृण और काष्ठके गृहारंभमें भी विकल्प नकरै. ॥ १७ ॥ सुवर्णआदिके गृहारंभमें

मासका दोष नहीं होता और पंचाङ्गके शुद्ध कालमें प्रारंभ करै और चैत्र भाद्रपद और पौष इनमें प्रवेश न करै ॥ १८ ॥ और महोत्सव
में प्रवेश न करै और पक्की ईंटोंसे बनाये हुए शिल्पके मानको कहतेहैं ॥ १९ ॥ काष्ठ आदिसे बनाये हुए घरमें स्तंभके मानको कहतेहैं.
सुवर्ण आदिके घरमें हस्तप्रमाणको कहतेहैं और लाखआदिसे बनाये घरमें किंचितभी प्रमाणको नहीं कहते ॥२०॥ पादुक और उपानह
अंगुलके प्रमाणसे बनवाने मंच आदि और आसनभी अंगुलसेही बनवाने ॥ २१ ॥ प्रतिमा पीठिका लिंग और स्तंभ गवाक्षोंका प्रमाण

प्रवेशनञ्चकर्तव्यंमहोत्सवदिनेतथा ॥ पक्केष्टकानिर्मितेतुशिल्पमानम्प्रवक्ष्यते ॥ १९ ॥ काष्ठादिनिर्मितेगेहेस्तंभमानंप्रचक्षते ॥
सौवर्णादिकेहस्तमानंजातुपाद्येनकिञ्चन ॥ २० ॥ पादुकोपानहौकार्य्यौअङ्गुलस्यप्रमाणतः ॥ मञ्चादिकश्चासनञ्चअङ्गुलेनैवकारयेत्
॥ २१ ॥ प्रतिमापीठिकाचापिलिङ्गंवास्तम्भमेववा ॥ गवाक्षाणांप्रमाणञ्चशिलामानन्तथैवच ॥ २२ ॥ खङ्गचर्मायुधादीनांप्रमा
णञ्चाङ्गुलानिच ॥ विषमाः शुभदाः पुंसांसमाः सौख्यविनाशकाः ॥ २३ ॥ अङ्गुलस्यप्रमाणन्तुकथयामिसमासतः ॥ नवाष्टसप्त
षट्पूर्वाअङ्गुलाः परिकीर्तिताः ॥ २४ ॥ त्रिविधस्यापिहस्तस्यप्रत्येकङ्कर्मदर्शितम् ॥ ग्रामखेटपुरादीनांविभागोयमविस्तरात् ॥२५ ॥
परिखाद्वाररथ्यश्चस्तम्भाः प्रासादवेश्मनाम् ॥ तेषान्निर्गममार्गेचसीमान्तेत्रांतराणिच ॥ २६ ॥

और शिलाका मान ॥२२॥ खड्ग और चर्म और आयुध इनका प्रमाण अंगुलसेही होताहै विषम अंगुल पुरुषोंको सुखदायी और सम
अंगुल पुरुषोंके सुखके नाशक होतेहैं ॥ २३ ॥ अब संक्षेपसे अंगुलके प्रमाणको कहताहुं नव आठ सात छः ये हैं पूर्व जिनके ऐसे अंगुल
कहेहैं ॥२४ ॥ तीन प्रकारके भी हाथका प्रत्येक कर्म दिखायाहै ग्राम खेट पुर आदिकोंका यह विभाग विना विस्तारसे हैं ॥ २५ ॥ परिखा
(खाई) द्वार रथ्या (गली) स्तम्भ जो प्रासाद (घरों) के होतेहैं और उनके निकसनेके मार्गमें और सीमाके अन्तमें अन्त्रान्तर ॥ २६ ॥

और दिशान्तरोंका विभाग वस्त्र और आयोधनका विभाग और मार्गका परिमाण क्रोश गव्यूति और योजनोंसे होताहै ॥ २७ ॥ खात क्रकच इनकी राशि प्रासादका आंगन और आयत इनको नौ ९ जिसमें यव हों ऐसे अंगुलके हाथसे मापकर बनवावै ॥ २८ ॥ आयोधन चर्म और चर्म आयुध वापी कूपका और हाथी और घोडोंका प्रमाण ॥ २९ ॥ इक्षुयन्त्र (कोल्हू) आरघण्ट हलयूप युग (जूआ) ध्वजा और जिनमें जल नहो ऐसी नाव और शिल्पीयोंकी गजआदि वस्तु

दिशान्तरविभागाश्चवस्त्रायोधनयोस्तथा ॥ अध्वनः परिमाणंचक्रोशगव्यूतियोजनैः ॥ २७॥ खातक्रकचराशीचप्रासादायनमापनम् ॥ नवयावाङ्गुलेहस्तेतस्यमानंप्रचक्षते ॥२८॥ आयोधनानिचर्माणितथाचंडायुधानिच ॥ वापीकूपप्रमाणानितथाचगजवाजिनाम् ॥ २९ ॥ इक्षुयंत्रारघण्टाश्चहलयूपयुगध्वजाम् ॥ अतोयानिचनावश्चशिलिपनांवाप्युपस्करम्॥३०॥पादुकेवदशीछत्रंधर्मोद्यानानिचैवहि ॥ मात्राष्ट्यवहस्तेननचदंडांश्चमापयेत् ॥ ३१ ॥ जालन्धरेहस्तसंख्यावेधेचदंडकास्तथा ॥ मध्यदेशेक्रोशसंख्याद्वीपान्तरेतुयोजनम् ॥ ३२ ॥ चतुर्विंशत्यङ्गुलैस्तुहस्तमानंप्रचक्षते ॥ चतुर्हस्तोभवेद्दण्डः क्रोशस्तद्विसहस्रकम् ॥ ३३ ॥ चतुष्क्रोशंयोजनंतुवंशोदशकरैर्मितः ॥ निवर्त्तनंविंशतिकरैः क्षेत्रंतच्चचतुष्करैः ॥३४॥ शतवेश्मनिदेशाश्चगृहादीनान्निवर्त्तनम् ॥ एकाशीतिपदेनैवसर्वस्थानंचमापयेत्॥३५॥

॥ ३० ॥ पादुक वदशी (कोठी) छत्र धर्मके उद्यान इनका प्रमाण आठ ८ जौंके हाथसे करै और दण्डोंको नमापै ॥ ३१ ॥ जालन्धरमें हस्तकी संख्या और वेधमें दण्डकी और मध्यदेशमें क्रोशकी संख्या और द्वीपान्तरमें योजनकी संख्या होतीहै ॥ ३२ ॥ २४ चौवीस अंगुलोंसे हाथका प्रमाण कहतेहैं चार हाथका दण्ड होताहै और दो २ सहस्र हाथका क्रोश होताहै ॥ ३३ ॥ ४ क्रोशका योजन और दश हाथका एक वंश होताहै वीस हाथका निवर्तन और चौवीस हाथका क्षेत्र होताहै ॥ ३४ ॥ सौ घरोंका स्थान और गृह आदिकोंका निवर्तन इन सबका स्थान ८१ इक्यासी पदोंके वास्तुसे मापकर बनावै ॥ ३५ ॥

चल और अत्यन्त स्थिरभेदसे दो प्रकारके प्रासाद कहेहैं और चौसठ६४प्रकारके मण्डप और देवताओंके आश्रय प्राकार॥३६॥ और विशेष कर
जो छत्र (तम्बू) है और जो आठ प्रकारके मण्डपहै इन सबकी कल्पनाभी ६४ पदके वास्तुसेही करैं॥३७॥ नगर ग्राम कोट और राजाओंके स्थावर
गृह इनको स्थपति (प्रधान पुरुष कारीगर) के यहां स्थित जो यति अर्थात् अकस्मात् आयाहुआ संन्यासी उसके हाथके प्रमाणसे मापै॥३८॥
स्निग्धआदि भूमिके भागमें पैदा हुए जो वट बेल खैर शमी न्यग्रोध गूलर देवदारु क्षीरके वृक्ष और अपने देशमें पैदाहुए फलके वृक्ष ॥३९॥

प्रासादाद्विविधाःप्रोक्ताश्चलाः स्थिरतरास्तथा ॥ मण्डपाश्चचतुष्षष्टिः प्राकारांदेवताश्रयाः ॥ ३६ ॥ विशेषेणापियेछात्रास्तथायेचा
ष्टमण्डपाः ॥ चतुष्षष्टिपदेनैवसर्वानेतान्प्रमापयेत् ॥ ३७ ॥ नगरग्रामकोटादिस्थविराणिचभूभृताम् ॥ स्थपतिस्थास्थितयति
प्रविभागेनमापयेत् ॥ ३८ ॥ स्निग्धादिभूभागसमुत्थितानांन्यग्रोधबिल्वद्रुमखादिराणाम् ॥ शमीवटोदुम्बरदेवदारुक्षीरिस्वदेशो
त्थफलद्रुमाणाम् ॥ ३९ ॥ उपोषितः शिल्पिजनस्तुयेषांमध्यात्तुतीक्ष्णेनकुठारकेण ॥ छिन्द्यात्ततोदिक्पतितोत्तरस्यांशु
भेविलग्नेपरिगृह्यशङ्कुम् ॥ ४० ॥ करप्रमाणंपरतश्चतस्रस्तदर्द्धमानेनततोनुगृह्य ॥ नीत्वान्यसेत्तानिगृहेचतावद्यावत्प्रतिष्ठानसमश्च
शङ्कोः॥४१॥ नन्दंतिशुक्लाकथितेशकोणेहुताशनाख्येसुभगेतिचान्या ॥ सुमङ्गलीनैर्ऋतिभागसंस्थाभद्रङ्करीमारुतकोणयाता ॥ ४२ ॥

इन सबको उपवास कियाहै जिसने ऐसा शिल्पि जन मध्य भागमें तीक्ष्ण कुठारसे छेदन करै फिर दिशाके पतिसे उत्तर दिशामें शुभ
लग्नमें शंकु (खुंटी) आदिको ग्रहण करिके ॥ ४० ॥ और उस शंकुके चारों तरफ चार हाथभर वा उसके आधे प्रमाणसे भूमिको ग्रहण
करिके छेदन कियेहुए उन पूर्वोक्त वृक्षोंको लेजाकर तबतक रक्खे जबतक शंकुकी प्रतिष्ठाकी समानता हो॥४१॥ ईशकोण (ईशान) की
नन्दन्ती(शिला) को शुक्ला और अग्निकोणकीका शुभगा और नैर्ऋतकोणकीका सुमंगली और वायुकोणकीका भद्रंकरी नाम कहतेहैं ॥४२॥

वृष अश्व पुरुष नाग इनके समान पैरोंसे क्रमसे अंकित जो नन्द आदि शिला हैं उनका ऐसीयोंका ग्रहण करना कहाहै जो अखण्डित हों और भलीप्रकार दृढ हों और जो शुभ लक्षणकी हों ॥ ४३ ॥ और उन शिलाओंके मध्यमें क्रमसे कूर्म्म (कच्छप) शेष जनार्दन और श्री ध्रुव इन चारोंको भवनके मध्यमें स्थितिके लिये स्थापन करै यह प्रमाण मुनियोंने कहाहै ॥ ४४ ॥ और शिलाओंका प्रमाण वर्णोंके क्रमसे यह कहाहै कि इक्कीस २१ घन (१४) तेरह नन्द (९) इतने अंगुलोंका विस्तार वर्णोंके क्रमसे जानना और इनसे आधा

वृषाश्वपुन्नागपदाङ्कितानांनन्दादिकानांक्रमशश्शिलानाम् ॥ अखण्डितानांसुदृढीकृतानांसुलक्षणानांग्रहणंनिरुक्तम् ॥ ४३ ॥ कूर्मश्च शेषश्चजनार्द्दनःश्रीर्ध्रुवश्चमध्येभवनस्यसंस्थाः ॥ निवेशनीयाः क्रमशः शिलानाम्प्रमाणमेतन्मुनिभिःप्रदिष्टम् ॥ ४४ ॥ शिलाप्रमाणं क्रमशः प्रदिष्टंवर्णानुपूर्व्येणतथाङ्गुलानाम् ॥ अथैकविंशंघनविश्वनन्दाविस्तारकेव्यासमितंतदर्द्धम् ॥ ४५ ॥ तदर्द्धमानं त्वथपिण्डिकास्यादूर्द्धाधिकान्यूनतरानकार्या ॥ प्रमाणहीनासुतनाशकारिणीव्यङ्गाव्ययंभ्रष्टविवर्णदेहा ॥ ४६ ॥ धनार्त्तिदाप्रस्तरगेहमानेकार्याशिलाशिल्पिजनानुकूला ॥ पाषाणगेहेकर्तव्याशिलापाषाणसंभवा ॥ शैलजेशैलजापीठश्चैष्टकेचैष्टकःस्मृतः ॥४७॥ शिलान्यांसादिकोभद्रेमूलपादोविधीयते ॥ पक्केष्टनिर्मितेचैवइष्टकानाञ्चकारयेत् ॥ ४८ ॥

व्यास होताहै॥४५॥ और उससे आधा प्रमाण पिण्डिकाका होताहै वह ऊपरको अधिक बनानी अत्यन्त न्यून न बनानी और प्रमाणसे हीन होय तो पुत्रके नाशको करतीहै और व्यंग (टूटी) भ्रष्ट और विवर्ण देह (मैली) व्यय अर्थात् अधिक खर्च वा नाशको करतीहै ॥ ४६ ॥ और धनकीभी नष्टताको करतीहै और विस्तारके घरका जो प्रमाण हो उसके समान शिल्पि जनोंके अनुकूल शिला बनवानी पत्थरके घरमें शिला पत्थरकी ही बनवानी शिलाके घरमें शिलाओंसे बनवानी और ईटके घरमें ईटकाही पीठ कहाहै ॥४७॥ भद्रनामके घरमें मूलपाद

शिलास्थापन आदिका कहाहै और पक्की ईटोंके घरमें ईटोंकाही मूलपाद बनवावै ॥ ४८ ॥ ईटोंके बनायेहुए घरमें वास्तुके विषै शि
लाके प्रमाणको देखना और अन्य घरोंमें शिलाके प्रमाणकी चिन्ता नकरनी ॥ ४९ ॥ और आधारकी जो शिलाहै वह ऐसी बनवानी
जो दृढ मनोहर परिमाणसे युक्त उत्तम जिसके लक्षण हों जो परिमाणके मानसे न अधिक और न अत्यन्त न्यून हो और जिसका रंग
काला हो ॥ ४५० ॥ द्वारके अधिप आदि स्वामी गज अश्व इनका बलि और मंत्रोंसे भली प्रकार पूजन करै फिर स्नानके लिये सुन्दर

इष्टकानिर्मितेगेहेप्रमाणमिहलक्षयेत् ॥ अपरेषांगृहाणांतुशिलामानंनचिन्तयेत् ॥४९॥आधारभूतातुशिलाप्रकल्प्यादृढामनोज्ञापरिमाण
युक्ता॥सल्लक्षणाचापरिमाणमानांनचाधिकान्यूनतरानकृष्णा ॥५०॥ द्वाराधिपादीन्पतयोगजाश्वाः सम्पूजनीयावलिभिः समंत्रैः॥स्नानार्थ
मानीयसुतीर्थतोयन्ततोपहारैः प्रतिपूज्यकुम्भम् ॥५१॥ध्रुवेशिलायास्तुततः खनित्वाकुंभंप्रतिष्ठाप्यशराङ्गुलीयम्॥विप्रादिवर्णानुगतःप्र
शस्तस्तदर्द्धमानतुतदर्द्धमानम् ॥ ५२ ॥ जलाक्षतव्रीहिसपञ्चगव्यमध्वाज्यजातंपरिपूर्य्यसम्यक् ॥ शिलाविन्यासकालेतुसंभारां
श्चोपकल्पयेत् ॥ ५३ ॥ समुद्रेयानिरत्नानिसुवर्णरजतंतथा ॥ सर्ववीजानिगन्धाश्चशरादर्भास्तथैवच ॥ ५४ ॥ शुक्लाः सुम
नसः सर्पिः श्वेतश्चमधुरोचनाः ॥ आमिषञ्चतथामद्यंफलानिविविधानिच ॥ ४५५ ॥

तीर्थके जलको लाकर पूजाकी सामग्रीयोंसे कुंभका पूजन करके ॥ ५१ ॥ फिर शिलाके ध्रुवभागमें पांच अंगुल खोदकर उस कुंभका
स्थापन करै और वह कुम्भ ब्राह्मण आदि वर्णोंके अनुसार आधे २ न्यून प्रमाणसे प्रशस्त होताहै ॥ ५२ ॥ और उस कुंभको जल अक्षत
व्रीहि पंचगव्य मधु घृत आदिसे भलीप्रकार पूर्ण करिके और शिलाके स्थापन समयमें सामग्रीयोंको इकट्ठी करै ॥ ५३ ॥ समुद्रमें
जितने रत्नहों उनको और सुवर्ण चांदी सर्व बीज गन्ध शर कुशा॥५४॥सफेद पुष्प घी सफेद मधु गोरोचन आमिष (मांस)और मदिरा

नानाप्रकारके फल ॥ ५५ ॥ नैवेद्यके लिये पकान्न वस्त्र और ऐसे भूषण जो सफेद पीले रक्त और कृष्णवर्णके क्रमसे हों ॥ ५६ ॥ गन्धआदि वस्त्र और पुष्प इनको वास्तुविधानके ज्ञाताओंसे बडी सावधानीसे इकट्ठे करवावै ॥ ५७ ॥ ॥ इति वास्तुशास्त्रे पं०मि० भाषा० गृहादि निर्माण वर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ जो आपने भलीप्रकार प्रासादोंका क्रम कहा वह हमने सुना अब वास्तुदेहके लक्षणको सुना चाहते हैं ॥५८॥ पाहिले वह भगवान् वास्तुपुरुष आपने कहा और पूर्वोत्तर मुख वास्तुपुरुषकी रचना आपने कही ॥५९ ॥ और इन्द्र आदि

नैवेद्यार्थञ्चपकान्नंवस्त्राण्याभरणानिच ॥ श्वेतंपीतंतथारक्तंकृष्णंवर्णक्रमेणच ॥ ५६ ॥ गन्धादींश्चैववस्त्रञ्चपुष्पाणिचतथैवच ॥ वास्तुविद्याविधानज्ञैः कारयेत्सुसमाहितः ॥ ५७ ॥ इतिवास्तुशास्त्रेगृहादिनिर्माणेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ प्रोक्तंयद्भवतासम्यक्प्रासादानांयथाक्रमम् ॥ अधुनाश्रोतुमिच्छामिवास्तुदेहस्यलक्षणम् ॥ ५८ ॥ पुरासभगवान्वास्तुपुरुषः परिकीर्तितः ॥ पूर्वोत्तरमुखोवास्तुपुरुषः परिकल्पितः ॥ ५९ ॥ देवैःसेन्द्रादिभिस्तस्मिन्कालेभूमौनिपातितः ॥ अवाङ्मुखोनिपतितईशान्यांदिशिसंस्थितः ॥ ६० ॥ शिरोभागेस्थितोवह्निर्मुखेआपस्तनेयमः ॥ उत्तरस्यापवत्सश्चसव्यमार्गसमाश्रितः ॥ ६१ ॥ पर्जन्याद्यास्तथानासादृक्छ्रूवोरःस्थलांसगाः ॥ सत्ताद्याःपंचचभुजेविन्यस्यपुरुषोत्तमे ॥ हस्तेसवितासावित्रोवितथोथगृहक्षतः ॥ ६२ ॥ पार्श्वेजठरेविवस्वाँश्चआस्थितः परितस्सदा ॥ ऊरूजानूजंघास्फिचोयमाद्यैः परिवेष्टिताः ॥ एतेदक्षिणपार्श्वस्थावामपार्श्वेतथैवच ॥ ४६३ ॥

देवताओंने उसकालमें उसे भूमिमें पतनकिया और वह नीचेको मुखकिये गिरा और ईशानदिशामें स्थितहुआ ॥ ६० ॥ उसके शिरभागमें अग्नि स्थितहै मुखमें जल स्तनमें यम उत्तरभागमें स्थित आपवत्स वामस्तनमें स्थित रहताहै ॥ ६१ ॥ और पर्जन्य आदि देवता नासिका नेत्र कर्ण उरःस्थल और स्कन्धोंमें स्थित रहतेहैं और सत्त आदि पांच पुरुषोत्तमकी भुजामें स्थितकरै और हस्तमें सूर्य सावित्री इनका हाथमें वितथ और गृहक्षत ॥६२॥ इनका पार्श्वमें और जठर (पेट) चारों तरफ विवस्वान् स्थित रहताहै और ऊरू (जंघा) जानु स्फिक् ये यमदिशा आदिसे स्थित रहतेहैं ये दक्षिणपार्श्व और वामपार्श्व दोनोंमें स्थित रहतेहैं ॥ ६३ ॥

66

शेष देवता और दण्ड जयन्त ये लिंग-इन्द्रियमें स्थित रहतेहैं और चरणोंमें पितरों सहित वास्तुपुरुष रहताहै और ४५
पैतालीस कोष्ठ चारों तरफ ब्रह्माके होतेहैं ६४ चौंसठ पदके वास्तुमें ब्रह्मा आदिक देवता रहतेहैं और उनके, कोणमें तिर
छे कोष्ठोंमें द्विज रहतेहैं ॥ ६५ ॥ ब्रह्माने चौसठ पदका वास्तु प्रासादमें कहाहै ब्रह्मा वास्तुमें चतुष्पद कहाहै और कोणके विषै आ
धे २ पद कहेहैं और सोलह कोणोंमें सार्द्ध पद (१॥) दोनों भागोंमें स्थित होतेहैं और वीस २० दोदो पदके देवता चौसठपदके वास्तु

शेषादण्डजयन्तौचमेढ्रेब्रह्माद्द्दिस्थितः ॥ पादेसमाश्रितइतिपितृभिःपरिवारितः ॥ चत्वारिंशत्पञ्चयुक्ताः परितोब्रह्मणस्तथा ॥६४ ॥
चतुःषष्टिपदेवास्तौदेवाब्रह्मादयस्तथा ॥ कोणेतेषांप्रकर्तव्यास्तिर्यक्कोष्ठगताद्विजाः ॥६५॥ चतुःषष्टिपदोवास्तुः प्रासादेब्रह्मणास्मृतः ॥
ब्रह्माचतुष्पदोह्यत्रकोणाद्यर्द्धपदाःस्मृताः ॥ ६६ ॥ षोडशकोणगाः सार्द्धपदाश्चाथोभयस्थिताः॥विंशतिर्द्विपदाश्चैवचतुःषष्टिपदेस्मृताः
॥ ६७॥ जीर्णोद्धारेतथोद्यानेतथागृहनिवेशने ॥ नवप्रासादभवनेप्रासादपरिवर्तने ॥ ६८ ॥ द्वाराभिवर्तनेतद्वत्प्रासादेषुगृहेषुच ॥ वास्तू
पशमनङ्कुर्य्यात्पूर्वमेवविचक्षणः ॥ ६९ ॥ वास्तुमण्डलकोणेषुईशानादिक्रमेणच ॥ शंकूनांरोपणंशस्तंप्रादक्षिण्येनमार्गतः ॥ ७० ॥
विशंतुभूतलेनागालोकपालाश्चसर्वशः ॥ अस्मिन्गृहेवतिष्ठन्तुआयुर्बलकराःसदा ॥ ७१ ॥

में कहेहैं ॥ ६७ ॥ जीर्णोद्धारमें और उद्यानमें और गृहके प्रवेशमें और नवीन प्रासाद और भवनमें और प्रासादके परिवर्तन (ब
नाना) में । ६८ ॥ द्वारके बनवाने और प्रासाद गृहोंमें बुद्धिमान् मनुष्य पहिलैही वास्तुशान्तिको करै ॥ ६९ ॥ और वास्तुमण्ड
लके कोणोंमें ईशान दिशा आदिके प्रदक्षिणक्रमसे शंकुओंका रोपण (रखना) श्रेष्ठ होताहै ॥ ७० ॥ नाग भूतलके विषै प्रवेश करौ
और समस्त लोकपाल जो आयु और बलके करनेहारे हैं वे सदैव इस गृहके विषै टिको इस मंत्रको पढकर वास्तुके कोणमें शंकुओंको

रखै ॥७१॥ प्रासाद आराम वापी कूप उद्यानमें नामोच्चारणपूर्वक कोणोंमें ४ शंकुओंका स्थापन करै॥७२॥अग्नि सर्प और जो अन्यदिशामें देवता स्थित हैं उनके लिये पवित्र और उत्तम ओदनकी बलिको देताहूं ॥ ७३ ॥ सुवर्णकी रेखाओंसे वास्तुके विषै ८१ इक्यासी पद करै फिर सूत्रको चारों तरफ रखकर चूनसे आलेखन करै ॥ ७४ ॥ दशरेखा पूर्वको लम्बी और दशरेखा उत्तरको लम्बी करै संपूर्ण वास्तुओंके विभागोंमें ये नौ ९ नवक जानने ॥ ७५ ॥ शान्ता यशोवती कान्ता विशाला प्राणवाहिनी सती सुमनाः नन्दा

प्रासादारामवापीषुकूपोद्यानेषुचैवहि ॥ तन्नामपूर्विकारोप्याकोणेशङ्कुचतुष्टयम् ॥ ७२ ॥ अग्निभ्योप्यथसर्पेभ्योयेचान्येतत्समाश्रिताः॥ तेभ्योबलिम्प्रयच्छामिपुण्यमोदनमुत्तमम् ॥ ७३ ॥ एकाशीतिपदङ्कुर्य्याद्रेखाभिःकनकेनच॥पश्चात्पिष्टेनचालिख्यसूत्रेणालोड्यसर्वतः ॥ ७४ ॥ दशपूर्वायतारेखादशचैवोत्तरायताः ॥ सर्वावास्तुविभागेषुविज्ञेयानवकानव ॥ ७५ ॥ शान्तायशोवतीकान्ताविशालाप्राणवाहिनी ॥ सतीचसुमनानन्दासुभद्रासुस्थितातथा ॥७६॥ पूर्वापरागताह्येताउदग्याम्याश्रितास्तथा ॥ हिरण्यासुव्रतालक्ष्मीर्विभूतिर्विमलाप्रिया ॥ ७७ ॥ जयाकालाविशोकाचतथेन्द्रादशमीस्मृता ॥ एकाशीतिपदेह्येताःशिराश्चपरिकीर्तिताः ॥ ७८ ॥ श्रियायशोवतीकान्तासुप्रियापिपराशिवा ॥ सुशोभासधनाज्ञेयातथेभानवमीस्मृता ॥ ७९ ॥ पूर्वापरातथाह्येताश्चतुष्षाष्टिपदेस्थिताः ॥ धन्याधराविशालाचस्थिरारूपागदानिशा ॥ ८० ॥

सुभद्रा और सुस्थिता ॥ ७६ ॥ ये दश १० रेखा पूर्वपश्चिमके गत (गई) होतीहैं और उत्तर और दक्षिणके आश्रित ये होतीहैं कि- हिरण्या सुव्रता लक्ष्मी विभूति विमला प्रिया ॥७७॥ जया काला विशोका और दशमी इन्द्रा कहीहै. इक्यासी पदके वास्तुमें ये शिरा कहीहैं ॥ ७८ ॥ श्रिया यशोवती कान्ता सुप्रिया पुरा शिवा सुशोभा सधना और नौमी इभा ॥७९॥ ये नौ शिरा पूर्वसे पश्चिमपर्यन्त चौ

चौसठपदके वास्तुमें होतीहैं धन्या धरा विशाला स्थिररूपा गदा और निशा ॥८०॥ विभवा प्रभवा और सौम्या ये उत्तरादिशामें नौ ९ शिरा होतीहैं पदके आठमें अंशको कर्मसंज्ञकभाग कहतेहैं ॥ ८१ ॥ पदके हाथकी संख्यासे जो निवेश उसै अंगुल कहतेहैं और विस्तार किये वंशका जो ऊर्द्धभाग उतना शिराका प्रमाण कहतेहैं ॥८२॥ और वासोंका जो सम्पात उसकाभी मध्यम और समभाग जो हो वहभी शिराका मान जानना और उसके मध्यमें जो पदहो उन सबको भयके दाता जानै ॥८३॥बुद्धिमान् मनुष्य उनपदोंको शुद्ध भाण्ड

विभवाप्रभवाचान्यासौम्यासौम्याश्रिताः शिराः ॥ पदस्याष्टांशकोभागस्तत्प्रोक्तंकर्मसंज्ञकम् ॥ ८१ ॥ पदहस्तसंख्ययासम्मितो निवेशोङ्गुलानि ॥ विस्तीर्णवंशव्यासोर्द्धंशिरामानंप्रचक्षते ॥ ८२ ॥ संपाताअपिवंशानांमध्यमानिसमानिच ॥ पदानांपातितान्विद्यात्सर्वाणि भयदान्यपि ॥ ८३ ॥ नतानिपीडयेत्प्राज्ञःशुचिभाण्डैश्चकीलकैः ॥ स्तंभैश्चशल्यदोषैश्चगृहस्वामिषुपीडनम् ॥ ८४ ॥ तस्मिन्नवयवेतस्यवाधाचैवप्रजायते ॥ कण्डूयतेयदङ्गंवागृहस्वामीतथैवच ॥ ८५ ॥ होमकालेचयज्ञादौतथाभूम्निपरीक्षणे ॥ अग्नेर्वाविकृतिर्यत्रतत्रशल्यंविनिर्दिशेत् ॥ ८६ ॥ धनहानिर्दारुमयेपशुपीडास्थिसंभवे ॥ रोगस्यापिभयम्प्रोक्तन्नागदन्तोपिदूषकः ॥ ८७ ॥ वंशानीमानिवक्ष्यामिबहूनपिपृथक्पृथक् ॥ वायुंयावत्तथारोगात्पितृभ्यः शिष्यतस्तथा ॥ ८८ ॥

और कीलोंसै पीडित न करै और न स्तम्भ और शल्यके दोषोंसे पीडित करै करै; तौ गृहके स्वामीको पीडा॥८४॥उसी अवयवमें होतीहै जिस अवयवमें वास्तुपुरुषकेहो- और जिस वास्तुके अंगमें कण्डूति (खुजली) करै उसी अंगमें घरके स्वामीके कण्डूति होतीहै ॥८५॥ होमके समयमें और यज्ञ और भूमिकी परीक्षामें जहां अग्निका विकारहो जाय वहां शल्यको कहै अर्थात विघ्नकी शंका होतीहै ॥ ८६ ॥ काष्ठके वासमें धनकी हानि अस्थिके वांसमें पशुओंमें पीडा और रोगका भय कहाहै, और हाथीदांतभी दूषित है ॥ ८७ ॥ इससे इन

बहुत प्रकारके वांसोंको पृथक् २ कहताहूं कि रोगसे वायुपर्यंत और शिखीसे पितरोंतक ॥ ८८ ॥ और मुख्यसे भृंगतक और शोकसे वितथपर्यंत और सुग्रीवसे अदितिपर्यंत और भृंगसे पर्जन्यपर्यंत ॥ ८९ ॥ ये वांस शास्त्रकारोंने कहे हैं और कहीं दुर्जयभी कहाहै. इनका जो पदके मध्यमें चारों तरफका संपात है ॥ ९० ॥ उसको प्रवेश कहतेहैं वह त्रिशूल वा कोणके आकारका जो होताहै वह स्तंभोंको रखने और तुलाके रखनेमें सदैव वर्जितहैं ॥ ९१ ॥ और संपूर्ण कर्मोंमें वास्तु पुरुष दक्षिण और अग्निकोणमें आयत (लंबा) कहाहै. इकासी ८१ पदके इस वास्तुमें देवताओंके स्थापनको सुनो ॥ ९२ ॥

मुख्याद्भृङ्गस्तथाशोकाद्वितथंयावदेवतु ॥ सुग्रीवाददितिंयावद्भृङ्गात्पर्जन्यमेवच ॥ ८९ ॥ एतेवंशाःसमाख्याताः क्वचिद्दुर्जयएवतु. ॥ एतेपांयस्तुसंयातः पदमध्येसमन्ततः ॥ ९० ॥ एतत्प्रवेशमाख्यातंत्रिशूलङ्कोणकञ्चयत् ॥ स्तम्भन्यासेषुवर्ज्यानितुलावन्धेषुसर्वदा ॥ ९१ ॥ सर्वत्रवास्तुनिर्दिष्टःपितृवैश्वानरायतः ॥ एकाशीतिपदेह्यस्मिन्देवतास्थापनेशृणु ॥ ९२ ॥ रेखाणाञ्चफलन्तत्रकथयामि समासतः ॥ वर्णानुपूर्व्येणतथाअङ्गस्पर्शनकंपरम् ॥ ९३ ॥ विप्रः स्पृष्ट्वातथाशीर्षञ्चक्षुः क्षत्रियकस्तथा ॥ विशश्चोरूचशूद्रश्चपादौ स्पृष्ट्वासमारभेत् ॥ ९४ ॥ अङ्गुष्ठकेनवाकुर्यान्मध्याङ्गुल्यास्तथैवच ॥ प्रदेशिन्याथापितथास्वर्णरौप्यादिधातुना ॥ ९५ ॥ मणि नाकुसुमैर्वापितथादध्यक्षतैःफलैः ॥ शस्त्रेणशत्रुतोमृत्युर्वन्धोलोहेनभस्मना ॥ ९६ ॥

और उसमें रेखाओंके फलकोभी संक्षेपसे कहताहूं और वर्णोंके क्रमसे श्रेष्ठ अंगके स्पर्शको कहताहूं ॥ ९३ ॥ ब्राह्मण शिरका स्पर्श करके क्षत्रिय नेत्रका स्पर्श करके और वैश्य जंघाओंका स्पर्श करके और शूद्र चरणोंका स्पर्श करके वास्तुके पूजन का प्रारंभ करै ॥ ९४ ॥ और अंगुठेसे वा मध्यकी अंगुलिसे वा प्रदेशिनीसे अथवा सुवर्ण चांदि आदि धातुसे पूजनको करै ॥ ९५ ॥ अथवा मणिसे वा पुष्पोंसे वा दही अक्षत फलोंसे पूजन करै और शस्त्रसे पूजन करै तो शत्रुसे मृत्यु होतीहै और लो

हेसे बंधन और भस्मसे ॥९६॥ अग्निका भय और तृण और काष्ठ आदिके लिखनेसे राजासे भय होताहै और वक्र (टेढा) और खंडित होनेपर शत्रुसे भय होताहै ॥ ९७ ॥ कुरूप रेखा और चर्म और दांतोंसे बनाई रेखा और कोला और अस्थिसे बनाई रेखा कल्याणके लिये नहीं होती और स्वामीके मरणको करती है ॥ ९८ ॥ अपसव्य (वाम) क्रमसे करै तो वैर और दक्षिण क्रमसे करै तो संपदा होतीहै और वास्तुकर्मके प्रारंभमें छिक्का और ष्ठीवन (थूक) इनको वर्जदे ॥ ९९ ॥ और

अग्नेर्भयन्तृणेनापिकाष्ठादिलिखितेनच॥नृपाद्भयन्तथावक्रेखण्डेशत्रुभयम्भवेत् ॥ ९७ ॥ विरूपाचर्मदन्तेनचाङ्गारेणास्थिनापिवा ॥ नशिवायभवेद्रेखास्वामिनोमरणन्तथा ॥ ९८ ॥ अपसव्यक्रमेवैरंसव्येसंपदमादिशेत् ॥ तस्मिन्कर्मसमारंभेक्षुतन्निष्ठीवितन्तथा ॥ ९९ ॥ वाचस्तुपरुषास्तत्रयेचान्येशकुनाधमाः ॥ तान्विवर्ज्यप्रकुर्वीतवास्तुपूजनकर्म्माणि ॥ ६०० ॥ अकचटतपयशवर्गा इत्यष्टदिक्षुच ॥ प्राचीप्रभृतिषुवर्णास्तत्परङ्कारयेत्फलम् ॥ १ ॥ एतेवर्णाःप्रश्नकालेमध्येपञ्चैकमक्षरम् ॥ तेनशल्यंविजानीयाद्दिशितस्यांचवेश्मनः ॥ २ ॥ एतेभ्योवापरम्बाह्येप्रश्नंयद्द्व्यक्षरंभवेत् ॥ तदाशल्यंनजानीयाद्गृहमध्येविनिश्चयः ॥३॥ एकाशीतिपदङ्कुर्य्याद्वास्तुवित्सर्ववास्तुषु ॥ आदौसम्पूज्यगणपन्दिक्पालान्पूजयेत्ततः ॥ ४ ॥

जो कठोर वाणी और जो बुरे शकुन हैं उनको वर्जकर वास्तुकर्मका प्रारंभ करै ॥ ६०० ॥ अ क च ट त प य श ये वर्ग आठोंदिशाओंमें पूर्वदिशासे लेकर स्थितहैं उसके अनन्तर फलको कहै ॥ १ ॥ वर्ण प्रश्नके कालमें मध्यमें एक अक्षर जो होताहै उससे उसी दिशाके विषै घरमें शल्य (विघ्न) को जानै ॥ २ ॥ और इनसे धरै बाहिरके देशमें यदि दो अक्षरका प्रश्न होय तो तब गृहके मध्यमें शल्यको नजाने यह शास्त्रका निश्चयहै ॥ ३ ॥ वास्तुका ज्ञाता पुरुष संपूर्ण वास्तुओंमें ८१ इक्यासी पदके

71

72

वास्तुको करै. प्रथम गणेशजीका पूजन करकै फिर दिक्पालोंका पूजन करै ॥ ४ ॥ भूमिपर कलशका स्थापन करके फिर मातृकाओंका पूजन करै फिर नान्दीमुख श्राद्धको करै फिर उसके अनंतर पवित्र ब्राह्मण और देवता आदिका पूजन करै ॥ ५ ॥ और अग्निकी स्थापनाके लिये तीन मेखलाओंसे युक्त विशेषकर योनिके आकारका कुण्ड बनावै ॥ ६ ॥ अथवा बुद्धिमान् मनुष्य संपूर्ण कर्मोंमें स्थण्डिलकोही करै और पदमें स्थित सम्पूर्ण देवताओंका और ३५ पैंतीस देवताओंका पूजन करै ॥ ॥ ७ ॥ शिखी देवता एक पदका कहाहै और पर्जन्यभी एकही पदका होताहै. जयन्त दो २ पदका और सूर्यभी दो पदका

धरित्र्यांकलशंस्थाप्यमातृकाःपूजयेत्ततः ॥ नान्दीश्राद्धन्ततःकुर्यात्पुण्यानभ्यर्च्चयेत्ततः॥५॥अग्निसंस्थापनार्थन्तुमेखलात्रयसंयुतम् ॥
कुण्डंकुर्याद्विधानेनयोन्याकारंविशेषतः ॥ ६ ॥ स्थण्डिलंवाप्रकुर्वीतमतिमान्सर्वकर्मसु॥ पदस्थान्पूजयेत्सर्वान्पञ्चत्रिंशत्तथैवच ॥७॥
शिखाचैकपदंप्रोक्तःपर्जन्यश्चतथैवच ॥ जयन्तोद्विपदःसूर्य्यःसत्यंभृशौद्विकोष्टकौ ॥८॥ पदैकमन्तरिक्षस्तुवायुश्चैकपदःस्मृतः ॥ ९ ॥
पूषाचैकपदोह्यस्मिन्द्विपदोवितथस्तथा ॥ द्विपदौदक्षिणाशास्थौगृहक्षतयमावुभौ ॥ १० ॥ गन्धर्वमृगराजौतुद्विपदौपरिकीर्तितौ ॥
मृगःपितृगणश्चैवदौवारिकश्चैकपादकः ॥११॥ सुग्रीवपुष्पदन्तौचद्विपदावरुणस्तथा॥ असुरश्चतथाशोकोद्विपदाः परिकीर्तिताः॥१२॥
पापोरोगस्तथासर्पस्त्रयश्चैकपदामताः ॥ मुखभल्लाटसोमाख्यास्त्रिपदास्तुत्रयःस्मृताः ॥ १३ ॥

सत्य भ्रंश ये दोनों दोकोष्टके होतेहैं ॥ ८ ॥ और अन्तरिक्ष ३ एक पदका और वायुभी एक पदका कहाहै ॥९॥और पूषा एक पदका और वितथ दो पदका होताहै और दक्षिणदिशामें स्थित गृहक्षत और यम ये दोनों दो पदके होतेहैं ॥ १० ॥ गन्धर्व और मृगराज येभी दो पदके कहेहैं. मृग और पितृगण और दौवारिक ये एकपदके होते हैं ॥ ११ ॥ सुग्रीव पुष्पदन्त और वरुण ये दो पदके, असुर अशोक येभी दो पदके कहेहैं ॥ १२ ॥ पाप, रोग और सर्प ये तीनों एक पदके कहेहैं मुख भल्लाट और सोम

ये तीनोंभी एक एक पदके कहेहैं ॥ १३ ॥ सर्प और अदिति ये दोनों दोदो पदके कहेहैं और दिति एक पदकी कहीहै और बत्तीस ३२ देवता कोष्ठोंसे बाहिर स्थितहैं ॥ १४ ॥ ईशानआदि चारौं कोणोंमें जो स्थित हैं उनका पूजन बुद्धिमान् मनुष्य करै. जल और सावित्र जय और रुद्र ॥ १५ ॥ और इनके अन्तमें स्थित जो हैं इन सबको एक एक पदमें ईशान आदि दिशाओंमें स्थित करै, अर्यमा तीनपदका और सविता एकपदका होताहै ॥ १६ ॥ विवस्वान् तीनपदका दक्षिण दिशामें होताहै और इन्द्र एकपदका

सर्पश्चद्विपदः प्रोक्तोह्यदितिश्चतथैवच ॥ दितिश्चैकपदाप्रोक्ताद्वात्रिंशद्वाह्यतःस्थिताः ॥१४॥ ईशानादिचतुष्कोणेसंस्थितान्पूजयेद्बुधः॥ आपश्चैवाथसावित्रोजयोरुद्रस्तथैवच ॥ १५ ॥ तदन्तगाश्चैकपदानीशानादिषुविन्यसेत् ॥ अर्यमात्रिपदः पूर्वेसविताचतथैकपात् ॥ १६ ॥ विवस्वांस्त्रिपदोयाम्येइन्द्रश्चैकपदस्तथा ॥ नैर्ऋतेपश्चिमेमित्रस्त्रिपदःपरिकीर्तितः ॥ १७ ॥ वायव्येराजयक्ष्माचएकपादः प्रकीर्तितः ॥ उत्तरेत्रिपदापृथ्वीधरापश्चैकपात्तथा ॥ १८ ॥ मध्येनवपदोब्रह्मापीतश्वेतश्चतुर्भुजः ॥ आब्रह्मन्ब्राह्मणइतिमन्त्रोयं समुदाहृतः ॥ १९ ॥ अर्यमाकृष्णवर्णश्चअर्यम्णाचबृहस्पतिः ॥ सवितारक्तवर्णस्तुउपयामगृहीतकम् ॥ २० ॥ विवस्वाञ्छुक्लवर्णश्चविवस्वानादित्यमन्त्रतः ॥ इन्द्रोरक्तेन्द्रसुत्रामामन्त्रोयंसमुदाहृतः ॥ २१ ॥

नैर्ऋतमें और मित्र एक पदका पश्चिममें कहाहै॥१७॥ वायव्यमें एक पदका राजयक्ष्मा कहाहै उत्तरमें त्रिपदा पृथ्वी और धराय एक पादके कहेहैं ॥ १८ ॥ मध्यमें नौ ९ पदका ब्रह्मा पीत श्वेत और चतुर्भुजी कहाहै उसकी पूजाका मन्त्र आब्रह्मन्ब्राह्मणः० यह कहाहै ॥१९॥ अर्यमा कृष्णवर्णका और अर्यम्णा बृहस्पतिः०यह उसका मंत्र कहाहै. सविता(सूर्य) रक्त वर्ण और उपयाम गृहीतः०यह उसका मंत्र कहाहै॥२०॥ विवस्वान् शुक्ल वर्ण और विवस्वानादित्य० यह उसका मन्त्र कहाहै. इन्द्र रक्त और इंद्र सुत्राम० यह उसका मन्त्र कहाहै ॥ २१ ॥

मित्र श्वेत और तन्मित्रंवरुणस्याभिचक्षे० यह उसका मंत्र कहाहै और राजयक्ष्मा रक्तवर्ण और अभिगोत्राणि० यह उसका मंत्र कहाहै ॥ २२ ॥ पृथ्वीधर रक्तवर्ण और पृथ्वीछन्द० यह उसका मंत्र कहाहै, आपवत्स शुक्ल वर्ण और भवाम० यह उसका मन्त्र कहाहै ॥ २३ ॥ और उसके बाह्य देशमें आप शुक्ल वर्ण और आपोअस्मान्मातरः० यह उसका मंत्र कहाहै और सवितासे अग्निकोणके दिग्भागमें शुक्लवर्णका एकपाद कहाहै ॥ २४ ॥ और उपयाम गृहीतोसि० और सवितासि० ये उसके मंत्र कहे हैं और जयन्त श्वेत मर्माणि०

मित्रः श्वेतश्चतन्मित्रंवरुणस्याभिचक्षेत्विति ॥ राजयक्ष्मारक्तवर्णोह्यभिगोत्राणिमन्त्रतः ॥ २२ ॥ पृथ्वीधरोरक्तवर्णःपृथिवी
छन्दमन्त्रतः ॥ आपवत्सः शुक्लवर्णोभवामेतिचमन्त्रतः ॥ २३ ॥ आपः शुक्लवर्णश्चतद्बाह्येआपोअस्मान्मातरेतिच ॥
सावित्राग्नेयदिग्भागेशुक्लवर्णैकपात्तथा ॥ २४ ॥ उपयामगृहीतोसिसवितासीतिमन्त्रतः ॥ जयन्तःश्वेतोनैर्ऋत्येमर्माणिते
तिमन्त्रतः ॥ २५ ॥ रुद्रोरक्तश्चवायव्येसुत्रामाइतिमन्त्रतः ॥ ईशानेरक्तवर्णश्चतमीशानेतिवैशिखी ॥ २६ ॥ पर्जन्यः
पीतवर्णश्चमहाइन्द्रेतिवैतथा ॥ जयन्तः पीतवर्णश्चधन्वनागाइतिस्मृतः ॥ २७ ॥ कुलिशायुधः पीतवर्णोमहाइन्द्रेतिवैतथा ॥ सूर्य्यो
रक्तःसूर्यरश्मिर्हरिकेतिचमन्त्रतः ॥ २८ ॥ सत्यश्चशुक्लोव्रतेनदीक्षामाप्नोतिमन्त्रतः ॥ भृशःकृष्णोमंत्रमस्यभद्रङ्करणेभिरेवच ॥ २९ ॥
अन्तरिक्षः कृष्णवर्णोवयंसोमश्चइत्यपि ॥ वायुर्धूम्रस्तथावर्णआवायोरितिमन्त्रतः ॥ ३० ॥

इस मंत्रसे कहाहै ॥ २५ ॥ और रुद्र रक्त वायव्यदिशामें सुत्रामा ० इसऋचासे कहाहै. ईशानमें रक्तवर्णका शिखी तमीशानम्० इस मंत्रसे कहाहै ॥ २६ ॥ पीतवर्णका पर्जन्य महा इंद्र०मंत्रसे कहाहै जयंत पीतवर्णका धन्वनागा०इसमंत्रसे कहाहै ॥ २७॥ कुलिशायुध पीतवर्णका महाइन्द्र०इस मंत्रसे कहाहै. सूर्य रक्तवर्णका सूर्यरश्मिहारिक० इस मंत्रसे कहाहै ॥ २८ ॥ सत्य शुक्लवर्णका व्रतेनदीक्षामाप्नोति०इस मंत्रसे कहाहै भृश कृष्णवर्णका और इसका मंत्र भद्रं करणेभिः०यह कहाहै ॥२९॥ अन्तरिक्ष कृष्ण वर्णका और वयंसोम० यह उसका मंत्र

74

कहाहै. वायु धूम्रवर्णका और आवायो० यह उसका मंत्र कहाहै॥३०॥पूषा रक्तवर्णका और पूषन्तव० यह उसका मन्त्र कहाहै. वितथ शुक्लवर्ण का सविता प्रथम ० यह उसका मंत्र कहाहै ॥ ३१ ॥ गृहक्षत पीतवर्ण सवितात्वा ० यह उसका मंत्र कहाहै और यम दाक्षिणमें कृष्णशरीर यमायत्वामखायच ० इस मंत्रसे कहाहै ॥ ३२ ॥ गन्धर्व रक्तवर्णका और घृतद्वोवः० इस मंत्रसे कहाहै. भृंगराज कृष्णबर्णका मृत्यु सुपर्ण० इस मंत्रसे कहाहै ॥ ३३ ॥ मृग पीतवर्णका ताद्विष्णोः० इस मंत्रसे नैर्ऋत दिशामें स्थित है. पितरोंके गण रक्तवर्णके

पूषाचरक्तवर्णश्चपूषन्तवइतीरितः॥ शुक्लवर्णश्चवितथंसविताप्रथमेतिच. ॥ ३१ ॥ गृहक्षतः पीतवर्णः सवितात्वेतिमन्त्रतः ॥ यमः कृष्णवपुर्याम्येयमायत्वामखायच ॥ ३२ ॥ गन्धर्वोरक्तवर्णश्चघृतद्वोवेतिमन्त्रतः ।. भृङ्गराजःकृष्णवर्णोमृत्युःसुपर्णेतिवातथा ॥ ३३ ॥ मृगःपीतश्चतद्विष्णोर्मन्त्रेणनिर्ऋतिःस्थितः ॥ पितृगणारक्तवर्णाःपितृभ्यश्चेतिपूजयेत् ॥ ३४ ॥ दौवारिकोरक्तवर्णो द्रविणोदाःपिपीषति ॥ शुक्लवर्णश्चसुग्रीवःसुषुम्नःसूर्यरश्मिना ॥ ३५ ॥ पुष्पदन्तोरक्तवर्णोनक्षत्रेभ्येतिमन्त्रतः ॥ वरुणः शुक्लइतरोमित्रास्यवरुणास्यतः ॥ ३६ ॥ आसुरःपीतरक्तश्चयेरूपाणीतिमन्त्रतः ॥ शोकःकृष्णवपुर्मन्त्रमासवेस्वाहेत्यावाहयेत् ॥ ९३७ ॥ पापयक्ष्मापीतवर्णः सूर्यरश्मीतिमन्त्रतः ॥ रक्तवर्णस्तथारोगःशिरोमेइतिकोणके ॥ ३८ ॥

पितृभ्यश्च० इस मंत्रसे पूजित करने ॥ ३४ ॥ दौवारिक रक्तवर्ण द्रविणोदाः पिपीषति० यह उसका मंत्र कहाहै. सुग्रीव शुक्ल वर्ण सुषुम्नः सूर्यरश्मिः ० इस मंत्रसे पूजित करना ॥ ३५ ॥ पुष्पदन्त रक्तवर्ण नक्षत्रेभ्यः ० इस मंत्रसे पूजित करना वरुण शुक्ल इतरो मित्रास्यत वरुणास्यत ० इसमंत्रसे पूजित करना ॥ ३६ ॥ आसुर पीतरक्त ये रूपाणि ० इस मंत्रसे पूजित करना शोक कृष्णवर्णका उसका आसवे स्वाहा इस मंत्रसे आवाहनकरै ॥ ३७ ॥ पापयक्ष्मा पीत वर्णका सूर्यराश्मि ० इस मंत्रसे पूजित करना. कोणमें

स्थित रोग रक्तवर्ण है उसकी पूजा शिरोंमे० इस मंत्रसे करनी ॥ ३८ ॥ वायु कोणमें द्विपद रक्त उसकी पूजाका मंत्र नमोस्तु सर्पेभ्यः०यह है. मुख्य रक्तशरीर बनाना और इषेत्वा०इस मंत्रसे पूजना ॥ ३९ ॥ भल्लाटक कृष्णवर्ण बण्महाँअसि० इस मंत्रसे पूजना. श्वेतवर्णका सोम उत्तरमें स्थित होताहै उसका वयं सोम० इसमंत्रसे पूजन करना ॥ ४० ॥ सर्प कृष्णवर्णका उसका उदुत्यं जातवेदसं० इस मंत्रसे पूजन करना. अदिति पीतवर्णकी उसकी उतनोहिर्बुध्न्यन० इस मंत्रसे पूजा करनी ॥ ४१ ॥ दिति पीतवर्णकी उसकी पूजा अदितिर्द्यौ० इस मंत्रसे ईशानकोणमें करनी और ईशान आदि क्रमसे ही इनका स्था

द्विपदोहिर्वायुकोणेरक्तोनमोस्तुसर्पेभ्यश्च ॥ मुख्योरक्तवपुःकार्यइषेत्वाइतिपूजयेत् ॥ ३९ ॥ भल्लाटकःकृष्णवर्णोबण्महाँअसिमन्त्रतः ॥ सोमःश्वेतश्चोत्तरेचवयंसोमेतिमन्त्रतः ॥ ४० ॥ सर्प्पः कृष्णवपुः पूज्य उदुत्यंजातवेदसम् ॥ अदितिःपीतवर्णातुउतनोहिर्बुध्न्यमन्त्रतः ॥ ४१ ॥ दितिःपीताअदितिर्द्यौमन्त्रेणेशानकोणके ॥ ईशानादिक्रमेणैवस्थाप्याःपूज्याःस्वमन्त्रतः ॥ ४२ ॥ नाममन्त्रेणवास्थाप्याः पूज्याश्चैवयथाक्रमात् ॥ भूर्भुवःस्वेतिमन्त्रेणप्रणवाद्येननामकैः ॥ ४३ ॥ ईशानेचरकीस्थाप्याधूम्रवर्णाथवाह्यगाः ॥ ईशावास्येतिमन्त्रेणस्थाप्याः पूज्याःप्रयत्नतः ॥ ४४ ॥ विदारिकारक्तवर्णाअग्निंदूतेतिमन्त्रतः ॥ पूतनापीतहरितानमःस्वस्त्यायमंत्रतः ॥ ४५ ॥ पापराक्षसीकृष्णाभावायव्यैरितिमन्त्रतः ॥ बहिरेवचपूर्वादिक्रमेणचततोर्चयेत् ॥ ४६ ॥

पन और पूजन अपने २ मंत्रसे करना ॥ ४२ ॥ अथवा नाममंत्रसेही स्थापन पूजन क्रमसे करना अथवा ॐकार है आदि में जिसके ऐसे भूर्भुवः स्वः इस मंत्रसे नाम लेलेकर पूजन करना ॥ ४३ ॥ रेखाओंसे बाह्य देशमें ईशानकोणके विषै चरकी स्थापन करै और उसका स्थापन और पूजन बडे यत्नसे ईशावास्य० इस मंत्रसे करै ॥ ४४ ॥ विदारिका रक्तवर्ण उसका आग्निन्दूतम् इस मंत्रसे पूजन करै. पूतना पीली और हरित वर्णकी उसका नमस्स्तुत्याय० इस मंत्रसे पूजन करै ॥ ४५ ॥ पापराक्षसी कृष्णवर्णकी उसका पूजन भावाय० इस मंत्रसे करै और बहिर्देशमें पूर्वआदि क्रमसे उसके अनन्तर पूजन

करै ॥ ४६ ॥ स्कन्ध घटि रक्त और कृष्णवर्ण एह्यत्रमय० इस मंत्रसे पूजित करनी अर्यमा दक्षिणमें कृष्णवर्णका अर्यम्णा च बृहस्पति० इस मंत्रसे दक्षिण दिशामें पूजित करना ॥ ४७ ॥ पश्चिममें रक्त वर्णका जम्भक कहाहै उसका पूजन सरोभ्यो भैरवं० इस मंत्रका उच्चारण करके करै ॥ ४८ ॥ पिलिपिच्छिक पीत वर्णका उसका पूजन कारंभमर० इस मंत्रसे करै ईशानमें भीम रूप रक्त वर्णका उसका पूजन यमायत्वा० इस मंत्रसे करै ॥ ४९ ॥ त्रिपुरारि कृष्णवर्ण है उसका त्र्यम्बक इस मंत्रसे अग्निकोण में पूजन करै नैर्ऋतमें पीतवर्णका अग्निजिह्व उसका पूजन असुन्वन्त० इस मंत्रसे करै ॥ ५० ॥ कराल रक्त वर्ण उसका

रक्तकृष्णस्कंधघटीएह्यत्रमयमंत्रतः ॥ अर्यमादक्षिणेकृष्णअर्यम्णाचबृहस्पातिः ॥ ४७ ॥ पश्चिमेरक्तवर्णस्तुजंभकःपरिकीर्तितः ॥
सरोभ्योभैरवंमंत्रंसमुच्चार्यप्रपूजयेत् ॥ ४८ ॥ पिलिपिच्छिकःपीतवर्णःकारंभमरेतिमंत्रतः ॥ भीमरूपस्तथेशानेयमायत्वेतिरक्तकः
॥ ४९ ॥ त्रिपुरारिःकृष्णवर्णस्त्र्यंबकेत्वग्निकोणके ॥ अग्निजिह्वस्तुनैर्ऋत्येअसुन्वंतेतिपीतकः ॥ ५० ॥ करालारक्तवर्णातुवातोह
त्वाहणास्थितः ॥ हेतुकः पूर्वदिक्कृष्णोहेमन्तेऋतुनातथा ॥ ५१ ॥ अग्निवेतालकेयाम्येकृष्णोग्निंदूतमित्यपि ॥ कालाख्यःपश्चिमे
कृष्णोवरुणस्योत्तंभनंतथा ॥ ५२ ॥ एकपादः पीतवर्णः कुविदंगेतिचोत्तरे ॥ ईशानपूर्वयोर्मध्येगन्धमालयश्चपीतकः ॥ ५३ ॥
गन्धद्वारेतिमन्त्रेणपूज्यमानोन्तरिक्षके ॥ नैर्ऋत्यांबुद्धिमध्यस्थोज्वालास्यःश्वेतरूपधृक् ॥ ५४ ॥

पूजन वातोहत्वाहणास्थितः० इस मंत्रसे करै हेतुक पूर्व दिशामें कृष्णवर्णका उसका पूजन हेमन्ते ऋतुना० इस मंत्रसे करै ॥ ५१ ॥ अग्निवेताल दक्षिणदिशामें उसका पूजन दक्षिण दिशामें अग्निंदूतम्० इस मंत्रसे करै काल पश्चिम दिशामें कृष्णवर्णका उसका वरुणस्योत्तम्भनमसि० इस मंत्रसे पूजन करै ॥ ५२ ॥ एकपाद उत्तरमें पीत वर्णका उसका कुविदांग० इस मंत्रसे पूजन करै ईशान और पूर्व दिशाके मध्यमें पीत वर्णका गंधमाल्य होताहै ॥ ५३ ॥ उसका पूजन अन्तरिक्षमें गंधद्वारा० इसमंत्रसे

करै नैर्ऋति दिशामें बुद्धिके मध्यमें स्थित श्वेतरूपधारी ज्वालास्यहै ॥ ५४ ॥ उसका विधिसे पूजन महीद्यौः० इस मंत्रसे करै जो बाह्य देवता कहेहैं उनका पूजन प्रासादमें करै ॥ ५५ ॥ दुर्ग और देवालय और शल्योद्धारमें विशेषकर पूजन करै और चतुष्षष्टिहैं पद जिसमें ऐसे वास्तुकोभी बनावै ॥ ५६ ॥ और कलशके विषै वरुणदेवका स्थापन करै और उस कलशको तीर्थके जल और सर्व बीजोंसे पूरित करै ॥ ५७ ॥ सर्वौषधि सर्वरत्न और अनेक प्रकारके गन्ध पंच कषाय और पल्लव और मि

महीद्यौरितिमंत्रेणपूजनीयोविधानतः॥येबाह्यदेवताःप्रोक्ताःप्रासादेतान्प्रपूजयेत्॥५५॥दुर्गेदेवालयेचैवशल्योद्धारेतथैवच ॥ विशेषेणैवपूज्याश्चचतुःषष्टिपदंतथा ॥ ५६ ॥ कलशेस्थापयेद्देवंवरुणंवरुणौततः ॥ कलशम्पूरयेत्तीर्थवारिणासर्वबीजकैः ॥ ५७ ॥ सर्वौषधैःसर्वरत्नगन्धैश्चविविधैस्तथा ॥ पल्लवैःपञ्चकाषायैर्मृदाशुद्धोदकेनवा ॥ ५८ ॥ ग्रहाणाम्पूजनन्तत्रकारयेद्वेदिकोपरि ॥ मुरामांसीवचाकुष्ठंशैलेयंरजनीद्वयम् ॥ ५९ ॥ शठीचम्पकमुस्ताचसर्वौषधिगणःस्मृतः ॥ अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधसम्भवाः ॥ ६० ॥ पञ्चभङ्गाइमेप्रोक्ताः सर्वकर्मसुशोभनाः ॥ तुलसीसहदेवीचविष्णुक्रान्ताशतावरी ॥ ६१ ॥ मूलान्येतानिगृह्णीयाच्छतालाभेविशेषतः ॥ वटीर्वटोदुम्बरस्यवेतसस्यतथैवच ॥ ६२ ॥ अश्वत्थश्चैवमूलश्चपंञ्चकाषायकाः स्मृताः ॥ अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदात् ॥ ६३ ॥

ट्टी इनसे पूर्णकरै वा शुद्ध जलसे पूर्ण करै ॥ ५८ ॥ और वहां वेदीके ऊपर ग्रहोंका पूजन करै मुरा जटामांसी वच कूठ चंदन दोनों हलदी ॥ ५९ ॥ शठी चम्पा नागरमोथा यह सर्वौषधियोंका गण कहाहै पीपल गूलर पिलखन आम्र और बड इनमें उत्पन्न हुए ॥ ६० ॥ पंचपल्लव कहेहैं और ये सब कर्मोंमें श्रेष्ठ होते हैं तुलसी सहदेवी विष्णुक्रान्ता शतावर ॥ ६१ ॥ यदि सौ औषधि न मिलै तो इन मूलोंको ग्रहण करै वड गूलर वैंत ॥ ६२ ॥ अश्वत्थ (पीपल) और मूल ये पंच कषाय कहेहैं

अश्वस्थान गजस्थान बमई दो नदियोंका संगम ॥६३॥ और राजद्वारका प्रवेश इनसे मट्टी मंगाकर कलशमें डारै संपूर्ण समुद्र नदी तलाव और जल देनेवाले नद ॥ ६४ ॥ ये सब यजमानके पापनाशक कलशमें आओ ॥ ६५ ॥ और कलशमें शिखी आदि पैंतालीस ४५ दोषोंका पूजन करै ॥ ६६ ॥ और वह पूजन वेदके मंत्र वा नामके मंत्र ॐकार वा व्याहृतियोंसे करना और हस्तभर प्रमाणके तीन मेखलावाले कुण्डमें होम करना ॥ ६७ ॥ और जौं कालेतिल समिध और क्षीरवृक्ष पालाश खादिर अपामार्ग गूलर इनसे होमकरै ॥ ६८ ॥ अ

राजद्वारप्रवेशाच्चमृदमानीयनिक्षिपेत् ॥ सर्वेसमुद्राःसरितःसरांसिजलदानदाः ॥ ६४ ॥ आयान्तुयजमानस्यदुरितक्षयकारकाः ॥ ६५ ॥ शिख्यादिपंचचत्वारिंशद्दोषांस्तत्रप्रपूजयेत् ॥ ६६ ॥ वेदमन्त्रैर्नाममन्त्रैःप्रणवव्याहृतिभिस्तथा ॥ होमस्त्रिमेखलैकार्यः कुण्डेहस्तप्रमाणके ॥ ६७ ॥ यवैः कृष्णतिलैस्तद्वत्समिद्भिःक्षीरवृक्षकैः ॥ पालाशैः खादिरैर्वापामार्गोदुम्बरसम्भवैः ॥ ६८ ॥ कुशदूर्वामयैर्वापिमधुसर्पिःसमन्वितैः ॥ कार्यस्तुपञ्चभिर्बिल्वैर्बिल्वबीजैरथापिवा ॥ ६९ ॥ होमान्तेभक्ष्यभोज्यैश्चवास्तुदेशेबलिं हरेत् ॥ नमस्कारान्तयुक्तेनप्रणवाद्येनसर्वतः॥७०॥ वेदोक्तैर्वमन्त्रेणसम्पूज्या देवताः क्रमात् ॥ ततोव्याहृतिभिर्होमः स्विष्टकृद्धोममेवच ॥ ७१ ॥ पूर्णाहुतिश्चजुहुयात्संस्रवप्राशनन्ततः ॥ वास्तुमण्डलदेवेभ्योबलिन्दद्याद्विधानतः ॥ ७२ ॥ घृतान्नंशिखिनेदद्यात्पर्जन्यायचसोत्पलम् ॥ जयन्तादिवास्तुमण्डलदेवेभ्योबलिन्ततः ॥ ७३ ॥

थवा सहत मिलीहुई कुशा और दूवसे घृत मिलाकर करै अथवा पांचवेल वा बेलकी चीजोंसे करै ॥ ६९ ॥ होमके अन्तमें भक्ष्य और भोज्योंसे वास्तुदेशमें नमस्कार जिसके अन्तमें और ओंकार जिसकी आदिमें हो ऐसे मंत्रसे बलिको दे ॥ ७० ॥ क्रमसे वेदोक्तमंत्रोंसे देवताओंका पूजन करै फिर व्याहृतियोंसे होम करै और स्विष्टकृत् होमको करै ॥ ७१ ॥ फिर पूर्णाहुतिका हवन करै और संश्रवका प्राशन अर्थात् स्रुवेके घीका भक्षण करै और विधिसे वास्तुमण्डलदेवताओंको बलि दे ॥ ७२ ॥ शिखीको घृतान्न दे और पर्जन्यको

घृतान्न और कमलकी बलिदे फिर जयन्तआदि वास्तुमण्डलदेवताओंको बलि दे ॥ ७३ ॥ कुलिशायुधको पंचरत्न और पुष्टिके पदार्थ दे सूर्यको कुशा और धूम्र रक्त चंदोवा अपूप और सत्तु दे ॥ ७४ ॥ सत्यको घी और गेहुं दे और भृशको मत्स्य और अन्न दे अन्तरिक्षको शष्कुलि (पूरी) और पक्षीयोंका मांस दे ॥ ७५ ॥ वायसको सत्तु और पूषाको लाजा (खील) बुद्धिमान् मनुष्योंने कही हैं वितथको चणकान्न और गृहक्षतको मधवन्नदे ॥ ७६ ॥ यमको पिशितान्न (मांस) गन्धर्वको गन्धौदन और भृंगराजको मीढे के जिव्हाकी बलि दे ॥७७॥ मृगको और नीलपदको जौकी बलि दे पितर और दौवारिकको कृशरान्न (खिचडी) की बलि दे ॥७८॥ और

कुलिशायुधायपञ्चरत्नंपौष्टिकसंभवम् ॥ कौशंसूर्यायधूम्ररक्तवितानापूपसक्तवैः ॥ ७४ ॥ सत्यायघृतगोधूमंमत्स्यान्नञ्चभृशायच ॥ अन्तरिक्षायशष्कुलीमांसंवापिचशाकुनम् ॥ ७५ ॥ वायसेसक्तवःप्रोक्ताःपूष्णेलाजाःस्मृताबुधैः ॥ वितथायचणकान्नमध्वन्नञ्चगृहक्षते ॥७६॥यमायपिशितान्नन्तुगन्धर्वायगन्धौदनम् ॥ भृङ्गराजायमेषस्यजिह्वायाश्चबलिंहरेत् ॥ ७७ ॥ मृगाययावकन्दद्याद्वलिन्नीलपदस्तथा ॥ पितृभ्यःकृशरान्नञ्चतथादौवारिकायच ॥ ७८ ॥ दन्तकाष्ठंकृष्णपिष्टंदन्तधावनमेवच ॥ सुग्रीवायअपूपञ्चयावकन्तुतथैवच ॥ ७९ ॥ पुष्पदन्तायपायसंवरुणायतथैवच ॥ कुशस्तम्भञ्चयमञ्चपैष्टंहैरणमयन्तथा ॥ ८० ॥ असुरायसुराप्रोक्ताशोषायचघृतौदनम् ॥ गोधार्थीवैयक्ष्मणेचरोगायघृतमोदनम् ॥ ८१ ॥ अहयेफलपुष्पाणिनागकेशरइत्यपि ॥ मुख्यायघृतगोधूमंभल्लाटेमुद्गमोदनम् ॥ ८२ ॥ सोमायपायसघृतंनागेपौष्टिकशालकम् ॥ अदित्यैपौलिकादित्यैपूरिकायाबलिःस्मृतः ॥ ८३ ॥

सुग्रीवको दतोन कृष्णचूर्ण दांत और काष्ठ पूडे और जौं इनकी बलि दे ॥ ७९ ॥ पुष्पदन्त और वरुणको पायस (खीर) की बलि दे और यमको कुशाका स्तंभ पिठी और सुवर्णकी बलि दे ॥ ८० ॥ असुरको मदिराकी बलि और शोषको घृतौदनकी बलि कहीहै पापयक्ष्माको गोहकी और रोगको घी और ओदनकी बलि दे ॥ ८१ ॥ अहिको फल पुष्प और नागकेसरकी बलि दे मुख्यको घी और गेहुंकी भल्लाटको मूंगओदनकी बलिदे ॥ ८२ ॥ सोमको पायस और घीकी नागको पुष्टिके पदार्थ और शालीयोंकी अदितिको पोली

यों की अर्थात् रोटीयोंकी और दितिको पूरीयोंकी बलि कहीहै॥८३॥और जलोंको दूध और सविताको कुशौदन देना और जयको लड्डू और मिर्च दे और घी और चंदन ॥ ८४ ॥ रुद्रको दे पायस और गुड अर्यमाको और खांड मिला हुआ पायसभी अर्यमाको दे और सविताको गुड और अपूपोंकी बलि कहीहै ॥८५॥ विवस्वान्‌को रक्तचंदन और पायसकी बलि दे और इन्द्रको घी सहित हडताल और ओदनकी बलि दे ॥८६॥ मित्रको घृतौदन कच्चे मांस और सहतकी बलि दे राजयक्ष्मा पृथ्वीधर और मितौजस इनको ॥८७॥ मांस और कूष्माण्डकी बलि दे और आपवत्सको दधिकी बलि दे ब्रह्माको पंचगव्य जौं तिल अक्षत दधि इनकी बलि दे ॥ ८८॥ और अनेक प्रकारके भक्ष्य

अद्भ्योपिक्षीरञ्चतथासावित्रेचकुशौदनम् ॥ लड्डुकंमरिचञ्चैवजयायघृतचन्दनम् ॥ ८४ ॥ रुद्रायपायसगुडमर्यम्णेशर्करान्वितम् ॥ पायसञ्चसवित्रेतुगुडापूपबलिःस्मृतः ॥ ८५ ॥ विवस्वतेतथादेयंरक्तचंदनपायसम् ॥ इन्द्रायसघृतंदेयंहरितालौदनन्तथा ॥ ८६ ॥ घृतौदनञ्चमित्रायआममांसंमधुस्तथा ॥ राजयक्ष्मणेचपृथ्वीधरायचमितौजसे । ८७ ॥ मांसानेकूष्माण्डमितिआपवत्साय वैदधि ॥ ब्रह्मणेपञ्चगव्यंचयवन्तिलाक्षतन्दधि ॥ ८८ ॥ विविधान्भक्ष्यभोज्यांश्चफलानिविविधानिच ॥ एवंदत्त्वाबलिंसम्यग्दद्यात्तेभ्यो हिरण्मयम् ॥८९॥ प्रणवाद्यैश्चतुर्थ्यन्तैर्नाममन्त्रेणमन्त्रवित् ॥ सर्वेभ्योपिहिरण्यञ्चब्रह्मणेगांपयस्विनीम् ॥ ९० ॥ अथवापायसंदद्यात्सर्वेभ्यश्चसदीपकम् ॥ ततोबाह्यस्थितानान्तुबलिन्दद्याद्विधानतः ॥ ९१ ॥ चरक्यैमाषभक्तञ्चसघृतंपद्मकेशरम् ॥ हविश्चैवतथाग्नेयेवितानकविदारिके ॥ ९२ ॥

भोज्य और अनेक प्रकारके फल सम्पूर्ण देवताओंको दे इस पूर्वोक्त रीतिसे भली प्रकार बलि देकर संपूर्ण देवताओंको सुवर्ण दे ॥८९ ॥ और ये संपूर्ण ॐकार जिनकी आदिमें और चतुर्थीविभक्ति जिनके अन्तमें ऐसे नाममंत्रोंसे मंत्रके ज्ञाताको देने और सब देवताओंको सुवर्ण देना और ब्रह्माको दूध देती हुई गौको दे ॥ ९० ॥ अथवा सब देवताओंको दीपक सहित पायस दे फिर विधिसे बाह्यमें स्थित देवताओं को बलिदे ॥ ९१ ॥ चरकीको उडदोंका भक्त और घीसहित पद्मकेशर और हवि दे और अग्निकोणमें विदारिकाको चंदोवा ॥ ९२ ॥

माषभक्त रुधिर और हरिद्राभक्त दे और नैर्ऋतमें पूतनाको माषभक्तसे मिले हुए ॥९३॥ रुधिर अस्थि और पीत रक्तकी बलि पूतना देवीको निवेदन करै और वायव्यमें पापराक्षसीको मत्स्यका मांस और सुरासवका निवेदन करै ॥ ९४॥ फिर पूर्व आदि दिशाओंमें स्कंधको रुधिर और सुरा दे दक्षिणमें अर्यमाको माषभक्त निवेदन करै ॥९५॥ पश्चिममें जंभकको मांस और रुधिर दे उत्तरमें पिलिपिच्छको रुधिरकी बलि कहीहै ॥९६॥ इन पूर्वोक्त देवताओंको विधिसे बलि दे और तिसीप्रकार प्रासाद आदिमें इनको भलीप्रकार बलि दे॥९७॥ ईशानमें भीमरोगको

माषभक्तंसरुधिरंहरिद्राभक्तमेवच ॥ नैर्ऋत्याञ्चपूतनायैमाषभक्तेनसंयुतम् ॥ ९३ ॥ रुधिरास्थिपीतरक्तम्बलिन्देव्यैनिवेदयेत् ॥
वायव्येपापराक्षस्यैमत्स्यमांससुरासवम् ॥ ९४ ॥ ततःप्रागादितोदिक्षुस्कंदायरुधिरंसुराः ॥ अर्यम्णेमाषभक्तञ्चदक्षिणेविनिवेदयेत्
॥ ९५ ॥ जंभकायतथामांसंरुधिरंपश्चिमेन्यसेत् ॥ पिलिपिच्छकायोत्तरेचअसृग्यमबलिःस्मृतः ॥ ५९६ ॥ इत्येतेषान्देवतानाम्ब
लिन्दद्याद्विधानतः ॥ प्रासादादौतथैतेषाम्बलिन्दद्यात्प्रयत्नतः ॥ ५९७ ॥ भीमरूपायईशानेकपोतकसुराबलिः ॥ वसारुधिरमां
सानांकृशरायास्तथैवच ॥९८॥ आग्नेयादितिसन्धारीत्रिपुरान्तकरूपधृक् ॥ अग्निजिह्वस्तुनैर्ऋत्येदुग्धंसैंधवसंयुतम् ॥ ९९॥ मांसञ्चरु
धिरन्देयन्तस्मैदिकपालिनेनमः॥करालिकेपक्वमांसंरुधिरंसैन्धवम्पयः ॥ ६००॥ हेतुकेपूर्वदिग्भागेबलिःस्यात्पायसंह्यसृक् ॥ अग्निवैता
लिकेयाम्येरुधिरंमांसमेवच ॥ १ ॥ कालाख्ये पश्चिमेदद्याद्बलिंमांसौदनस्यच ॥ एकपादेउत्तरस्यांकृशरायाबलिस्तथा ॥ २ ॥

कपोत और सुराकी बलि दे और वसा रुधिर मांस और कृशर अन्नकी बलिभी दे ॥ ९८ ॥ आग्नेयमें अदिति सन्धारि त्रिपुरान्तक रूपधृक् और नैर्ऋतमें अग्निजिह्व को सैन्धव मिलै दूधकी बलि दे ॥ ९९ ॥ और मांस रुधिरकी बलि उस दिक्पाल को नमस्कारहै यह कह करदे करालिकको पकायाहुआ मांस रुधिर सैन्धव और दूधकी बलि दे ॥ ६०० ॥ हेतुकको पूर्वा दिशामें पायस और रुधिर की बलि होतीहै अग्नि वैतालिकको दक्षिणमें रुधिर मांसकी बलि दे॥ १ ॥ पश्चिममें कालाख्य

को मांसौदनकी बलिदे उत्तरमें एकपादको कृशरकी बलि दे ॥ २ ॥ अग्नि और पूर्वके मध्यमें वितानकको गन्धमाल्य दे नैर्ऋत और पश्चिमके मध्यमें ज्वालास्य देवता कहाहै ॥ ३ ॥ उसको दही अक्षतोंसे युक्त मोदकोंकोदे दिक्पालों को बलि देकर फिर क्षेत्र पालको आगमोक्तमंत्र वा वेदोक्त मंत्रसे बलि दे ॥ ४ ॥ क्षेत्रपालकी बलिका मंत्र यह है कि भगवान् क्षेत्रपालको नमस्कारहै और तेतीसकोटि देवताओंके अधिपतिको और भारके जेताको और प्रकाशमान् त्रिनेत्रको और अपने अंगमें किंकिणी ज्वालामुख भैरवको तुरु मुरुमुरुललषषषषकेंकार दुरित दिङ्मुख रूप हे महाबाहो! आज करने योग्य वास्तुकर्ममें अमुक

आग्नेयपूर्वयोर्मध्येगन्धमाल्यैर्वितानकम् ॥ नैर्ऋत्यपश्चिमान्तस्थोज्वालास्यःपरिकीर्तितः ॥ ३ ॥ तस्मैदध्यक्षतयुतंमोदका निवदापयेत् ॥ दिक्पालानाम्बलिन्दत्त्वाक्षेत्रपालबलिन्ततः ॥ ६०४ ॥ आगमोक्तेनमन्त्रेणवेदमन्त्रेणवैतथा ॥ नमोभ गवतेक्षेत्रपालायत्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवाधिदेवायनिर्जितायभारभासुरित्रिनेत्रायस्वाङ्गकिङ्किणिज्वालामुखभैरवरूपिणेतुरुमुरुमुरुललषषष षषकेङ्कारदुरितदिङ्मुखमहाबाहोअद्यकर्तव्येवास्तुकर्मणिअमुकंयजमानंपाहिपाहिआयुष्कर्ताक्षेमकर्ताभव अमुंपशुंदीपसहितंमुण्डं माषभक्तबलिंगृह्णगृह्णस्वाहा ॥ ६०५ ॥ इतिबलिंदत्त्वा ॥ नैर्ऋत्यान्दिशिभूतेभ्योसन्ध्याकालेविशेषतः ॥ बलिंदद्याद्विधानेनम न्त्रविन्नक्तभुग्यमी ॥ पुरोहितस्तथायाज्यंगुडौदनमथापिवा ॥ ६०६ ॥ कुल्माषेणतुसम्मिश्रैर्यावकापूपसंयुतैः ॥ बहुपक्वान्नसं युक्तैर्बालक्रीडनकैस्तथा ॥ ६०७ ॥ फलैश्चदाडिमीबीजैःकालपुष्पैर्मनोरमैः ॥ मात्राननाशनमिताबलिकर्मणिचोदिताः ॥ ६०८ ॥

नाम यजमानकी रक्षा करो आयुका कर्ता कुशलका कर्ता और दीपक सहित इस पशुको और माषभक्त बलिको ग्रहण करो करो २ स्वाहा० इस मंत्रसे क्षेत्रपालको बलि देकर ॥ ५ ॥ संध्याके समयमें नैर्ऋत दिशामें भूतोंको शास्त्रोक्त विधानसे बलिको मंत्रका ज्ञाता दे और रात्रिमें भोजन करै संयमसे रहै और पुरोहित यजमान गुडौदन ॥ ६ ॥ कुलमाष (रनास) जिनमें मिलाहो ऐसे जो और अपूप और बहुतसे पक्वान्न जिनमें मिले हों और बालकोंके खिलोंने ॥ ७ ॥ फल अनारके बीज और मनो

हर समयके फूल इनकी मात्रा जो भोजनके योग्य न हों अर्थात् अल्प अल्प बलिकर्ममें कहीहै ॥ ८ ॥ उनके मंत्र ये हैं कि देवी देवता मुनींद्र त्रिभुवनके पति दानव सर्व सिद्ध यक्ष राक्षस नाग गरुड हैं मुख्य जिनमें ऐसे पक्षी गुह्यक देवताओंके देव डाकिनी देवताओंकी वेश्या हरि समुद्रके पति मातर विघ्ननाथ प्रेत भूत पिशाच पितृगण और नगर आदिके अधिपति और क्षेत्रपाल ॥ ९ ॥ गन्धर्व और संपूर्ण किन्नर जटाधारी पितर ग्रह कूष्माण्ड पूतना रोग ज्वर वैतालिक शिव ॥ १० ॥ रुधिर से युक्त और पिशुन (चुगल) और अनेक प्रकारके मांसके भक्षक और लम्बक्रोड और दीर्घ शुक्र ॥११॥ खञ्ज (लँगडे) स्थूल एकाक्ष और

मन्त्राः ॥ देव्योदेवामुनीन्द्राभूभुवनपतयोदानवाःसर्वसिद्धा यक्षारक्षांसिनागागरुडमुखखगागुह्यकादेवदेवाः ॥ डाकिन्योदेववेश्याहरिदधिपतयोमातरोविघ्ननाथाः प्रेताभूताः पिशाचाः पितृवननगराद्याधिपाः क्षेत्रपालाः ॥ ६०९ ॥ गन्धर्वाः किन्नरास्सर्वे जटिलाः पितरोग्रहाः ॥ कूष्माण्डाः पूतनारोगाज्वरावैतलिकाः शिवाः ॥ ६१० ॥ असृक्प्लुताश्चपिशुनाभक्षमांसान्यनेकशः ॥ लम्बक्रोडास्तथाह्रस्वा दीर्घाःशुक्रास्तथैवच ॥ ६११ ॥ खंजाः स्थूलास्तथैकाक्षानानापक्षिमुखास्तथा ॥ व्यालास्याउष्ट्रवक्राश्च अवक्राःक्रोडवर्जिताः ॥ ६१२ ॥ धमनाभास्तमालाभाद्विपाभामेघसन्निभाः ॥ गवलाभाःक्षितिनिभाअशनिस्वनसन्निभाः ॥ ६१३ ॥ द्रुतगाश्चमनोगाश्चवायुवेगसमाश्चये ॥ बहुवक्राबहुशिराबहुबाहुसमन्विताः ॥ ६१४ ॥

अनेक प्रकारके वे जिनके पक्षियोंके समान मुख हों सर्पके समान जिनके मुख हों और उष्ट्रमुख और मुखसे हीन और क्रोड (छाती) से हीन ॥ १२ ॥ धमनके समान जिनकी कान्ति और तमालके समान जिनकी कान्ति है और जो मेघकी समान जिनकी कान्ति बगलेके समान और क्षितिके तुल्य और वज्रके शब्दके समान है शब्द जिनका ॥ १३ ॥ शीघ्रगामी पवनके समान जिनका वेग और वायुके तुल्य जिनका वेग है जिनके अनेक मुख हैं अनेक शिर हैं और अनेक भुजाओंसे

जो शुक्रहैं ॥ १४ ॥ जिनके बहुत पाद हैं और बहुत नेत्र जिनके है और जो संपूर्ण भूषणोंसे भूषित हैं जिनका विकट रूप है और जो मुकुटके धारी हैं और जो रत्नके धारी हैं ॥ १५ ॥ जिनका कोटियों सूर्यके समान तेज है और जिनका बिजलीके समान तेज है जिनका कपिल रंग है और जिनका अग्निके समान वर्ण है और जो अनेक रूपके प्रमथहैं ॥ १६ ॥ ये संपूर्ण बलिको ग्रहण करो और तृप्त होकर जाओ उनके प्रति नमस्कारहै फिर आचार्य मंत्रोंसे अभिमंत्रित कियेहुए कलशको लेकर

बहुपादाबहुदृशः सर्प्पाभरणभूषिताः ॥ विकटामुकुटाःकेचित्तथावैरत्नधारिणः ॥ ६१५ ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशाविद्युत्सदृशवर्चसः ॥ कपिलाहुतभुग्वर्णाःप्रमथाबहुरूपिणः॥६१६॥गृह्णन्तुबलयस्सर्वेतृप्तायान्तुबलिर्नमः॥आचार्यस्तुततोनीत्वाकलशंमन्त्रमन्त्रितम् ६१७॥ स्वयम्प्रत्यङ्मुखोभूत्वाप्राङ्मुखंयजमानकम् ॥ स्वशाखोक्तेनमन्त्रेणआगमोक्तेनवातथा ॥ ६१८ ॥ स्नापयेत्कुम्भतोयेनमंत्रैः पौराणिकैस्तथा ॥ वैदिकैर्वातथामन्त्रैः सवस्त्रस्थः कुटुम्बवान् ॥ ६१९ ॥ सदारपुत्रमेतस्ययजमानस्यऋत्विजः ॥ सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तुयेचसिद्धाः पुरातनाः ॥ ६२० ॥ ब्रह्माविष्णुश्चशम्भुश्चसाध्याश्चसमरुद्गणाः ॥ आदित्यावसवोरुद्राअश्विनौचभिषग्वरौ ॥६२१॥ अदितिर्देवमाताचस्वाहासिद्धिः सरस्वती ॥ कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्चसिनीवालीकुहूस्तथा ॥ ६२२ ॥

॥ १७ ॥ और आप पश्चिमको मुख करके पूर्वाभिमुख बैठेहुए यजमानको अपने शाखामें कहे और वेदमें कहे मंत्रसे ॥ १८ ॥ और पौराणिकमंत्रोंसे और वेदके मंत्रोंसे वस्त्र और कुटुम्ब सहित पूर्वोक्त यजमानको घटके जलसे स्नान करवावै ॥ १९ ॥ स्त्री और पुत्रसहित यजमानको ऋत्विजभी स्नान करवावै देवता और जो पुरातन सिद्ध हैं वे भी यजमान आपका अभिषेक करो ॥ २० ॥ ब्रह्मा विष्णु शंभु साध्य मरुद्गण आदित्य वसु रुद्र और वैद्योंमें उत्तम अश्विनी कुमार ॥ २१ ॥ देवताओंकी माता अ

दिति स्वाहा सिद्धि सरस्वती कीर्ति लक्ष्मी द्युति श्री सिनीवाली और कुहू ॥ २२ ॥ और दिति सुरसा विनता और कद्रू और जो देवताओंकी पत्नी शास्त्रोंमें कहीहैं और देवताओंकी माता ॥ २३ ॥ भो यजमान ये सब आपका अभिषेक करो और शुभ अप्सराओंके गण नक्षत्र और मुहूर्त और अहोरात्रकी संधि ॥ २४ ॥ सम्वत्सर जिनके स्वामी कला काष्ठा क्षण और लव और शुभदायी कालके अवयव भो यजमान ये सब आपका अभिषेक करो ॥ २५ ॥ ये देवता और अन्य जो वेदव्रतमें परायण मुनि हैं वे

दितिश्चसुरसाचैवविनताकद्रुरेवच ॥ देवपत्न्यश्चयाः प्रोक्तादेवमातरएवच ॥ ६२३ ॥ सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तुशुभाश्चाप्सरसाङ्गणाः॥ नक्षत्राणिमुहूर्त्ताश्चयाश्चाहोरात्रसन्धयः ॥ ६२४ ॥ सम्वत्सरादिनेशाश्चकलाकाष्ठाक्षणालवाः ॥ सर्वेत्वामभिषिञ्चन्तुकालस्यावयवाः शुभाः ॥ ६२५ ॥ एतेचान्येचमुनयोवेदव्रतपरायणाः ॥ सशिष्यास्तेभिषिंचन्तुसदानाश्चतपोधनाः ॥ ६२६ ॥ वैमानिकाः सुरगणाः सरवैः सागरैः सह ॥ मुनयश्चमहाभागानागाः किम्पुरुषाः खगाः ॥ ६२७ ॥ वैखानसामहाभागाद्विजावैहायनाश्चये ॥ सप्तर्षयः सदाराश्चध्रुवस्थानानियानि च ॥ ६२८ ॥ मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥ भृगुः सनत्कुमारश्चसनको थसनन्दनः ॥ ६२९ ॥ सनातनश्चदक्षश्चजैगीषव्योभगन्दनः ॥ एकतश्चद्वितश्चैवत्रितोजाबालिकश्यपौ ॥ ६३० ॥ दुर्वासादुर्विनीतश्चकण्वः कात्यायनस्तथा ॥ मार्कण्डेयोदीर्घतपाः शुनःशेपोविदूरथः ॥ ६३१ ॥

शिष्यों सहित दानी और तपोधन भो यजमान आपका अभिषेक करो ॥ २६ ॥ विमानमें स्थित देवताओंके गण शब्दायमान समुद्र महाभागी मुनि-नाग-किंपुरुष-खग ॥ २७ ॥ महाभागी वैखानस और आकाशगामी पक्षी और स्त्रियों सहित सप्त ऋषि और जो ध्रुवस्थानहैं ॥ २८ ॥ मरीचि अत्रि पुलह पुलस्त्य क्रतु अंगिरा भृगु सनत्कुमार सनक सनंदन ॥ २९ ॥ सनातन दक्ष जैगीषव्य भगन्दन एकत द्वित त्रित जाबालि और कश्यप ॥ ६३० ॥ दुर्वासा दुर्विनीत कण्व कात्यायन और दीर्घ है तप जिसका ऐसे मार्कण्डेय शुनःशेफ

86

और विदूरथ ॥ ३१ ॥ और्व संवर्तक च्यवन अत्रि पराशर द्वैपायन यवक्रीत और अनुजोंसहित देवराज ॥३२॥ पर्वत वृक्ष वल्ली और पुण्य स्थान प्रजापति दिति और विश्वकी माता गौ ॥ ३३ ॥ दिव्य वाहन और संपूर्ण चराचर लोक अग्नि पितर तारा मेघ आकाश दिशा जल ॥ ३४ ॥ ये और वेदके व्रतमें परायण अन्य बहुतसे ऋषि इन्द्रसहित देवताओंके गण और जिनका पुण्य यश कीर्तन है वे सब ॥ ६३५ ॥ सम्पूर्ण उत्पातोंकी शान्तिके लिये जलोंसे आपका उसप्रकार अभिषेककरो जै

और्वः संवर्तकश्चैवच्यवनोत्रिः पराशरः ॥ द्वैपायनोयवक्रीतोदेवराजः सहानुजः ॥ ६३२ ॥ पर्वतास्तरवोवल्ल्यः पुण्यान्यायतनानिच ॥ प्रजापतिर्दितिश्चैवगावोविश्वस्यमातरः ॥ ६३३ ॥ वाहनानिचदिव्यानिसर्वेलोकाश्चराचराः ॥ अग्नयः पितरस्ताराजीमूताः खंदिशोजलम् ॥ ६३४ ॥ एतेचान्येचबहवोवेदव्रतपरायणाः ॥ सेन्द्रादेवगणाःसर्वेपुण्यश्रवणकीर्तनाः ॥ ६३५ ॥ तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तुसर्वोत्पातनिवर्हणे ॥ यथाभिषिक्तोमघवानेतैर्मुदितमानसैः ॥ ६३६ ॥ इत्येतैश्चार्थकल्पाभिः सहितैः समरुद्गणैः ॥ अभिषेकम्प्रकुर्वीतमन्त्रैः पौराणिकैस्तथा ॥ ६३७ ॥ ततः शुद्धोदकैः स्नानंयजमानस्यकारयेत् ॥ वास्तुमण्डलमध्येतुब्रह्मस्थानेप्रपूजयेत् ॥ ६३८ ॥ सुरूपांपृथिवींदिव्यरूपाभरणसंयुताम् ॥ स्त्रीरूपांप्रमदावेशधारिणींसुमनोहराम् ॥ ६३९ ॥ महाव्याहृतिपूर्वेणपूजयेत्तांधरांपुनः ॥ धारयेतिचमन्त्रेणसम्प्रार्थ्यचपुनः पुनः ॥ ६४० ॥

से प्रसन्न मनसे इन्होंने इन्द्रका अभिषेक कियाहै ॥ ३६ ॥ अर्थके जाननेमें समर्थ इन देवताओंका नाम लेकर मरुद्गण सहित पुराणके मंत्रोंसे अभिषेक करो ॥ ३७ ॥ फिर शुद्धजलोंसे यजमानको अभिषेक करावै फिर वास्तुमण्डलके विषे ब्रह्माके स्थानमें उस पृथ्वीका पूजनकरै ॥ ३८ ॥ जिसका सुन्दर रूप और जो दिव्यरूप और आभरणोंसे युक्त है जो स्त्रीरूप है और प्रमदावेष को धारण कररहीहै और जो भलीप्रकार मनोहर है ॥३९॥ महाव्याहृति है पूर्व जिसके ऐसे उस मंत्रसे पृथ्वीका पूजन करै और धारय०-

इसमंत्रसे भलीप्रकार प्रार्थना करके ॥ ६४० ॥ वास्तु सर्वदेवतारूपहै और वास्तु देवतारूप परमेश्वर है फिर अपने अपने नाममंत्रोंसे ध्यान करिके पूजन करै ॥ ४१ ॥ फिर प्रजाके ईश्वर चतुर्मुख देवका आवाहन करै फिर गन्धआदिसे उसका वारम्वार पूजन और प्रणाम करिके कहै कि ॥ ४२ ॥ हे वास्तुपुरुष हे भूमिशय्यामें रत हे प्रभो ! आपको नमस्कार है मेरे घरमें धनधान्य आदिकी वृद्धिको सदैव करौ ॥ ४३ ॥ फिर स्वस्तिवाचन कराकर और कर्क (करवा) को ग्रहणकरिकै सूत्रके मार्गसे और प्रदक्षिण क्रमसे जलकी धार

सर्वेदेवमयोवास्तुवास्तुदेवमयंपरम् ॥ ततः स्वनाममन्त्रेणध्यात्वातत्रचपूजयेत् ॥ ६४१ ॥ ततश्चतुर्मुखंदेवंप्रजेशंचाह्वयेत्ततः ॥ गन्धादिभिश्चतंपूज्यप्रणम्यचपुनः पुनः ॥ ६४२ ॥ वास्तुपुरुषनमस्तेस्तुभूमिशय्यारतप्रभो ॥ मद्गेहेधनधान्यादिसमृद्धिंकुरुसर्वदा ॥ ॥ ६४३ ॥ वाचयित्वाततः स्वस्तिकर्करस्थंपरिगृह्यच ॥ सूत्रमार्गेणतोयस्यधाराप्रादक्षिणेनच ॥ ६४४ ॥ पातयेत्तेनमार्गेणसर्वबीजानिचैवहि ॥ सर्वबीजेजलैरेवतन्मार्गेणापिसञ्चरेत् ॥ ६४५ ॥ इतिवास्तुविधानन्तुकृत्वातांस्नानमण्डपात् ॥ ६४६ ॥ समानीयशिलान्तत्रसूत्रधारोगुणान्वितः ॥ ६४७ ॥ तत्रदिक्साधनंकुर्याद्गृहमध्येसुसाधिते ॥ ईशानादिक्रमेणैवस्वर्णकुद्दालकेनतु ॥ ६४८ ॥ खनित्वाकोणभागेतुमध्येचैवविशेषतः ॥ नाभिमात्रेतथागर्तेशिलानांस्थापनंशुभम् ॥ ६४९ ॥

को ॥ ४४ ॥ यजमानसे गिरावै और उसीमार्गसे सर्व बीजोंको गिरवावै और सर्व बीजके जलोंकोंभी उसीमार्गसे गिरवावै और यजमानभी उसीमार्गसे गमन करै ॥ ६४५ ॥ इसप्रकार वास्तुविधानको करिके गुणोंसे युक्त सूत्रधार उस शिलाको शिलामण्डपसे भलीप्रकार आयकर ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ भलीप्रकार साधनकियेहुए घरके मध्यमें दिशाका साधन करै अर्थात् शिलास्थापनके देशका निश्चयकरै ईशान आदि दिशाओंके क्रमसे सुवर्णके कुद्दाल से (खुदाला) ॥ ४८ ॥ कोणभागमें और विशेषकर मध्यभा

गमें खोदकर नाभिपर्यन्त गर्तमें शिलाका स्थापन शुभ है ॥ ४९ ॥ शिलास्थापन समयमें सूत्रका छेद होजाय तो मृत्यु और कीलका अधोमुख होजायतो रोग स्कंधसे गिरै तो शिरका रोग हाथसे गिरजाय तो गृहके स्वामीका नाश होताहै ॥ ६९० ॥ यदि गृहके स्वामी और स्थपतिको इनके स्मरणका लोप होजाय तो मृत्युको देताहै यदि विसर्जनसे पहिले घटका भंग होजाय तो कुलके कीर्तिका नाश होता है ॥ ९१ ॥ यदि सूत्रके फैलाने समयमें गर्दभ शब्द करे तो उस स्थानमें

सूत्रच्छेदेभवेन्मृत्युः कीलेचावाङ्मुखेगदः ॥ स्कन्धाच्च्युतेशिरोरोगंकराद्गृहपतेः क्षयः ॥ ६९० ॥ गृहेशस्थपतीनाञ्चस्मृतिलोपो थमृत्युदः ॥ भग्नेकीर्तिवधःकुम्भेकुलस्योत्सर्गवर्जिते ॥ ६९१ ॥ सूत्रेप्रसार्य्यमाणेतुगर्दभोयदिरौतिचेत् ॥ तत्रास्थिशल्यंजानी याच्छ्वशृगालादिलङ्घितम् ॥ ६९२ ॥ रविदीप्तादिशियातुतत्रचेत्परुषोरवः ॥ संस्पृष्टाङ्गसमानेचतस्मिञ्छल्यंविनिर्दिशेत् ॥ ६९३ ॥ शिलाविन्यासकालेतुवासन्तेद्विरदादयः ॥ तस्मिस्तद्देहसंभूतमस्थिशल्यंविनिर्दिशेत् ॥ ६९४ ॥ कुब्जंवामनकंभिक्षुंवै द्यंरोगातुरानपि ॥ दर्शनंसूत्रकालेतुवर्जयेच्छ्रियमिच्छता ॥ ६९५ ॥ श्रुतौहुलहुलानाञ्चमेघानाङ्गर्जितेनच ॥ गर्जतामपिसिंहानांस्वनितं धनदम्भवेत् ॥ ६९६ ॥

शल्यको जानै और कुत्ता सृगाल सूत्रको लंघ जाय तोभी दुःखको जानै ॥ ९२ ॥ सूर्यसे प्रकाशित जो दिशा है उसमें कठोर शब्द होय तो जिस अंगसे सूत्रका स्पर्श होय उसके समान अंगमें शल्यको कहै ॥ ९३ ॥ शिलाके स्थापनके समयमें हस्ती आदि शब्द करैं तो उस वास्तुमें देहमें उत्पन्न हुए अस्थिमें शल्यको कहै ॥ ९४ ॥ कुब्ज वामन भिक्षु वैद्य रोगी सूत्र राखनेके समयमें इनके दर्शनको भी लक्ष्मीका अभिलाषी मनुष्य त्यागदे ॥ ९५ ॥ हुलहुल शब्दोंके सुननेपर और मेघके

गर्जनेपर और गर्जते हुए सिंहोंका जो शब्दहै ये सूत्र रखनेके समयमें होंय तो धनका दाता होताहै ॥ ९६ ॥ सूत्रके फैलानेके समयमें यदि जलती हुई अग्नि दीखै अथवा घोटक (घोडे) पर चढाहुआ पुरुष दीखै तो निष्कंटक राज्य होता है ॥ ९७ ॥ शंख और तूर्य्य आदिकोंका शब्द होय तो गृह वस्तुओंसे विपुल रहताहै और स्त्री और कन्याओंकी जो क्रीडाहै वह सूत्र रखनेके समयमें होय तो धनकी वृद्धि होती है ॥ ९८ ॥ और ये गृहके प्रारंभमें शुभहैं और गृहके छावनेमें मृत्यु और रोग को देतीहै और स्तंभ आदिके रखनेमें मध्यम और प्रवेशके समयमें होय तो उत्तम वृष्टि होतीहै ॥ ९९ ॥ काष्ठके छेदनमें

सूत्रेप्रसार्य्यमाणेतुदीप्तोग्निर्यदिदृश्यते ॥ पुरुषोघोटकारूढोभवेद्राज्यमकण्टकम् ॥ ६५७ ॥ शङ्खतूर्य्यादिनिर्घोषैवस्तुभिर्विपुलं गृहम् ॥ योषिताङ्कन्यकानाञ्चक्रीडनंवित्तवर्द्धनम् ॥ ६५८ ॥ प्रारम्भेचशुभागेहगोपनेमृत्युरोगदा ॥ स्तम्भाद्यारोपणे मध्याप्रवेशेवृष्टिरुत्तमा ॥६५९ ॥ दारूणाञ्छेदनेचैवदुःखशोकामयप्रदा ॥ परीक्षासमयेचैवनतुसौख्यप्रदास्मृता ॥ ६६० ॥ छत्रध्वजपताकानान्दर्शनेनिधिसम्भवः॥पूर्णकुम्भेतुसम्प्राप्तिः स्थैर्य्यङ्कलकलध्वनौ॥६६१॥गृहकोणेषुसर्वेषुपूजांकृत्वाविधानतः॥ईशानमादितः कृत्वाप्रादक्षिण्येनविन्यसेत् ॥ ६६२ ॥ अनेनैवविधानेनस्तम्भद्वारादिरोपणम् ॥ वास्तुविद्यैविधानन्तुकारयेत्सुसमाहितः ॥ ६६३ ॥

दुःख शोक रोगको देतीहैं और परीक्षाके समयमेंभी सुखदायी नहीं कहेहैं ॥ ६६० ॥ यदि सूत्र रखनेके समयमें छत्र ध्वजा पताकाओंका दर्शन होय तो निधि (खजाना) का संभव जानना. यदि घट जलसे पूर्ण रहे तो श्रेष्ठप्राप्ति और पूर्ण घट और कलकल शब्द होय तो स्थिरता होतीहै ॥ ६१ ॥ घरकी सबकोणोंमें विधिसे पूजाको करके ईशान दिशासे लेकर प्रदक्षिण क्रमसे सूत्रको रक्खै ॥ ६२ ॥ और इसी विधिसे स्तंभ और द्वारआदिका आरोपण करै और भली प्रकार, सावधा

नीसे वास्तुविद्याकी विधिको करै ॥ ६३ ॥ नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्ण नाम्नी जो क्रमसे शिला हैं उनमें नन्दामें पद्मको लिखैं और भद्रामें सिंहासनको ॥ ६४ ॥ जयामें तोरण, रिक्तामें छत्र और कर्मको करै और पूर्णामें चार भुजावाले विष्णुको यत्नसे स्थापन करै ॥ ६६५ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः०- इस मंत्रको पढकर सबका आवाहन कहाहै ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईशान और सदाशिव ॥ ६६ ॥ इन पांचों का आवाहन करै और पाचोंके स्थानमें फिर भूतोंका आवाहन करै फिर शास्त्रकी विधिमें देखेहुए कर्मसे

नन्दाभद्राजयारिक्तापूर्णानाम्नीयथाक्रमम् ॥ नन्दायाम्पद्ममालिख्यभद्रांसिंहासनन्तथा ॥ ६६४ ॥ जयायान्तोरणंछत्रंरिक्तायाङ्कर्म्ममेवच ॥ पूर्णायाञ्चचतुर्बाहुंविष्णुंसँल्लेखयेद्बुधः ॥ ६६५ ॥ ॐभूर्भुवः स्वरितितथासर्वानावाहनंस्मृतम् ॥ ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च ईशानश्चसदाशिवः ॥ ६६६ ॥ एतेपंचैवपञ्चेषुभूतानावाहयेत्पुनः ॥ स्नपनञ्चततः कुर्य्याद्विधिदृष्टेनकर्मणा ॥ ६६७ ॥ पञ्चभिः कलशैर्युक्तास्तासान्नामान्यतः शृणु ॥ पद्मञ्चैवमहापद्मंशंखञ्चविजयन्तथा ॥ ६६८ ॥ पंचमंसर्वतोभद्रम्मन्त्रेणावाहयेत्तुतम् ॥ अग्निर्मूर्द्धेतिचमृदायज्ञयज्ञेतिवारुणैः ॥ ६६९ ॥ अश्वत्थेतिकषायेणपल्लवेनजलेनच ॥ गायत्र्याचगवाम्मूत्रैर्गन्धद्वारेतिगोमयैः ॥६७०॥ आप्यायस्वेतिक्षीरेणदधिक्राव्णेतिवैदधि ॥ घृतवतींतिघृतेनचमधुवातेतिवैमधु ॥ ६७१ ॥

स्नान करावै ॥ ६७ ॥ और सावधान हुए ऋत्विज पांच कलशोंसे स्नान करावै. उनके नाम श्रवण करो, पद्म महापद्म शंख विजय ॥ ६८ ॥ और पांचमां सर्वतोभद्र होताहै मंत्रसे उनका आवाहन करै अग्निर्मूर्द्धा इस मंत्रको पढकर मट्टीसे यज्ञेनयज्ञ०- इस मंत्रसे जलको पढकर जलोंसे ॥ ६९ ॥ अश्वत्थ० -इस मंत्रसे पंच कषायोंसे और पत्तोंके जलसे गायत्रीको पढकर गोमूत्रसे गन्धद्वारां०- इस मंत्रको पढकर गोमयसे ॥ ६७० ॥ आप्यायस्व०- इस मंत्रको पढकर दुग्धसे और दधिक्राव्णः०- इस मंत्रको पढकर दधिसे, घृतंमि०—

इस मंत्रको पढकर, घृतसे मधुवाता०-इस मंत्रको पढकर, मधुसे ॥ ७१ ॥ पयः पृथिव्यां०-इस मंत्रको पढकर, पंचगव्यसे, देव स्यत्वा०-इस मंत्रको पढकर कुशाओंसे. काण्डात्काण्डात्०-इसमंत्रको पढकर, दूबसे ॥ ७२ ॥ गन्धद्वारो०-इस मंत्रको पढकर गंधसे और पंचगव्यसे और याओषधीः०-इस मंत्रसे औषधियोंसे और याःफलिनी०-इस मंत्रको पढकर फलके जलोंसे ॥ ॥ ७३ ॥ नमस्ते०-इस मंत्रको पढकर बैलके सींगकी मट्टीसे और धान्यमसि०-इस मंत्रको पढकर धान्यके जलोंसे और आजिघ्रकलशम्०-इस मंत्रसे कलशके जलोंसे ॥ ७४ ॥ ओषधयः०-इसमंत्रको पढकर अक्षतोंसे यवोसि०-इस मंत्रको पढकर जवके जलोंसे तिलोसि०-इस

पयः पृथिव्यामितिचपञ्चगव्येनसंस्नपेत् ॥ देवस्यत्वेतिचकुशैः काण्डात्काण्डाच्चदूर्वया ॥ ६७२ ॥ गन्धद्वारेतिगन्धेनपञ्चगव्येनवै तथा ॥ याओषधीरोषधीभिर्याः फलिनीतिफलोदकैः ॥ ६७३ ॥ नमस्तेतिवृषशृंगमृदाधान्यमसीतिच ॥ धान्यादीञ्जिघ्रमितिचक लशेनतथैवच ॥ ६७४ ॥ ओषधयइत्यक्षतैश्चयवोसीतियवोदकैः ॥ तिलोसीतितिलैः पंचनद्येतिचनदीजलैः ॥ ६७५ ॥ इमम्मेगङ्गे तिचतथातीर्थानामुदकेनच ॥ नमोस्तुरुद्रेभ्योमृदानगदंतिसमुद्भवात् ॥६७६॥ स्योनापृथिवीचमृदासीतायांमधुभिश्रवा ॥ हिरण्यगर्भ इतिवासुवर्णोदकसंभवैः ॥ ६७७॥ रूपेणेवेतिरौप्येणपदस्यायेतिवस्त्रजैः ॥ संस्नाप्यतीर्थपेयसाततः शुद्धोदकेनच ॥ ६७८ ॥

मंत्रको पढकर तिलोंसे और पंचनद्यः०-इस मंत्रको पढकर नदीके जलोंसे ॥ ६७५ ॥ इमंमे गङ्गे०-इस मंत्रको पढकर तीर्थके जलोंसे नमोस्तु रुद्रेभ्यः०-इसमंत्रको पढकर नग (पर्वत) और हास्तिशालाकी मट्टीसे स्नान करावै ॥ ७६ ॥ स्योनापृथिवि०-इसमंत्रको पढकर हलकी मट्टी सहतमिली मट्टीसे और हिरण्यगर्भ०-इस मंत्रको पढकर सुवर्णके जलोंसे स्नान करावै ॥ ७७ ॥ रूपेणेव०-इस मंत्रको पढकर चांदी के जलोंसे पदस्याय ० इस मंत्रको पढकर वस्त्रके जलोंसे और तीर्थके जलोंसे स्नान कराकर फिर शुद्ध जलोंसे स्नान करावै॥ ७८ ॥

फिर सफेद वस्त्रसे संमार्जन करके और सब अंगोंमें गंधका लेपन करिके फिर वास्तुमण्डलमें नाममंत्रोंसे ब्रह्माआदिका पूजन करै ॥ ७९ ॥ और वह पूजन षोडश उपचारोंसे करै और मूल मध्य शिरके ऊपर स्नान और अभिषेक वेदके मंत्रोंसे करावै ॥ ६८० ॥ आब्रह्मन्०भद्रंकर्णेभिः०–इन मंत्रोंको और जातवेदसे०–यमायत्वा०–इन मंत्रोंको पढकर नंदा भद्रा जया रिक्तासे स्नान करावै ॥ ८१ ॥ और पूर्णादर्वि०–इस मंत्रको पढकर पूर्णा शिलाको क्रमसे स्नान करावै मूल और मध्यमें तिसी प्रकार नामके मंत्रोंसे स्नानकरा

सम्मार्ज्यशुभ्रवस्त्रेणगन्धेनालिप्यसर्वतः ॥ ब्रह्मादीन्पूजयेत्तत्रनाममन्त्रेणवातथा ॥६७९॥ उपचारैः षोडशभिर्मूलमध्यशिरःस्वपि ॥ स्नप
नञ्चाभिषेकन्तुवेदमन्त्रैश्चकारयेत् ॥६८०॥ आब्रह्मन्निति नन्दायाभंद्रंकर्णेतिवैतथा ॥ जातवेदसेतितथायमायत्वेतिमन्त्रकैः ॥ ६८१ ॥
पूर्णादर्वीतिपूर्णायांक्रमेणापिसमाचरेत् ॥ मूलमध्येपिचतथानामभिर्मंतमंत्रकैः ॥ ६८२ ॥ ब्रह्मजज्ञानमितिचविष्णोरराटमेवच ॥ नम
स्तेरुद्रइतिचइमन्देवेतिसंजपेत् ॥ ६८३ ॥ शीर्षेचावाहनङ्कार्यन्तद्विष्णोःपरमम्पदम् ॥ इदंविष्णुर्विचक्रमेत्रेधानिदधेपदम् ॥
॥ ६८४ ॥ समरुध्येदेव्याधियाइतिचत्र्यम्बकंयजामहेतिच ॥ मूर्द्धानंदिवेत्यृचयासम्पूज्यचयथाविधि ॥ ६८५ ॥ तेभ्योहिरण्यंदत्वा
चवस्त्रालङ्कारवाससी ॥ ततस्तुपुण्यघोषेणशिलान्यासम्प्रकल्पयेत् ॥ ६८६ ॥ ततस्सुलग्नेसम्प्राप्तेपञ्चवाद्यानिवादयेत् ॥ नन्दा
म्प्रगृह्यचशिलान्तत्राधाराशिलान्न्यसेत् ॥ ६८७ ॥

वै ॥ ८२ ॥ और ब्रह्मजज्ञानं०–नमस्ते रुद्र०, विष्णोरराट०, इमंदेवा०–इन मंत्रोंको भलीप्रकार जपै ॥ ८३ ॥ और शिरके ऊपर तद्विष्णोः परमं पदम्०, इदंविष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्० इन मंत्रोंसे विष्णुका ॥ ८४ ॥ और समरुध्ये देव्याधियाः०–और त्र्यम्बकं यजामहे०–इस मंत्रसे शिवका आवाहन करै और मूर्द्धानंदिवो०–इस ऋचासे भलीप्रकार विधिसे पूजाकरके ॥६८५॥ और उनको सुवर्ण वस्त्र और अलंकार वस्त्रोंको देकर और पुण्यशब्दको करके शिलाके स्थापनको करै ॥ ८६ ॥ फिर श्रेष्ठ लग्नकी प्राप्तिके समयमे पांचप्रकारके वाद्योंको बजवावै

नंदानामकी शिलाको ग्रहण करकै आधार शिलाका स्थापन करै ॥ ८७ ॥ फिर उस शिलाके ऊपर मंत्रोंको पढकर ऐसे सातक लशोंको रक्खै जो सर्वौषधि जल पारा घी और सहत इनसे युक्तहो ॥ ८८ ॥ और जो ढके हुएहो और जिनमें रत्नपडाहु आहो और जो तेजके समूहसे युक्तहो और सदाशिवके स्वरूपका ध्यान करकै और पंचोपचारोंसे पूजनकर ॥ ८९ ॥ और वामें भागमें कियेहुये गर्तमें दीपकको रखकर उसके ऊपर नंदानामकी शिलाको रखदे ॥६९०॥ और नाभिर्मा० इस मंत्र और शिरो भव० इस मंत्रसे मंत्रका ज्ञाता तिसके अनंतर शास्त्रोक्त विधिसे प्रार्थनाकरै ॥ ९१ ॥ हेनन्दे तू पुरुषको आनंद देनेहारीहै मैं तेरा यहां स्थापन क

तत्रोपरिन्यसेत्सप्तकलशम्मन्त्रमन्त्रितम् ॥ सर्वौषधिजलोपेतम्पारदाज्यमधुप्लुतम् ॥ ६८८ ॥ पिहितंरत्नगर्भञ्चतेजोराशिभिरन्वितम् ॥ सदाशिवस्वरूपीचध्यात्वापञ्चोपचारकैः ॥ ६८९ ॥ सम्पूज्यदीपंविन्यस्यवामभागेथगर्तकैः ॥ ततोपरिन्यसेन्नन्दांसंपूज्यचयथा विधि ॥ ६९० ॥ नाभिर्मेतिचमन्त्रेणस्थिरोभवेतिवैतथा ॥ प्रार्थनञ्चततः कुर्यादागमोक्तेनमन्त्रवित् ॥ ६९१ ॥ नन्देत्वन्नन्दनी पुंसान्त्वामत्रस्थापयाम्यहम् ॥ प्रासादेतिष्ठसंहृष्टायावच्चन्द्रार्कतारकाः ॥ ६९२ ॥ आयुष्कामाञ्छ्रियंदेहिदेववासिनिनंदिनि ॥ अस्मि न्रक्षात्वयाकार्याप्रासादेयत्नतोमम ॥ ६९३ ॥ महापद्मंन्यसेत्तत्रपूजयेद्रत्नगर्भितम् ॥ तत्रभद्रांञ्चसंस्थाप्यपूजयेन्नाममंत्रकैः ॥ ६९४ ॥ भद्रंकर्णेतिऋचयास्थापयेद्वारुणैस्तथा ॥ भद्रेत्वंसर्वदाभद्रंलोकानांकुरुकाश्यपि ॥ ६९५ ॥ आयुर्दाकामदादेविसुखदाचसदाभव ॥ त्वामत्रस्थापयाम्यद्यगृहेस्मिन्भद्रदायिनि ॥ ६९६ ॥

रताहुं इस प्रासादमें प्रसन्नहुई तबतक टिक इतने चंद्रमा सूर्य तारागण है ॥ ९२ ॥ हेनंदिनि हेदेववासिनि आयु कामना और लक्ष्मीको दे और इस मेरे प्रासादमें यत्नसे रक्षा कर ॥ ९३ ॥ उसशिलापर रत्नहै गर्भमे जिसके ऐसे महापद्मको रक्खै और उस पद्मपर भद्रानामकी शिलाको रखकर नामके मंत्रोंसे पूजन करै ॥ ९४ ॥ अथवा भद्रंकर्णेभिः० इस ऋचासे वा वरुणके मंत्रों से स्थापन करै हे भद्रे हे काश्यपि ! तू सदैव लोकोंमें कल्याणकर ॥ ६९५ ॥ हेदेवि तू अवश्या कामना और सुखकी दाता स.

देव हो हेभद्रके देनेहारी तेरा इस घरमें आज स्थापन करताहुं ॥ ९६ ॥ आधारके ऊपर शंखनामके कलशको रखकर और कोण
में उसका विधिसे भलीप्रकार पूजन करकै फिर जया नामकी शिलाका भलीप्रकार पूजन करै ॥ ९७ ॥ गर्गगोत्रसे उत्पन्न त्रि
नेत्र और चतुर्भुजी सुंदरनेत्रवाली जयाका इस प्रासादमें आज मैं स्थापन करताहुं ॥ ९८ ॥ हेभार्गव तू सदैव गृहके स्वामी
की जय और भूतिके लिये हो जातवेदसे॰ इस और पूर्वोक्त मंत्रसे अभिमंत्रित ॥ ९९ ॥ विजयनामके कलशको आधारके ऊपर
रखकर फिर मंत्रका ज्ञाता इस मंत्रसे रिक्तानामकी शिलाका स्थापन करै ॥ ७०० ॥ कि त्र्यम्बकं यजामहे॰ इससे और वरुणके मं

आधारोपरिविन्यस्यकलशंशङ्खसंज्ञकम् ॥ कोणेसंपूज्यविधिवज्जयांसंस्थापयेत्ततः ॥ ६९७ ॥ गर्गगोत्रसमुद्भूतांत्रिनेत्रांश्चचतु
र्भुजाम् ॥ प्रासादेस्थापयाम्यद्यजयाञ्चारुविलोचनाम् ॥ ६९८ ॥ नित्यंजयायभूत्यैचस्वामिनोभवभार्गवि ॥ जातवेदसेतिमंत्रेणपू
र्वोक्तेनचमंत्रतः ॥ ६९९ ॥ आधारोपरिविन्यस्यविजयंकलशन्ततः ॥ रिक्तांसंस्थापयेत्तत्रमंत्रेणानेनमंत्रवित् ॥ ७०० ॥ त्र्यम्ब
कंयजामहेतितथावारुणमंत्रकैः ॥ स्थापयेत्प्रार्थयेत्तद्वद्रिक्तांरिक्तार्तिहारिणीम् ॥ ७०१ ॥ रिक्तेत्वंरिक्तदोषघ्नेसिद्धिभुक्तिप्रदेशुभे ॥
सर्वदासर्वदोषघ्नितिष्ठास्मिंस्तत्रनन्दिनि ॥ ७०२ ॥ आधारेविन्यसेन्मध्येसर्वतोभद्रसंज्ञकम् ॥ पूर्णरत्नान्वितंपुष्टंसर्वमंत्राभिमंत्रित
म् ॥ ७०३ ॥ ताञ्चसम्पूज्यविधिवद्ध्यात्वातत्रसदाशिवम् ॥ तत्रोपरिन्यसेत्पूर्णांपूर्णानन्दप्रदायिनीम् ॥ ७०४ ॥

त्रसे रिक्त (खाली) की हरनेहारी रिक्ताका स्थापन और प्रार्थना करै ॥ १ ॥ हे रिक्ते तू रिक्त (खाली) के दोषकी नाशक है और हे
शिवे सिद्धि और भुक्तिकी दाताहै हे सब दोषोंकी नाशक हेनंदिनि इस स्थानमें तू सर्वदा टिक ॥ २ ॥ आधारके विषै मध्यमें
पूर्ण रत्नोसे युक्त पुष्ट और संपूर्ण मंत्रोंसे अभिमंत्रित सर्वतोभद्र नामके कलशको रक्खै ॥ ३ ॥ और पूर्ण नामकी शिलाका पूजन
करकै और उसके ऊपर सदाशिवका ध्यान करकै उस कलशके ऊपर पूर्ण आनंदकी दाता पूर्ण नामकी शिलाको रक्खै ॥ ४ ॥

हे पूर्णे हे काश्यपि तू लोकोंको सदैव पूर्णकर और तू आयु कामना और हेदेवि धन और सुतकी दाताहो ॥ ५ ॥ और तू गृहकी आधार वास्तुरूपहै और वास्तुदीपकसे युक्तहै हे जगतप्रिये तेरे विना जगत्का आधार नही ॥ ६ ॥ पूर्णादर्वि० इस मंत्रसे और इमम्मे देव० इस मंत्रसे ॥ ७ ॥ और मूर्द्धानंदिव० इस मंत्रसे और शांतिके मंत्रोंसे और सहस्रशीर्षा० इन १६ मंत्रोंसे और अग्नि मीळे० इस मंत्रसे ॥ ८ ॥ और इषेत्वोर्जे० इस मंत्रसे अग्न आयाहि० इस मंत्रसे और वारम्वार सम्यक् देवी० इस मंत्रसे

पूर्णेत्वंसर्वदापूर्णालोकानाङ्कुरुकाश्यपि ॥ आयुर्दाकामदादेविधनदासुतदातथा ॥ ७०५ ॥ गृहाधारावास्तुमयीवास्तुदीपेनसंयुता ॥ त्वामृतेनास्तिजगतामाधारश्चजगत्प्रिये ॥ ७०६ ॥ पूर्णादर्वीतिमन्त्रेणइमंमेदेवेतिवैतथा ॥ ७०७ ॥ मूर्द्धानन्दिवेतिचतथाशान्तिमन्त्रैस्तथैवच ॥ सहस्रशीर्षेतिषोडशभिरग्निमीळेतिवैतथा ॥ ७०८ ॥ इषेत्वोर्जेत्यग्नआयाहीतितथापुनःपुनः ॥ शन्नोदेवीतिमंत्रेणस्थापयेत्प्रयतःशुचिः ॥ ७०९ ॥ मृदादिनादृढीकृत्यप्रादक्षिण्येनसर्वतः ॥ ईशानादिक्रमेणैवस्थाप्याःसर्वार्थसिद्धये ॥ ७१० ॥ आग्नेयाचैववर्णानामाग्नेयादिक्रमेणच ॥ सर्वेषामपिवर्णानाङ्केचिदिच्छन्तिसूरयः ॥ ७११ ॥ यान्तुदेवगणास्सर्वेपूजामादायपार्थिवीम् ॥ इष्टकामसमृद्ध्यर्थम्पुनरागमनायच ॥ १२ ॥ ततस्तुप्राङ्मुखोभूत्वाआचार्यायनिवेदयेत् ॥ दक्षिणाम्ब्राह्मणेतद्वद्यथावित्तानुसारतः ॥ ७१३ ॥

शुद्धहुवा यजमान आधार शिलाका स्थापन करै ॥ ९ ॥ और मिट्टी आदिसे दृढकरके प्रदक्षिण आदि संपूर्ण दिशाओंमें ईशानआदिके क्रमसे संपूर्ण अर्थकी सिद्धिके लिये अन्यशिलाओंकाभी स्थापनकरै ॥ ७१० ॥ और कोई पण्डित जन यह मानते हैं कि सब वर्णोंके मध्यमें आग्नेयी शिलाओंका आग्नेयआदि क्रमसे स्थापन करै ॥ ११ ॥ राजाकी पूजाको लेकर सब देवगण इष्टकी सिद्धि और फिर आगमनके लिये जावो ॥ १२ ॥ फिर पूर्वाभिमुख होकर यजमान पूजाकी सामग्री

आचार्यके निवेदन करै और तिसी प्रकार अपने धनके अनुसार ब्रह्माको दक्षिणा दे ॥ १३ ॥ उत्तराभिमुख बैठे हुए ब्रह्माको यह कहै कि क्षमाकरो सुवर्णसे युक्त और दो वस्त्रोंसे युक्त सवत्सा गौको ॥ १४ ॥ और यज्ञके अन्तमें धुलेहुए वस्त्रोंको आचार्यके अर्थ निवेदन करै फिर ज्योतिषी और स्थपति और वैणव इनका सन्तोष करिके ॥ ७१५ ॥ उनकोभी दक्षिणा दे और घृतमें अपने मुखकी छायाको देखै फिर रक्षाबन्धन मंत्रपाठ और त्र्यायुष करै अर्थात् स्रुवेसे भस्मको लगावै ॥ १६ ॥

उदङ्मुखायचततःक्षमस्वेतिपुनःपुनः ॥ गांसवत्सांस्वर्णयुतांतथावासोयुगान्विताम् ॥ ७१४ ॥ यज्ञान्तेआप्लुतान्वस्त्रानाचार्यायनिवेदयेत् ॥ दैवज्ञञ्चततस्तोष्यस्थपतीन्वैष्णवानपि ॥ ७१५ ॥ दक्षिणाञ्चतयोर्दद्याद्घृतंच्छायांविलोकयेत् ॥ रक्षावन्धोमंत्रपाठ त्र्यायुपञ्चसमाचरेत् ॥ ७१६ ॥ ऋत्विग्भ्योदक्षिणान्दद्याच्छिष्टेभ्यश्चस्वशक्तितः ॥ दीनान्धकृपणेभ्यश्चदद्याद्वित्तानुसारतः ॥ ७१७ ॥ शिल्पिवर्गास्तुसन्तोष्यदानमानैस्तथैवच ॥ ७१८ ॥ सम्प्राप्नोतिनरोलक्ष्मींपुत्रपौत्रधनान्विताम् ॥ ७१९ ॥ इतिशिलान्यासेपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ अथातःसंप्रवक्ष्यामिप्रासादानांविधानकम् ॥ देवोरुद्रस्तथाविष्णुर्ब्रह्माद्यास्सुरसत्तमाः ॥ ७२० ॥ प्रतिष्ठाप्याःशुभेस्थानेअन्यथातेभयावहाः ॥ गर्तादिलक्षणाधात्रीगन्धस्वादेनयाभवेत् ॥ ७२१ ॥

और अपनी शक्तिके अनुसार ऋत्विज और शिष्टोंको दक्षिणा दे और अपने धनके अनुसार दीन अन्ध और कृपणोंकोंभी कुछ दे ॥ १७ ॥ और दान मानसे शिल्पियोंका जो वर्गहै उनके भी सन्तोषको करकै ॥ १८ ॥ मनुष्य पुत्रपौत्रोंसे युक्त लक्ष्मी को प्राप्त होताहै ॥ ७१९ ॥ इति शिलान्यासे पं०मिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतिसहिते पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर प्रासादोंकी विधिको कहताहुं रुद्रदेवता और विष्णु देवता और देवताओंमें उत्तम ब्रह्मा आदि ॥ ७२० ॥ इनका शुभस्थानमें स्थापन

करना योग्य है अन्यथा ये भयके दाता होतेहैं गर्तआदिका चिन्ह जिसमें हो और जिसका गन्ध और स्वाद श्रेष्ठ हो वह पृथिवी ॥ २१ ॥ और जिसका वर्ण श्रेष्ठ हो वह पृथिवी सब कामनाओंकी दाता होतीहै और अपने पितामहसे पूर्वके जो आठ कुलहैं ॥ २२ ॥ अपने सहित उन सबको विष्णुका मन्दिर बनवानेवाला तारताहै और जो हमारे कुलमें कोई विष्णुका भक्त हो ॥ २३ ॥ ऐसा और हम विष्णुका मंदिर बनवावैंगे ऐसा जो सदैव भक्तिसे ध्यान करतेहैं उनकेभी पूर्व लोकका १०० सौ जन्मोंका किया पाप नष्ट होताहै ॥ २४ ॥ भोद्विजेन्द्रोंहो देवताके मंदिरमें जितने परमाणु होतेहैं उतने

वर्णेनचसुरश्रेष्ठसामहीसर्वकामदा ॥ पितामहस्यपुरतः कुलान्यष्टौतुयानितु ॥ ७२२ ॥ तारयेदात्मनासार्द्धंविष्णोर्मन्दिरकारकः ॥ अपिनः सत्कुलेकश्चिद्विष्णुभक्तोभविष्यति ॥ ७२३ ॥ येध्यायंतिसदाभक्त्याकरिष्यामोहरेर्गृहम् ॥ तेषांविलीयतेपापंपूर्वजन्मशतोद्भवम् ॥ ७२४ ॥ सुरवेश्मनियावन्तोद्विजेन्द्राः परमाणवः ॥ तावद्वर्षसहस्राणिस्वर्गलोकेमहीयते ॥ ७२५ ॥ प्रासादेमृन्मये पुण्यंमयैतत्कथितम्पुरा ॥ तस्माद्दशगुणंपुण्यंकृतेशैलमयेभवेत् ॥ ७२६ ॥ ततोदशगुणंलौहेताम्रेशतगुणंततः ॥ सहस्रगुणितंरौप्येतस्माद्रौक्मेसहस्रकम् ॥ ७२७ ॥ अनन्तंफलमाप्नोतिरत्नचित्रेमनोहरे ॥ कनिष्ठंमध्यमंश्रेष्ठंकारयित्वाहरेर्गृहम् ॥ ७२८ ॥

सहस्रवर्षपर्यन्त कर्ता स्वर्गलोकमें वसताहै ॥ ७२५ ॥ जो यह मैंने पुण्य कहा वह मिट्टीसे बनाये हुए मंदिरमें होता है और उससे दश गुणा पुण्य पत्थरसे बनाये हुएमें होताहै ॥ २६ ॥ और उससेभी दशगुणा लोहेसे बनायेमें और उससेभी सौ १०० गुणा तामेसे बनाये हुएमें और उससेभी हजार गुणा चांदीके और उससेभी हजार गुणा सुवर्णके मंदिरमें होताहै ॥ २७ ॥ और रत्नोंसे जडित मनोहर (रमणीय) मन्दिरके बनानेसे अनन्त फल होताहै कनिष्ठ मध्यम और श्रेष्ठ

विष्णुके मंदिर बनानेसे ॥ २८ ॥ स्वर्गलोक विष्णुलोक और मोक्षको प्राप्त होताहै और बाल्य अवस्थामें पांसु (धूलि) से खेलते हुए बालक जो वासुदेव हरिके भवनको ॥ २९ ॥ करतेहैं वेभी विष्णु लोकमें जातेहैं जो भूमि घरके बनानेमें श्रेष्ठहै वही प्रासादकी भूमिमेंभी श्रेष्ठहै ॥ ७३० ॥ और जो विधि घरके बनानेमें और शिलाके स्थापन करनेमें है वही प्रासाद आदिमेंभी जाननी और चार ४ शिला ॥ ३१ ॥ नन्दा भद्रा जया पूर्णा नामकी आग्नेय आदि दिशाओंमे

स्वर्गञ्चवैष्णवंलोकंमोक्षञ्चलभतेक्रमात् ॥ बाल्येचक्रीडमानायेपांसुभिर्भवनंहरेः ॥ ७२९ ॥ वासुदेवस्यकुर्वन्तितेपितल्लोकगामिनः ॥ याभूमिः शस्यतेगेहेसाप्रासादविधौतथा ॥ ७३० ॥ योविधिर्गृहनिर्माणेशिलान्यासस्यकर्मणि ॥ प्रासादादिषुसज्ञेयश्चतस्रस्तुशिलास्तथा ॥ ७३१ ॥ नन्दाभद्राजयापूर्णाआग्नेयादिषुविन्यसेत् ॥ चतुष्षष्टिपदोवास्तुप्रासादादिषुविन्यसेत् ॥ ७३२ ॥ ब्रह्माचतुष्पदोह्यत्रशेषाःस्वस्वपदेस्थिताः ॥ वास्तुपूजाविधिश्चात्रगृहस्थापनकर्मवत् ॥ ७३३ ॥ सम्पूज्यवास्तुंविधिवच्छिलान्यासंततश्चरेत् ॥ आदावेवसमासेनशिलालक्षणमुत्तमम् ॥ ७३४ ॥ शिलान्यासविधानन्तुप्रोच्यतेतदनन्तरम् ॥ शिलावापीष्टकावापिचतस्रोलक्षणान्विताः ॥ ७३५ ॥ प्रासादादौविधानेनन्यस्तव्याः सुमनोहराः ॥ चतुरस्राः समाः कृत्वासमन्ताद्धस्तसम्मिताः ॥ ७३६ ॥

प्रासादमेंभी स्थापन करै और प्रासाद आदिमें वास्तु चतुःषष्टि (६४) पदका होताहै ॥ ३२ ॥ और चतुःषष्टिपद वास्तुमें ब्रह्मा चतुष्पद होताहै और शेषदेवता अपने अपने पदमें स्थित होते हैं और इसमें वास्तु पूजाकी विधि गृहस्थापन कर्मके तुल्य होती है ॥ ३३ ॥ विधिसे वास्तुका भलीप्रकार पूजन करके फिर शिलाका स्थापन करै प्रथम संक्षेपसे शिलाका उत्तम लक्षण देखै ॥ ३४ ॥ उसके अनन्तर शिला स्थापनविधिको कहतेहैं शिला हो वा ईंट हो चारों लक्षणसे युक्त ॥ ७३५ ॥ और भलीप्रकार मनोहर

और समान और चारों तरफसे हाथभर बनवाकर प्रासादआदिमें विधिसे ॥ ३६ ॥ विस्तारके विभाग और बाहुल्यके तुल्य शिला और ईंटोंका प्रमाण और लक्षण कहाहै ॥ ३७ ॥ नंदाआदि शिलाओंके अधिष्ठान (नींचे) की शिला अथवा ईंट जाननी और शिलाओंके रूपको जानना और नंदा आदि इष्टका कहीहै ॥ ३८ ॥ संपूर्ण शिलाओंका तल श्रेष्ठ हो और सब चिकनी समान लक्षणोंसे युक्त होंय और सब कुशा और पूर्वसे चिह्नित ध्वजा छत्र चमरसे युक्त होय तो धन्य होतीहै ॥ ३९ ॥

विस्तारस्यत्रिभागेनबाहुल्येनसुसम्मिताः ॥ शिलानामिष्टकानाञ्चप्रमाणंलक्षणंस्मृतम् ॥ ७३७ ॥ नन्दाद्यधिष्ठिताज्ञेयाशिलावाप्यथ वेष्टका॥शिलारूपाण्यथोविन्द्यान्नन्दाद्याश्चेष्टकाः स्मृताः ॥७३८॥ सम्पूर्णाःसुतलाःस्निग्धाःसुसमालक्षणान्विताः ॥ कुशदूर्वाङ्किताधन्याः सध्वजछत्रचामराः ॥ ७३९ ॥ सकुशास्तरणोपेताः कूर्ममत्स्यफलान्विताः ॥ दर्पणंहस्तिवज्राङ्काप्रशस्तद्रव्यलाञ्छिताः ॥७४०॥ शस्तपक्षिमृगाङ्काश्चवृषाङ्कास्सर्वदाहिताः ॥ स्वस्तिकावेदिकायुक्तानन्दावर्ताङ्कलाञ्छिताः ॥ ७४१ ॥ पद्मादिलक्षणोपेताः शिलाः सर्वार्थसिद्धिदाः ॥ तथागोवाजिपादाङ्काः शिलाधन्याः सुखावहाः ॥ ७४२ ॥ क्रव्यादमृगपादाङ्का नशस्ताःपक्षिणस्तथा ॥ दिङ्मुखाबहुदीनाश्च दीर्घह्रस्वाःक्षतान्विताः ॥ ७४३ ॥

और कुशाके आस्तरणसे युक्त कूर्म्म मत्स्य और फलसे युक्त और जिनमें दर्पण वज्र और हस्ती इनका चिह्न अथवा श्रेष्ठ द्रव्यका चिह्न हो ॥ ७४० ॥ और जिनमें श्रेष्ठपक्षी और मृगका चिह्नहोय अथवा वृषका चिह्नहोय वे सब कालमें स्थितहैं स्वस्तिक (सथिया) और वेदीसे युक्त और नंदावर्तके चिह्नसे युक्त ॥ ४१ ॥ पद्मआदि लक्षणोंसे युक्त शिला संपूर्ण अर्थकी सिद्धिको देतीहैं और तिसी प्रकार गौ और अश्वके चरणका जिसमें चिह्नहो ऐसी शिला सुखकी दाता होतीहै ॥ ४२ ॥ मांसभक्षक पक्षी मृग इनके

चरणोंसे चिह्नित और पक्षियोंसे चिह्नित दिङ्मुख और बहुत दीन और दीर्घ ह्रस्व फटी शिला श्रेष्ठ नहीं होती ॥ ४३ ॥ विरुद्ध व
र्ण फटी और टूटी और लक्षणोंसे हीन शिला त्यागनेके योग्य है और जिनमें श्रेष्ठ प्राणियोंके रूपका वा उत्तम द्रव्यका चिह्न हो
॥ ४४ ॥ और जो शास्त्रमें उक्त लक्षणोंसे युक्त हों ऐसी शिला सदैव सुखदायी होती है अब संक्षेपसे ईंटोंके लक्षणोंको सुनो ॥ ७४५ ॥
जो एकवर्णकी हो और भलीप्रकार पकी हो वे श्रेष्ठ होतीहैं और जो अत्यन्त जीर्ण अर्थात पुरानी वा भुरभुरीहो वे वर्जितहैं और अंगा
रोंसे युक्त (जली) और कृष्ण वर्णकी और कंकरों सहित ईंट हों वे श्रेष्ठ नहीं होती ॥ ४६ ॥ और भग्न विभ्रमसे हीन (ऊंची नीची)

विवर्णाःस्फुटिताभग्नाः संत्याज्यालक्षणच्युताः ॥ प्रशस्तप्राणिरूपाङ्काः प्रशस्तद्रव्यलांछिताः ॥ ७४४ ॥ यथोक्तलक्षणोपेताः शिला नित्यंसुखावहाः ॥ इष्टकानांसमासेनलक्षणंशृणुसाम्प्रतम् ॥ ७४५ ॥ एकवर्णाःसुपक्काश्चबहुजीर्णाश्चवर्जिताः ॥ अप्यङ्गारान्विता नेष्टाःकृष्णवर्णाः सशर्कराः ॥ ७४६ ॥ भग्नाश्चविभ्रमाहीनावर्ज्जनीयाःप्रयत्नतः ॥ सुप्रमाणारक्तवर्णाश्चतुरस्रामनोरमाः ॥ ७४७ ॥ नन्दाद्यागृहमानेनअङ्गुलैः परिकल्पिताः ॥ शिलान्यासः प्रकर्तव्यःप्रासादेतुशिलामये ॥ ७४८ ॥ इष्टकानान्तुविन्यासः प्रासादे चेष्टकामये ॥ तस्याः पीठम्प्रकुर्वीततावदेवप्रमाणतः ॥ ७४९ ॥ आधारनामातुशिलासुदृढासुमनोहरा ॥ शैलजेशैलजः पीठंश्चे ष्टकेचैष्टकः स्मृतः ॥ ७५० ॥

वेभी यत्नसे वर्जन योग्यहैं और श्रेष्ठप्रमाण सहित रक्तवर्णकी चतुरस्र (चकोर) और मनोरम ईंट श्रेष्ठ होती हैं ॥४७॥ नंदा आदि शिला
गृहके मानके अनुसार अंगुलोंसे युक्त होनी चाहिये और शिलाओंसे बनेहुये प्रासादमें शिलाओंका न्यास करना ॥ ४८ ॥ और ईंटोंसे
बने हुये प्रासादमें ईंटोंका विन्यास (लगाना) और उतनेही प्रमाणसे उसके जो पीठ वहभी करवाना ॥ ४९ ॥ और आधार
नामकी जो शिलाहैं वह भलीप्रकार दृढ और अच्छी मनोहर हों शैलके मंदिरमें शैलका और ईंटकेमें ईंटका पीठ कहाहै ॥ ७५० ॥

शिलाओंका न्यास आदि जो हैं उसको भद्रनामके मंदिर में मूलपाद कहतेहैं चार वेदियोंसे युक्त गर्तोंको चारों कोणमें बनवा कर ॥ ९१ ॥ उनके ऊपर शुक्ल तण्डुलोंका पूरणकरै और आग्नेयआदि क्रमसे उनके स्थानोंकी कल्पना करै ॥ ९२ ॥ और वहां आधारशिलाको रखकर और स्थिरो भव० इस मंत्रसे उसकी प्रतिष्ठा करके और चारों कोणोंमें शिलाओंको रखकर ॥ ९३ ॥ उनके मध्यमें और उनके रखनेके क्रमसे कलशका स्थापन करै और पद्म महापद्म शंख और मकर ॥ ९४ ॥ ये सुंदर चार कलश मंत्रोंसे

शिलान्यासादिकोभद्रेमूलपादोविधीयते ॥ गर्तान्विधायकोणेषुचतुर्वेदिसमन्वितान् ॥ ७९१ ॥ तत्रोपरिचशुक्लानांतण्डुलानाञ्चपूरणम् ॥ आग्नेयादिक्रमेणैवतासांस्थानानिकल्पयेत् ॥ ७९२ ॥ तत्राधारशिलान्यस्यस्थिरोभवतिमन्त्रतः ॥ प्रतिष्ठाप्यचतुर्ष्वेवकोणेषुचनिधायच ॥ ७९३ ॥ तेषांक्रमेणतन्मध्येकलशंस्थापयेत्क्रमात् ॥ पद्मश्चैवमहापद्मः शङ्खोमकरकस्तथा ॥ ७९४ ॥ चत्वारःकलशाह्येतेदिव्यामंत्रेणमंत्रिताः ॥ पल्लवैस्सर्वगन्धैश्चसर्वौषधिभिरन्विताः ॥ ७९५ ॥ रत्नैःसमुद्रजैर्युक्ताश्चाष्टधातुभिरन्विताः ॥ पुण्यतीर्थोदकैर्युक्ताः कृत्वोदुम्बरसंभवाः ॥ ७९६ ॥ तत्रोपरिन्यसेन्नन्दांसुलग्नेचशुभेदिने ॥ संस्नाप्यंपूर्णतोयेनास्त्रायफडितिमन्त्रतः ॥७९७॥ पुनः स्नात्वाथमन्त्रेणसंमार्ज्यपरिपूरयेत् ॥ ॐनन्दायैनमः गन्धादिउपचारान्प्रदापयेत् ॥ ७९८ ॥

अभिमंत्रित और पंचपल्लव पंचगंध और सर्वौषधिसे युक्तहो ॥ ७९५ ॥ समुद्रसे पैदाहुए रत्न और श्रेष्ठधातुओंसे और पवित्र तीर्थोंके जलोंसे युक्तहों और गूलरके पत्ते भी उनमें हों ॥ ९६ ॥ उन कलशोंके ऊपर शुभदिन और शुभ लग्नमें नंदानामकी शिलाका स्थापन करै और पूर्णजलसे अस्त्राय फट्० इस मंत्र को पढ़कर और स्नान कराकर ॥ ७९७ ॥ फिर स्नान करके और मंत्रसे संमार्जन करके चारोंतरफसे पूर्ण करदे ॐनंदायैनमः इसमंत्रको पढ करके गन्ध आदि पूजाकी सामग्रियोंको चढावै ॥ ९८ ॥

102

गीत वादित्रके शब्द और वेदकी ध्वनिसे युक्त पूर्व और उत्तरको है शिर जिनका ऐसी उस शिलाका शुद्ध होकर स्थापन करै ॥ ५९ ॥ फिर अस्त्रके जलको लेकर अस्त्रायफट् इसको पढकर फिर पूजन करै और सुन्दर रूपवाली सुवर्णकीसी जिसकी कान्ति संपूर्ण आभूषणोंसे सुशोभित समस्त उत्तम लक्षणोंसे युक्त प्रसन्नहुई और कुछ हँसतासा है मुख जिसका ॥ ७६० ॥ ऐसी उस शिला का ध्यान करै और उसी शिलाके मंत्रको उच्चारण करके वारम्वार नमस्कार करै ॥ ६१ ॥ फिर वेद और शास्त्रोंके मंत्रसे नंदानाम

गीतवादित्रंघोषेणवेदध्वनियुतेनच ॥ प्रागुत्तरशिरस्कान्तांस्थापयेत्प्रयतःशुचिः ॥ ७५९ ॥ ततोस्त्रतोयंसंगृह्यफडितिपूजयेत्पुनः ॥ दिव्यरूपांसुवर्णाभांसर्वाभरणभूषिताम् ॥ सर्वलक्षणसंपूर्णापरितुष्टांस्मिताननाम् ॥ ७६० ॥ ध्यात्वास्वमंत्रमुच्चार्यप्रणम्यचपुनः पुनः ॥ ७६१ ॥ आवाहयेत्ततोनन्दांमन्त्रैर्वैदिकतान्त्रिकैः ॥ संपूजयेत्पुनस्तांश्चवस्त्रगन्धादिनाततः ॥ ७६२ ॥ धूप यित्वाथसामान्यमुद्रांबद्धाथमंत्रवित् ॥ कल्पयेच्चैवनैवेद्यंदधिमांसादिसंयुतम् ॥ ७६३ ॥ नन्दायैनमएह्येहिपूजयेच्छुद्धमानसः ॥ ॐनन्देत्वंनन्दिनीपुंसांत्वामत्रस्थापयाम्यहम् ॥ ७६४ ॥ प्रासादेतिष्ठसंहृष्टायावद्वैचन्द्रतारकम् ॥ आयुष्कामंश्रियन्नन्देददा सित्वंसदानृणाम् ॥ ७६५ ॥

की शिलाका आवाहनकरै और उसका वस्त्र गन्ध आदिसे पूजन करै ॥ ६२ ॥ और अष्टगंध आदिकी धूपको देकर मंत्रके जाननेवाला सामान्य मुद्रा (बद्धांजलि) से दधि मांस आदि सहित नैवेद्यका ॥ ६३ ॥ अर्पण करै नन्दानामकी शिलाको नमस्कारहै तू यहां आ कर प्राप्तहो २ ऐसा कहकर शुद्धमनसे पूजन करै हे नन्दे! तू मनुष्योंको आनन्दके देनेवालीहै तेरा इस जगह स्थापन करताहूं ॥ ६४ ॥ तू इस प्रासादमें जबतक चंद्रमा और तारागण हैं तबतक स्थिर रहिये और जिससे तू मनुष्योंको सदैव अवस्था वांछित फल

और लक्ष्मीको देतीहै ॥ ७६५ ॥ इससे तू इस प्रासादकी रक्षा यत्नसे सदैव रख ये इनही मंत्रोंसे फिर आग्नेयीदिशामें उसका स्थापन करै ॥ ६६ ॥ फिर उसीप्रकार नाममंत्र (भद्रायै नमः) से भद्रा शिलाका पूजन करै और हेभद्रे ! हेकाश्यपकी पुत्रि तू लोकोंको सदा भद्र (कल्याण) कर ॥ ६७ ॥ हेदेवि ! तू लोकोंको अवस्था कामना और सिद्धिके देनेवाली है इस प्रकार मंत्रको पढकर नैर्ऋतदिशामें स्थापनकरै और उसके अनंतर तिसीप्रकार जया शिलाका ॥ ६८ ॥ नाममंत्र और पूर्व कहेहुए मंत्रोंसे नैवेद्यआदिका अर्पण और पूजन करके हेजये ! तू सदा कल्याणरूप है तुझे स्थापन करताहूं स्थिर सदा रहिये ॥ ६९ ॥

अस्मिन्रक्षात्वयाकार्याप्रासादेयत्नतः सदा ॥ इतिमंत्रंसमुच्चार्यआग्नेयेतुततः परम् ॥ ७६६ ॥ भद्रांसंपूजयेत्तद्वन्नाममन्त्रेणपूर्ववत् ॥ भद्रेत्वंसर्वदाभद्रंलोकानांकुरुकाश्यपि ॥ ७६७ ॥ आयुष्कामप्रदादेविलोकानांचैवसिद्धिदा ॥ नैर्ऋत्येस्थापयेत्तांचजयान्तद्वत्प्रपूजयेत् ॥ ७६८ ॥ नाममन्त्रेणपूर्वोक्तमन्त्रेणचतथापुनः ॥ ॐजयेत्वंसर्वदाभद्रेसन्तिष्ठस्थापयाम्यहम् ॥ ७६९ ॥ नित्यंजयावहादिव्यास्वामिनः शीघ्रदाभव ॥ वायव्येस्थापयेत्तांचजयांसर्वार्थसिद्धये ॥ ७७० ॥ ईशानेस्थापयेत्पूर्णांपूर्ववत्संप्रपूज्यच ॥ ॐपूर्णेत्वंतुमहाविद्येसर्वसंदोहलक्षणे ॥ ७७१ ॥ संपूर्णंसर्वमेवात्रप्रासादेकुरुसर्वदा ॥ शिलानामिष्टकानांतुवाचनंतदनंतरम् ॥ ७७२ ॥ नकर्तव्यन्तुमनसापितुस्तुशुभमिच्छता ॥ आचार्यायचगांदद्यात्सवत्सांहेमसंयुताम् ॥ ७७३ ॥

और अपने स्वामिको सदैव शीघ्र जयके देनेवाली हो इस मंत्रको पढकर उस जया नामकी शिलाको सब अर्थोंकी सिद्धिकेलिये वायव्यदिशामें स्थापन करै ॥ ७७० ॥ और पूर्वकी समान पूजन करके हे पूर्णे ! तू महाविद्यारूप है संपूर्ण कामनाओंको देनेवाला तेरा स्वरूप है ॥ ७१ ॥ इस प्रासादमें सब कार्यको संपूर्णकर इसमंत्रसे ईशानमें स्थापन करै फिर उसके पीछे घरके स्वामीके शुभकी इच्छा करनेवाला पुरुष शिला और इष्टिकाओंके स्तुतिवाक्योंको पढै ॥ और बछडा सुवर्ण सहित गौको

आचार्यके लियेदे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ और अपनी शक्तिके अनुसार ऋत्विज और शिष्टजनोंको दक्षिणादे और ज्योतिषी और स्थपतिका विशेषकर पूजन करै ॥ ७४ ॥ ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन करावै और दीन और अन्धोंको अन्न आदि देकर प्रसन्नकरै इस प्रकार वास्तुबलिको करके षोडशभागको लेकर ॥ ७५ ॥ उसके मध्यमें चार भागके उसमें गर्भको करै और १२ ॥ साढेबारह भाग उसके चारोंतरफ कल्पना करै ॥ ७६ ॥ और स्थानके चौथाई भागके प्रमाणसे भित्तियोंकी ऊंचाईका प्रमाण रक्खै और

ऋत्विग्भ्योदक्षिणान्दद्याच्छिष्टेभ्यश्चस्वशक्तितः ॥ दैवज्ञंपूजयेच्छक्त्यास्थपतिञ्चविशेषतः ॥ ७७४ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्यादीनान्धांश्चैवतोषयेत् ॥ एवंवास्तुबलिङ्कृत्वाभजेत्षोडशभागिकाम् ॥ ७७५ ॥ तस्यमध्येचतुर्भागन्तस्मिन्गर्भञ्चकारयेत् ॥ भागद्वादशकंसार्द्धंततस्तुपरिकल्पयेत् ॥ ७७६ ॥ चतुर्भागेनभित्तीनामुच्छ्रायः स्यात्प्रमाणतः ॥ द्विगुणः शिखरोच्छ्रायोभित्त्युच्छ्रायाच्चमानतः ॥ ७७७ ॥ शिरोर्द्धास्यचार्द्धार्द्धेनविधेयातुप्रदक्षिणा ॥ चतुर्दिक्षुतथाज्ञेयोनिर्गमेषुतथाबुधैः ॥ ७७८ ॥ गर्भसूत्रद्वयंभागेविस्तारेमण्डपस्यतु ॥ आयस्तस्थविभागांशैर्भद्रयुक्तः सुशोभनः ॥ पंचभागेनसंभज्यगर्भमानंविचक्षणः ॥ ७७९ ॥ भागमेकंगृहीत्वातुप्राग्जीवङ्कल्पयेद्बुधः ॥ गर्भसूत्रसमोभागादग्रतोमुखमंडपः ॥ एतत्सामान्यमुद्दिष्टंप्रासादस्येहलक्षणम् ॥ ७८० ॥

भित्तियोंके ऊंचाईसे दुगुने प्रमाण कितनी शिखरोंकी ऊंचाई रक्खै ॥ ७७ ॥ और शिरके आठमें भागसे प्रदक्षिणा बनवानी और चारोंदिशाओंमें जो निर्गमके स्थानहैं उनमें वह प्रदक्षिणा जाननी ॥ ७८ ॥ भागके दो गर्भ सूत्रमण्डपके विस्तारमें होतेहैं उनका आयविभागके अंशोंसे भद्रसे युक्त और अत्यंत शोभन होताहै गर्भके मानको पाचमें भागसे बुद्धिमान् मनुष्य विभाग करके ॥ ७९ ॥ उनमेंसे एकभाग ग्रहण करके बुद्धिमान् मनुष्य प्राग्जीव (द्वार) की कल्पना करै और भागोंमें गर्भरूपके समान उसके आगे मुखमण्डप होताहै इस ग्रंथमें यह

प्रासादका सामान्य लक्षण कहा ॥ ७८० ॥ इसके अनन्तर और भी लिंग और प्रासादके लक्षणको कहताहूं लिंग पूजाके प्रमाणसे पीठिका बनवावै ॥ ८१ ॥ पीठिकाके आधेभागके प्रमाणसे भित्ति बनवानी और बाहिरकी भित्तिके प्रमाणसे ऊंचाई होतीहै ॥ ८२ ॥ और भित्तिके ऊंचाईसे दूनी शिखरकी ऊंचाई होतीहै और शिखरसे चौथे भागोंकी प्रदक्षिणा बनवानी ॥ ८३ ॥ और प्रदक्षिणाके समान आगेका मण्डप होताहै और उससे आधा अग्रभागमें मुखमण्डप बनवाना ॥ ८४ ॥ और प्रासादसे निकसतेहुये

अथान्यच्चप्रवक्ष्यामिप्रासादंलिङ्गमानतः ॥ लिङ्गपूजाप्रमाणेनकर्तव्यापीठिकाबुधैः ॥७८१॥ पीठिकार्द्धेनभागेस्यात्तन्मानेनतुभित्तयः॥ बाह्यभित्तिप्रमाणेनउत्सेधस्तुभवेत्ततः ॥ ७८२ ॥ भित्त्युच्छ्रायात्तुद्विगुणः शिखरस्यसमुच्छ्रयः ॥ शिखरस्यचतुर्भागाःकर्तव्यास्स्युः प्रदक्षिणाः ॥ ७८३ ॥ प्रदक्षिणायास्तुसमस्त्वग्रतोमण्डपोभवेत् ॥ तस्यचार्द्धेनकर्तव्यस्त्वग्रतोमुखमण्डपः ॥ ७८४ ॥ प्रासादान्निर्गतौकार्यौकपोतौगर्भमानतः ॥ ऊर्द्ध्वम्भित्त्युच्छ्रयास्तस्यमंजरीन्तुप्रकल्पयेत् ॥ ७८५ ॥ मंजर्याःसार्द्धमानेनशुकनासंप्रकल्पयेत् ॥ ऊर्द्ध्वन्तथार्द्धभागेनवेदीबन्धोभवेदिह ॥ ७८६ ॥ वेद्याश्चोपरियच्छेषङ्कण्ठमामलसारकम् ॥ एवंविभज्यप्रासादंशोभनङ्कारयेद्बुधः ॥ ७८७ ॥ अथान्यच्चप्रवक्ष्यामिप्रासादस्येहलक्षणम् ॥ गर्भप्रमाणेनप्रासादप्रमाणंशृणुतद्विजाः ॥ ७८८ ॥

गर्भके प्रमाणसे दो कपोत बनवाने और वे ऊपर को भित्तिके समान ऊंचहो और उनकी मंजरीभी बनवानी ॥ ७८५ ॥ और मंजरीभी प्रमाणसे डेढगुणी शुकनासिकाको बनवावै और उसके ऊपर उससे आधा वेदीबंध होताहै ॥ ८६ ॥ और वेदीके ऊपर जो शेष कण्ठ है वह आमलकसार कहाताहै इस प्रकार विभाग करके बुद्धिमान् मनुष्य शोभन प्रासादको बनवावै ॥ ८७ ॥ इसके अनंतर औरभी प्रासादका लक्षण हम कहते हैं; हे द्विजो ! गर्भोंके प्रमाणसे उस प्रासादके प्रमाणको तुम सुनो ॥८८॥

९ नौभागमें प्रासादके गर्भको अर्थात् मध्यकी संपूर्ण भूमिको विभाग करिके मंदिरके सुंदर ८ आठ पादोंकी चारों तरफ पीठिकाकी कल्पना करै ॥ ८९ ॥ इसी मानसे भित्तियोंका विस्तार कहाहै और एक पादको पांच गुणा करिके भित्तियोंकी ऊंचाई होती है ॥ ७९० ॥ और वही दूनी शिरकी ऊँचाई होतीहै शिखरकी चौथाई अथवा दो भागका जो अर्ध भाग उसके प्रमाणकी ॥ ९१ ॥ शुकनासिकाको बनवावै और तीसरे भागकी वेदिका कहीहै और अमलसार नामका जो कण्ठ है वह चौथे भागका बन

विभज्यनवधागर्भमध्येलिङ्गस्यपीठिका ॥ पादाष्टकन्तुरुचिरंपार्श्वतः परिकल्पयेत् ॥ ७८९ ॥ मानेनानेनविस्तारोभित्तीनान्तु विधीयते ॥ पादेपंचगुणंकृत्वाभित्तीनामुच्छ्रयोभवेत् ॥ ७९० ॥ सएवशिखरस्यापिद्विगुणः स्यात्समुच्छ्रयः ॥ चतुर्धातुशिरो भज्यअर्द्धभागद्वयस्यवा ॥ ७९१ ॥ शुकनासंप्रकुर्वीततृयीयेवेदिकामता ॥ कण्ठमामलसारंतुचतुर्थेपरिकल्पयेत् ॥ ७९२ ॥ कपोलयोस्तुसंहारोद्विगुणोस्यविधीयते ॥ शोभनैर्वप्रवल्लीभिरण्डकैश्चविभूषितः ॥ ७९३ ॥ प्रासादेयस्तृतीयस्तुमयातुभ्यन्निवेदितः ॥ सामान्यमपरन्तद्वत्प्रासादंशृणुतद्विजाः ॥ ७९४ ॥ त्रिभेदङ्कारयेत्क्षेत्रंयत्रतिष्ठन्तिदेवताः ॥ रथङ्कत्वातुमानेनबाह्यभागविनिर्गतम् ॥७९५॥ नेमीपादेनविस्तीर्णाप्रासादस्यसमन्ततः ॥ गर्भंतुद्विगुणङ्कुर्यान्नेमीमानंभवेदिह ॥ ७९६ ॥

वावै ॥ ९२ ॥ और उसके कपोतोंका संहार (प्रमाण) दूना कहाहै और वह शोभन वप्रवल्ली और अण्डकोंसे विभूषित होताहै ॥ ९३ ॥ प्रासादकेविषै जो तीसरा प्रमाण है वह तुम्हारे प्राति कहा तिसी प्रकार प्रासादकेविषै अन्यप्रमाणकोभी सामान्यरीतिसे तुम सुनो ॥ ९४ ॥ कि जिसमें देवता टिकतेहैं उस प्रासादके भेदके तीन विभाग करले प्रमाणसे रथको बनवाकर उसके वाम भागमें चलावै ॥७९५॥ प्रासादके चारों तरफ एकपादकी नेमि बनवावै गर्भको दूना करके जो प्रमाण हो वही नेमिका मान होताहै॥९६॥

और यही भित्तियोंकी ऊँचाई होतीहै और उससे दूना शिखर होताहै और उसके पांचमें भागका पूर्वको है ग्रीवा जिसकी ऐसा निःश्वास कहाताहै ॥ ९७ ॥ और प्रकारके शिखरकोभी विधिसे बनवावै और उसके विशेषकर निष्क अंशके प्रमाण से शिखरकी ग्रीवाको पूर्वदिशाको रक्खै ॥ ९८ ॥ अथवा कर्णमूलके पांचमें भागसे पूर्वको जिसकी ग्रीवाहो ऐसा शिखर बनवावै और उसमें गर्भके अन्तमें हारके मूलसे लेकर कनक बनवावै ॥ ९९ ॥ इस प्रकार ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठके भेदसे और लिं

सएवभित्तीनामुत्सेधोद्विगुणः शिखरोमतः ॥ प्राग्ग्रीवंपञ्चभागेननिश्वासस्तस्यचोच्यते ॥ ७९७ ॥ कारयेच्छिखरन्तद्वत्प्राकारस्य विधानतः ॥ प्राग्ग्रीवन्तस्यमानेननिष्कांशेनविशेषतः ॥ ७९८ ॥ कुर्याद्वापञ्चभागेनप्राग्ग्रीवङ्कर्णमूलतः ॥ कारयेत्कनकन्तत्रगर्भान्तेहारमूलतः॥ ७९९ ॥ एवन्तुत्रिविधङ्कुर्याज्ज्येष्ठमध्यकनीयसम् ॥ लिङ्गमानानुभेदेनरूपभेदेनवापुनः ॥ ८०० ॥ एतेसामान्यतःप्रोक्तानामतः शृणुताधुना ॥ मेरुमन्दरकैलासकुंभसिंहमृगास्तथा ॥ ८०१ ॥ विमानछन्दकस्तद्वच्चतुरस्रस्तथैवच ॥ अष्टास्रः षोडशास्रश्चवर्तुलः सर्वभद्रकः ॥ ८०२ ॥ सिंहश्चनन्दनश्चैवनन्दिवर्द्धनएवच ॥ सिंहोवृषः सुवर्णश्चपद्मकोथसमुद्रकः ॥ ८०३ ॥ प्रासादनामतः प्रोक्ताविभागंशृणुताद्विजाः ॥ शतशृङ्गश्चतुर्द्वारोभूमिकाषोडशोच्छ्रितः ॥ ८०४ ॥ नानाविचित्रशिखरोमेरुप्रासाद उच्यते ॥ मन्दरोद्वादशप्रोक्तः कैलासोनवभूमिकः ॥ ८०५ ॥

गमान वा रूपभेदसे तीनप्रकारके शिखरको बनवावै ॥ ८०० ॥ ये शिखर सामान्यसे कहे अब शिखरोंके नामोंको तुम सुनो कि मेरु मंदर कैलास कुंभ सिंह और मृग ॥ १ ॥ विमान छन्दक और चतुरस्र (चकोर) अष्टास्र (अठकोना) और षोडशास्र (सोलहकोना) वर्तुल (गोल) सर्वभद्रक ॥ २ ॥ सिंहनन्दन और नंदीवर्द्धन सिंह वृष सुवर्ण पद्मक और समुद्रक ॥ ३ ॥ ये नामसे कहेहैं हे द्विजों ! इनके विभागको तुम सुनो शतशृंग हों और चार जिसके द्वारहों भूमिकाके सोलह भागसे ऊंचाहो ॥ ४ ॥ और नानाप्रकार

की जिसकी विचित्र शिखरहों उसको मेरुप्रासाद कहतेहैं और जो बारहचौकका हो वा जिसकी बारह शिखरहों उसको मन्दर कहतेहैं और जिसमें नौ ९ भूमि हों उसे कैलास कहतेहैं ॥८०५॥ अनेक शिखरोंसे जिसका विस्तारहो उसे विमानच्छन्दक कहतेहैं और उसकी भूमि (चौक) आठ होतीहैं और जिसकी सात भूमिहों वह नन्दिवर्द्धक होताहै ॥ ६ ॥ बीस जिसकी कौन समानहो वह नन्दन कहाहै और जिसकी सोलह १६ कौनहों और जो नानारूपसे युक्तहो ॥ ७ ॥ और अनेक जिसकी शिखरहों उसको सर्वतोभद्र कहतेहैं और वह चंद्रशालासे युक्त होताहै और उसकी भूमि पांच होतीहै ॥ ८ ॥ और तिसी प्रकार शुककी (तोता) नासिकाके

विमानच्छन्दकन्तद्वदनेकशिखरानतः ॥ सचाष्टभूमिकस्तद्वत्सप्तभिर्नन्दिवर्द्धनः ॥ ८०६ ॥ विंशांडकसमायुक्तोनन्दनः समुदाहृतः॥ षोडशास्त्रकसंयुक्तो नानारूपसमन्वितः ॥ ८०७॥ अनेकशिखरस्तद्वत्सर्वतोभद्रउच्यते ॥ चन्द्रशालासमोपेतोविज्ञेयः पंचभूमिकः ॥ ८०८ ॥ वलभीच्छन्दकस्तद्वच्छुकनासस्त्रयान्वितः ॥ वृषस्योच्छ्रायतस्तुल्योमंडिताश्चित्रवर्जितः ॥ ८०९ ॥ सिंहःसिंहगतिर्ज्ञेयोगजो गजसमस्तथा ॥ कुंभः कुंभाकृतिस्तद्वद्भूमिकानवकोच्छ्रयः ॥ ८१० ॥ अङ्गुलीपुटसंस्थानपंचांडकविभूषितः ॥ षोडशा स्त्रःसमंतात्तु विज्ञेयः ससमुद्रकः ॥ ८११ ॥ पार्श्वयोश्चन्द्रशालास्य उच्छ्रायोभूमिकाद्वयम् ॥ तथैवपद्मकः प्रोक्त उच्छ्रायोभूमिकाद्वयम् ॥ ८१२ ॥

समान जो कोनोंसे युक्तहो और वृषकी ऊंचाईके तुलयहो और मण्डितहो और चित्रोंसे वर्जितहो वह वलभिच्छन्दक कहाता है ॥ ९ ॥ सिंहके समान जो दीखै वह सिंह और गजके समान जो दीखै वह गज कहाताहै और कुंभके समान जिसका आकारहो वह कुंभ कहाताहै और उसकी ऊंचाई भूमिके नवमभागकी होतीहै ॥ ८१० ॥ अंगुलिके पुटके समान जिसकी स्थितिहो और पांच अण्डकोशसे जो भूषित हो और चारों तरफसे जिसकी सोलह कोनहों उसको सामुद्रिक कहते हैं ॥ ११ ॥ जिसके दोनों पार्श्वभागोंमें

चन्द्रशालाके समान मुख हों और ऊंचाहो दो जिसकी भूमिहो और जो उतनाही ऊंचा हो और दोही जिसकी भूमि हों वह पद्मक कहाहै ॥ १२ ॥ और जिसकी सोलह अस्र और विचित्र शिखर होतीहैं और वह मन्दिर शुभदायी होताहै और जो चन्द्रशालासे विशेषकर भूषित हो वह मृगराजनामसे प्रसिद्धहै ॥ १३ ॥ और जिसकी विशाल पूर्वको ग्रीवाहो और भूमिके छठेभागकी ऊंचाई हो वह मृगराज कहाताहै और अनेक जिसमें चंद्रशालाहों वह गजप्रासाद कहाताहै ॥ १४ ॥ और पर्य्यङ्क गृहराज वा नामसे जिसै गरुड कहतेहैं जिसकी सातभूमिके भागकी ऊंचाई हो और जिसमें तीन चन्द्रशाला हों ॥ ८१५ ॥ जिसके चारोंतरफ

षोडशास्रः सविज्ञेयो विचित्रशिखरः शुभः ॥ मृगराजस्तुविख्यातश्चन्द्रशालाविभूषितः ॥ ८१३ ॥ प्राग्ग्रीवेणविशालेनभूमिकास पडुन्नता ॥ अनेकचन्द्रशालस्तुगजप्रासादउच्यते ॥ ८१४ ॥ पर्य्यंकगृहराजोवैगरुडोनामनामतः ॥ सप्तभूम्युच्छ्रयस्तद्वच्चन्द्रशाला त्रयान्वितः ॥ ८१५ ॥ भूमिकास्तुषडशीतिर्बाह्यतः सर्वतोभवेत् ॥ तथान्योगरुडस्तद्वदुच्छ्रायोदशभूमिकः ॥ ८१६ ॥ पद्मकः षोडशा स्रस्तुभूमिद्वयमथाधिकः ॥ पद्मतुल्यप्रमाणेनश्रीतुष्टकइतिस्मृतः ॥ पञ्चांडकस्त्रिभूमिस्तुगर्भेहस्तचतुष्टयम् ॥ ८१७ ॥ वृषोभवतिनाम्नायः प्रासादः सार्वकामिकः ॥ सप्तकाः पञ्चकाश्चैवप्रासादायेमयोदिताः ॥ सिंहस्यतेसमाज्ञेयायेचान्येन्यत्प्रमाणतः ॥ ८१८ ॥ चन्द्रशालै स्समोपेताः सर्वेप्राग्ग्रीवसंयुताः ॥ ऐष्टिकादारवाश्चैवशैलजाश्चसतोरणाः ॥ मेरुः पञ्चाशद्धस्तः स्यान्मंदारः पंचहीनकः ॥ ८१९ ॥

बाह्यदेशमें छासीगज वा हाथ भूमिहो वहभी एक प्रकार का गरुड मन्दिर कहाहै और जिसकी ऊंचाई भूमिके दशभागकी होतीहै ॥ १६ ॥ और जिसकी सोलह अस्रहो और दो भूमि जिसमें अधिक हों वह पद्मक कहाता है ८ और पद्मक के तुल्य जिसका प्रमाणहो वह श्रीतुष्टक कहाताहै पांच जिसके अण्डहों और तीन जिसकी भूमि हों और गर्भमें जिसके चार हाथ हों ॥ १७ ॥ वह नामसे वृष होताहै और वह प्रासाद सब कामनाओंको देताहै सप्तक और पंचकनामके

जो प्रासाद मैंने कहेहैं वे सिंह नामके प्रासादके समान जानने और जो अन्य प्रासाद अन्य प्रमाणसे ॥१८॥ और चंद्रशालाओंसे युक्त कहेहैं वे सब प्राग्ग्रीवसे युक्त होतेहैं और ईटोंके वा काष्ठके वा पत्थरके होतेहैं और तोरणोंसहित होतेहैं मेरु नामका मंदिर ५० पचास हाथका और मंदर ४५ पैंतालीस ॥ १९ ॥ और कैलास ४० चालीस हाथका और वितानक ३४ चौंतीस हाथका. और बत्तीस ३२ हाथका नन्दीवर्द्धन कहाहै और तीस हाथका नन्दन और सर्वतोभद्रक कहाहै ॥ ८२० ॥ ये चारों १६ सोलह हाथके देवताओंको प्यारे होतेहैं कि कैलास मृगराज वितानछन्दक और गज ॥ २१ ॥ और ये बारह हाथके होतेहैं और इनमें सिंह

चत्वारिंशत्तुकैलासश्चतुस्त्रिंशद्वितानकः ॥ नन्दिवर्द्धनकस्तद्वद्द्वात्रिंशत्समुदाहृतः ॥ त्रिंशद्भिर्नन्दनः प्रोक्तः सर्वतोभद्रकस्तथा ॥ ८२० ॥ एतेषोडशहस्ताः स्युश्चत्वारोदेववल्लभाः ॥ कैलासोमृगराजस्तुवितानच्छन्दकोगजः ॥८२१॥एतेद्वादशहस्ताः स्युरेतेषां सिंहनादकः ॥ गरुडोष्टकरोज्ञेयः सिंहोदशउदाहृतः ॥ ८२२ ॥ एवमेवप्रमाणेनकर्तव्याः शुभलक्षणाः ॥ यक्षराक्षसनागानामष्टहस्तः प्रशस्यते॥ ८२३ ॥ तथामेर्वादयः सप्तज्येष्ठलिङ्गाः शुभावहाः ॥ श्रीवृक्षकादयश्चाष्टौमध्येयस्यउदाहृताः ॥ ८२४ ॥ तथाहंसादयः पंचउक्तास्तेशुभदामताः ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामिशक्त्यालिङ्गस्यलक्षणम् ॥ ८२५ ॥ लिङ्गदैर्घ्याङ्गुलैर्लिङ्गंविस्तारङ्गणयेद्बुधः ॥ लिङ्गविस्तारमानेनत्रिगुणम्पीठविस्तरम् ॥ ८२६ ॥

नादक और गरुडके आठ कोंन होतेहैं और सिंहके दश १० कोन कहेहैं ॥ २२ ॥ इसीप्रमाणसे शुभहै लक्षण जिनका ऐसे शुभ प्रासाद बनाने यक्ष राक्षस नाग इनका आठ ८ हाथका मन्दिर श्रेष्ठ होताहै ॥ २३ ॥ और तैसेही मेरु आदि सात ज्येष्ठ (उत्तम) लिंगके शुभदायी कहेहैं और जो मध्यमें श्रीवृक्षक आदि आठ ८ कहेहैं ॥ २४ ॥ और हंस आदि जो पांच कहेहैं वे सब शुभदायी होतेहैं इसके अनन्तर शक्तिसे लिंगके लक्षणको कहतेहैं ॥ ८२५ ॥ लिंगकी लम्बाईके अंगुलोंसे बुद्धिमान् मनुष्य लिंगके विस्तारको

गिनै और लिंगके विस्तारका जितना मानहो उससे तिगुना विस्तार पीठका होताहै ॥ २६ ॥ गर्भगेहका जो विस्तार है उसके तीन भागकी कल्पना करै उनभागोंमें एकभागसे पीठका विस्तारकरै ॥ २७ ॥ और विष्णुके भागपर्य्यन्त पीठोंकी दीर्घताको करै मूल और मध्य और ऊर्द्ध भागमें ब्रह्मा विष्णु और शिव इनके अंशोंको रक्खै ॥ २८ ॥ अब क्रमसे क्रमसे पीठिकाके यथार्थ लक्षणको कहताहूं पीठकी ऊँचाईमें यथायोग्य सोलह भागोंको करै ॥ २९ ॥ उनमेंसे १ एकभाग भूमिमें प्रविष्ट होताहै और चारभागोंकी जगती कहातीहै एक भागका वृत्त होताहै और वृत्तके भागके ऊर्द्धभाग होताहै ॥ ३० ॥ और तीनभागोंसे कण्ठ होताहै और कण्ठके तीसरे

गर्भगेहप्रविस्तारन्त्रिभागंपरिकल्पयेत् ॥ तेषुभागेषुचैकेनपीठविस्तारमाचरेत् ॥ ८२७ ॥ दीर्घङ्कुर्वीतिपीठानांविष्णुभागवसानकम् ॥ मूलेमध्येतथोर्द्ध्वेचब्रह्मविष्णुहरांशकम् ॥ ८२८ ॥ पीठिकालक्षणंवक्ष्येयथावदनुपूर्वशः ॥ पीठोच्छ्रायेयथावच्च भागान्षोडशकारयेत् ॥ ८२९ ॥ भूमावेकः प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जगतीमता ॥ वृत्तोभागस्तथैकः स्याद्वृत्तादूर्द्ध्वस्तुभागतः ॥ ८३० ॥ भागैस्त्रिभिस्तथाकंठंकंठंपदास्त्रिभागतः ॥ भागेकमूर्द्ध्वेकेयश्चशेषभागेनपट्टिका ॥ ८३१ ॥ प्रविष्टंभागमेकन्तुजगतीयावदेवतु ॥ निर्गमस्तुपुनस्तस्यायावद्वैपोषपट्टिका ॥ वारिनिर्गमनार्थस्तुतत्रकार्यम्प्रमाणतः ॥ ८३२ ॥ लिङ्गवाणादिकङ्कुर्यात्सप्तांशंवात्रिभागितम् ॥ पञ्चभागंद्विभागंवायथायोग्यंयथास्थिरम् ॥ सप्तभागकृतेलिङ्गेचतुरंशान्निवेदयेत् ॥ ८३३ ॥

भागका पद होताहै उर्द्धमें जो एक भागहै उसके शेषभागकी पट्टिका होतीहै ॥ ३१ ॥ और जहांतक जगती है वहांतक एक भाग भूमिमें प्रविष्ट होताहै और उस जगतीका अर्थात् जलके प्रवाहका निर्गम शेषपट्टिका पर्य्यन्त होताहै अर्थात् मकानके पुस्तेतक जगती बनावै और जलके निकसनेके लिये वह प्रमाणसे बनवानी ॥ ३२ ॥ और लिंग बाण आदिकोंको सात अंश वा तीनभागसे बनवावै अथवा ५ पांच भाग वा दो २ भाग जिसप्रकार शिर रहै उसप्रकार यथायोग्य बनवावै सातभागसे बनायेहुये

लिंगमें चार अंशोंको बनवावै ॥ ८३३ ॥ पीठके मध्यमें जो गर्त है उससे तीसरा वा एक भागका और पांच भागके गर्तमें तीन भाग और दो भागके गर्तमें आधाभाग क्रमसे रक्खै ॥ ३४ ॥ इसीप्रकार बाणआदि लिंगोंका प्रवेश शिवजीने कहाहै और शिर स्थूल हो और मूल कृश हो और उन्नत (ऊँचे)में उसके मुखमें शिरहो ॥ ८३५ ॥ और जिसका पृष्ठभाग नीचा हो ऐसा चिह्न बाणगेह आदि लिंगमें होताहै जिनके मुख और पृष्ठभाग आदिका ज्ञान न हो उनका शिर ऐसा होना चाहिये जिसके मुखका स्पर्श कन्या करसके ॥ ३६ ॥ ज्येष्ठ मध्यम कनिष्ठ भेदसे तीन प्रकारकी ब्रह्माकी शिला होतीहै उससे तीन

पीठमध्यगतेगर्तेत्रिभागश्चैकभागकम् ॥ पञ्चभागेतुभागांस्त्रीन्द्विभागेर्द्धंयथाक्रमम्॥८३४॥ एवम्बाणादिलिङ्गानाम्प्रवेशःशिवनोदितः ॥ स्थूलंशिरः कृशंमूलमुन्नतेतन्मुखंशिरः ॥८३५॥ निम्नपृष्ठमितिख्यातम्बालगेहादिलिङ्गके ॥ अज्ञातमुखपृष्ठानाङ्कन्यास्पृष्टम्मुखंशिरः ॥ ८३६ ॥ ज्येष्ठामध्याकनिष्ठाचत्रिविधाब्रह्मणश्शिलाः ॥ त्रिगुणंविस्तृतङ्कुर्यादन्यथावाप्रकारकः ॥ ८३७ ॥ उक्तानामपिपीठानांविस्तारादधिकाङ्गुलैः ॥ त्रिभागपीठविस्तारङ्कृत्वातत्रैकभागतः ॥ ८३८ ॥ दीर्घंकुर्यात्प्रणालञ्चतन्त्रिभागैकविस्तरम् ॥ ब्रह्मसूत्रचतुष्केतुस्थाप्यकूर्मशिलान्ततः ॥ तद्गर्भेविन्यसेत्कूर्म्मंसौवर्णन्द्वादशंसुखम् ॥ ८३९ ॥ तत्ररत्नादिभिस्सार्द्धंभूमिञ्चहृदयेन्यसेत् ॥ तस्यैवहितत्तद्गर्भेनीरंध्रंवज्रलेपकैः ॥ लिप्तोथशांतितोयेनप्रोक्ष्योल्लिख्योक्तवत्ततः ॥ ८४० ॥

गुने विस्तारसे वा अन्य प्रकारसे प्राकार (परकोटा) बनवावै ॥ ३७ ॥ पूर्वोक्त पीठोंके विस्तारसे अधिक अंगुलोंसे तीन भाग पीठके विस्तारको करके उसके एक भागके प्रमाणसे ॥ ३८ ॥ दीर्घ (लंबाई) करै और प्रणाल (पन्नाला)को उसके त्रिभागके एक विस्तारसे बनवावै और ब्रह्मसूत्रके चतुष्कमें कूर्मशिलाके स्थापन करनेके अनंतर कूर्मशिलाके गर्भमें द्वादश मुख सोनेके कूर्मका स्थापन करै और उस कूर्मके ऊपर ॥ ३९ ॥ रत्नआदि सहित भूमिको हृदयके ऊपर स्थापन करै तिसकेही उस उस

गर्भको वज्रलेपसे नीरंध्र करै अर्थात् छिद्र रहित करदे फिर लीपकर शांति पाठके जलसे छिडकै और फिर उल्लेखन करै अर्थात् ऊँचे नीचेको एकरस करदे ॥ ८४० ॥ फिर तेज नामकी शक्ति जो कलिताके आसनरूप हो उसका ज्योतिषियोंके बतायेहुये श्रेष्ठ मुहूर्तके श्रेष्ठलग्नमें स्थापन करै ॥ ४१ ॥ इसके अनंतर मंडपोंका लक्षण कहताहूं और प्रासादके अनुसार उत्तम मंडपोंको कहताहूं ॥ ४२ ॥ श्रेष्ठ मध्यम कनिष्ठ भेदसे अनेकप्रकारके मंडप बनवावै उनको मैं नाम लेलेकर कहताहूं हे द्विजोंमें श्रेष्ठो तुम सुनो ॥ ४३ ॥

ततस्तेजोविधांशक्तिङ्कलितासनरूपिणीम् ॥ स्थापयेच्चसुलग्नेतुदैवज्ञोक्तेमुहूर्तके ॥ ८४१ ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामिमंडपानाञ्चलक्षणम्॥ मण्डपान्प्रवरान्वक्ष्येप्रासादस्यानुरूपतः ॥ ८४२ ॥ विविधामण्डपाः कार्याः श्रेष्ठमध्यकनीयसः ॥ नामतस्तान्प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥ ८४३ ॥ पुष्पकः पुष्पभद्रश्चसुवृत्तोमृतनन्दनः ॥ कौशल्योबुद्धिसङ्कीर्णोगजभद्रोजयावहः ॥ ८४४ ॥ श्रीवृक्षो विजयश्चैववास्तुकोर्णश्रुतन्धरः ॥ जयभद्रोविलासश्चसाश्लिष्टःशत्रुमर्दनः ॥ ८४५ ॥ भाग्यपंचोनन्दनश्चमानवोमानभद्रकः॥ सुग्री वोहर्षणश्चैवकर्णिकारपदाधिकः॥ ८४६ ॥ सिंहश्चयामभद्रश्चशत्रुघ्नश्चतथैवच ॥ सप्तविंशतिराख्यातालक्षणंशृणुतद्विजाः ॥ ८४७ ॥ स्तम्भायत्रचतुष्षष्टिः पुष्पकः संउदाहृतः ॥ द्वाषष्टिः पुष्पभद्रस्तुषष्टिस्तुवृत्तउच्यते ॥ ८४८ ॥ अष्टपंचशकस्तंभः कथ्यते ऽमृतनन्दनः ॥ कौशल्योथद्विपञ्चाशचतुःपंचाशतान्पुनः ॥ ८४९ ॥

कि पुष्पक, पुष्पभद्र, सुवृत्त, अमृतनंदन, कौशल्य, बुद्धिसंकीर्ण, गजभद्र, और जयावह ॥ ४४ ॥ श्रीवृक्ष, विजय, वास्तुक, अर्णश्रुतंधर, जय भद्र, विलास, सश्लिष्ट, शत्रुमर्दन ॥ ८४५ ॥ भाग्यपंच, नंदन, मानव, मानभद्र, सुग्रीव, हर्षण, कर्णिकार, पदाधिक ॥ ४६ ॥ सिंहयामभद्र, और शत्रुघ्न ये सत्ताईस मंडप शास्त्रकारोंने कहे हैं अब हे ब्राह्मणो! इनके लक्षणोंका श्रवण करो ॥ ४७ ॥ जिसमें चौसठ स्तंभ हों उसको पुष्पक कहते हैं जिसमें बासठ ६२ स्तंभ हों उसे पुष्पभद्र और जिसमें साठि ६० स्तंभ हों उसे वृत्त कहतेहैं ॥ ४८ ॥ जिसमें अठावन ५८ स्तंभमें उसको अमृतनंदन क

हतेहैं और जिसमें बावन स्तंभहों उसे कौशल्य कहते हैं और चम्मन ५४ स्तंभकेको ॥ ४९॥ नामसे बुद्धिसंकीर्ण कहते हैं और उसमे दो स्तम्भ न्यूनसे हों तो राजभद्रक कहतेहैं तिरेपन ५३ स्तंभकेको जयावह और इकयावन ५१ स्तंभकेको श्रीवत्स कहते हैं ॥ ८५० ॥ बत्तीस ३२ स्तंभका मण्डप हर्षण जानना और बीस २० स्तंभका कर्णिकार होताहै और अट्ठाईस २८ स्तम्भ जिसमें हों वह पद्माधिक होताहै और सोलह १६ स्तंभ जिसमें हों वह सिंह होताहै ॥५१॥ और उससे दो न्यूनके स्तंभको १४ याम और शत्रुघ्न कहते हैं और किसी ग्रंथमें बारह ११ स्तंभोंसे युक्त रामभद्र कहाहै ॥ ५२ ॥ ये पूर्वोक्त मण्डप लक्षणोंसे युक्त यथायोग्य कहे (यहांपर

नाम्नातुबुद्धिसङ्कीर्णोद्विहीनोराजभद्रकः ॥ जयावहस्त्रिपंचाशच्छ्रीवत्सस्तुद्विहीनकः ॥ ८५० ॥ द्वात्रिंशद्धर्षणोज्ञेयःकर्णिकारश्च विंशतिः ॥ पदद्विकोष्टाविंशतिभिर्द्विरष्टासिंहउच्यते ॥ ८५१ ॥ द्विहीनोयामभद्रस्तुसुशत्रुश्चानिगद्यते ॥ यामभद्रःक्वचित्प्रोक्तो द्वादशस्तंभसंयुतः ॥ ८५२ ॥ मण्डपाः कथिताह्येतेयथावल्लक्षणान्विताः ॥ त्रिकोणवृत्तमध्येतुअष्टकोणन्द्विरष्टकम् ॥ ८५३ ॥ चतुष्कोणञ्चकर्तव्यंसंस्थानम्मण्डपस्यतु ॥ राज्यञ्चविजयञ्चैवआयुर्वर्द्धनमेवच ॥८५४॥ पुत्रलाभः श्रियःपुष्टिःस्त्रीपुत्रादिषुक्रमाद्भवेत्॥ एवन्तुशुभदः प्रोक्तअन्यथातुभयावहः ॥८५५॥ इतिषष्ठोऽध्यायः ॥६॥ अथातः शृणुविप्रेन्द्रद्वारलक्षणमुत्तमम् ॥ द्वाराणांचैवविन्यासाः • पक्षाः पञ्चदशस्मृताः ॥ ८५६ ॥ त्रिषुत्रिषुचमासेषुनभस्यादिषुवैक्रमात् ॥ यदिङ्मुखोवास्तुनरस्तन्मुखंसदनंशुभम् ॥ ८५७ ॥

विजय मण्डपसे सुग्रीव मण्डपतकके लक्षण इस ग्रंथमें नजाने क्यों नहीं लिखे) तिकोण वृत्तके मध्यमें अष्टकोण षोडशकोण ॥ ५३ ॥ वा चतुष्कोण मण्डपका स्थान बनावै राज्य विजय अवस्थाकी वृद्धि ॥ ५४ ॥ पुत्रलाभ लक्ष्मी स्त्री पुत्र आदिकोंका पोषण क्रमसे पूर्वोक्त मण्डपोंमें होताहै इसप्रकारका मण्डप शुभदायी होताहै और अन्यथा भयका दाता होताहै ॥ ८५५ ॥ इति षष्ठोऽध्यायः॥६॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणोंमें इन्द्र उत्तम द्वारके लक्षणोंको सुनो द्वारके विन्यासमें पन्द्रह १५ पक्ष कहेहैं अर्थात पन्द्रह प्रकारके द्वार होतेहैं ॥ ८५६ ॥ और वे नभस्य (भाद्रपद) आदि तीन तीन मासोंमें क्रमसे होतेहैं और वास्तु पुरुषका मुख जित दिशामें हो उसी

दिशामें स्थानका द्वार शुभदायी होताहै ॥ ५७ ॥ और अन्यदिशाके मुखका घर दुःख शोक भयका दाता होता है तिससे वास्तुपुरुषके मुखकी दिशाका द्वारही श्रेष्ठहै अन्य दिशाका नहीं ॥ ५८ ॥ अब दुसरे प्रकारको कहते हैं कन्या आदि राशियोंपर तीन तीन राशियोंपर सूर्यके स्थित होनेके समय पूर्व आदि दिशाओंमें द्वारको न बनवावै ॥ ५९ ॥ अब तीसरे प्रकारको कहते हैं कर्क और सिंहके सूर्यमें पूर्व और पश्चिममें मुख होताहै मेष और वृश्चिकके सूर्यमें उत्तर दक्षिणमें मुख होताहै ॥ ८६० ॥

अन्यदिङ्मुखगेहन्तुदुःखशोकभयप्रदम् ॥ तस्मात्तदिङ्मुखन्द्वारंप्रशस्तंनान्यदिङ्मुखम् ॥८५८॥ अथद्वितीयः ॥ त्रिषुत्रिषुचराशी नाङ्कन्यादीनांस्थितेरवौ ॥ पूर्वादिषुनकर्तव्यंद्वारञ्चैवयथाक्रमात् ॥ ८५९ ॥ अथतृतीयः ॥ कर्ककुंभगतेसूर्येमुखंस्यात्पूर्वप श्चिमे ॥ मेषकीटगतेवापिसुखंचोत्तरदक्षिणे ॥ ६० ॥ मुखानिचान्यथाकर्तुर्व्याधिशोकभयानिच ॥ अन्यराशिगतेसूर्येनविदध्या त्कदाचन ॥ ८६१ ॥ अथचतुर्थः ॥ सिंहेतुपश्चिमंद्वारन्तुलायाञ्चोत्तरन्तथा ॥ कर्कटेपूर्वदिग्द्वारंद्वारंपश्चिमवर्जितम् ॥ ८६२ ॥ कर्कटे केचिंसिहस्थेपूर्वद्वारन्नशोभनम् ॥ तुलायांवृश्चिकेचैवद्वारंपश्चिमवर्जितम् ॥ ८६३ ॥

और अन्यथा जो गृहका द्वार बनाता है उसको व्याधि और शोक और भय होतेहैं अन्य राशिके सूर्यमें द्वारको कदा चित् न बनवावै ॥ ६१ ॥ अब चौथे प्रकारको कहतेहैं सिंहके सूर्यमें पश्चिम द्वारको तुलाके सूर्यमें उत्तर मुखके द्वारको और कर्कके सूर्यमें पूर्वदिशाके द्वारको बनवावै और पश्चिम दिशाको छोडकर द्वार होताहै ॥ ६२ ॥ कर्क और सिंहके सूर्यमें पूर्वका द्वार श्रेष्ठ नहीं तुला और वृश्चिकके सूर्यमें पश्चिमदिशाको छोडकर अन्यदिशामें द्वार बनवावै ॥ ६३ ॥

और कर्कके सिंहके सूर्यमें दाक्षिणका द्वार शोभन नहीं, मकरके कुंभके सूर्यमें उत्तरका द्वार निन्दितहै ॥ मिथुन कन्या धन मीन इनके सूर्यमें द्वारको न बनवावै ॥६४॥ और द्वारका स्तंभ और काष्ठका संचय इनकोभी विशेषकर वर्जदे ॥ माघमें और सिंहमें काष्ठके छेदनको न करवावै, जो मूढ मोहसे करतेहैं उनके घरमें अग्निका भय होताहै ॥ ६५ ॥ अब पञ्चम प्रकारको कहते हैं, पूर्णिमासे अष्टमीतक पूर्वमुखके द्वारको वर्जदे, नवमीसे चतुर्दशीपर्यन्त उत्तरमुखके द्वारको वर्जदे ॥ ६६ ॥ अब छठे प्रकारको कहतेहैं, ब्राह्मणोंके घरका द्वा

कर्कटेर्कैचसिंहस्थेयाम्यद्वारन्नशोभनम् ॥ सूर्येमकरकुंभस्थेसौम्यद्वारञ्चनिन्दितम् ॥ नृयुक्कन्याधनुर्मीनसंस्थितेर्केनकारयेत् ॥८६४॥
द्वारस्तंभौतथादारुसञ्चयञ्चविवर्जयेत् ॥ माघेसिंहेचदारूणांछेदनन्नैवकारयेत् ॥ मोहात्कुर्वन्तियेमूढास्तद्गेहेग्निभयंभवेत् ॥ ८६५ ॥
अथपंचमः ॥ पूर्णादित्वष्टमीयावत्पूर्वास्यंपरिवर्जयेत् ॥ उत्तरास्यंनकुर्वीतनवम्यादिचतुर्दशी ॥ ८६६ ॥ अथषष्ठः ॥ प्रत्युङ्मुखंब्राह्मणानांक्षत्रियाणान्तथोत्तरे ॥ वैश्यानाम्पूर्वदिग्द्वारंशूद्राणांदक्षिणेशुभम् ॥ ८६७ ॥ अथसप्तमः ॥ कर्कटोवृश्चिकोमीनोब्राह्मणःपरिकीर्तितः । मेषःसिंहोधनुर्धारीराशयः क्षत्रियाः स्मृताः ॥ वैश्यावृषमृगौकन्याशूद्राःशेषाःप्रकीर्तिताः ॥ ८६८ ॥ वर्णक्रमेणपूर्वादिदिग्दक्षिणेपश्चिमेतथा ॥ ८६९ ॥ योयस्यराशिर्मर्त्यस्यतस्यद्वारंततश्चरेत् ॥ दिशितद्विपरीतन्तुकर्त्तुर्नेष्टफलंभवेत् ॥ ८७० ॥

र पश्चिममुखका क्षत्रियोंका उत्तरमुखका वैश्योंका पूर्वमुखका शूद्रोंका दक्षिणमुखका शुभ होताहै ॥ ६७ ॥ अब सातमें प्रकारको कहतेहैं. कर्क वृश्चिक मीन ये राशि ब्राह्मण कहातीहैं. मेष सिंह धन ये राशि क्षत्रिय कहातीहैं ॥ ६८ ॥ वृष मृग कन्या ये राशि वैश्य कहातीहैं और शेष राशि शूद्र कहाती हैं. वर्णके क्रमसे पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तरदिशाओंके द्वार होतेहैं ॥ ६९ ॥ जिस मनुष्यकी जो राशिहो उसीसे उसका द्वार बनवावै, उसके विपरीत दिशामें द्वार बनवानेसे कर्ताको इष्टफल नहीं होता ॥ ७० ॥ अब

आठमें प्रकारको कहतेहैं, धन मेष सिंह इनराशियोंपर जब चन्द्रमा हो तो पूर्वदिशामें द्वार बनवावै मकर कन्या और वृषका चन्द्र
मा होयतो दक्षिणदिशामें द्वार बनवावै. तुला मिथुन कुम्भका चन्द्रमा होयतो पश्चिममुखके द्वारको बनवावै ॥ ७१ ॥ कर्क वृश्चि
क मीनका होयतो उत्तरमें द्वारको बनवावै. अब नवमप्रकारको कहतेहैं, कृत्तिकासे सात नक्षत्र पूर्वमें और मघा आदि सात नक्षत्र
दक्षिणमें ॥ ७२ ॥ और अनुराधा आदि सात नक्षत्र पश्चिममें और धनिष्ठा आदि सात नक्षत्रमें उत्तरमें जानने. जिसदिशाके नक्ष
त्रपर चंद्रमा स्थित हो उस दिशा और पीठ दक्षिण और वामभागके नक्षत्रपर द्वारको कदाचित् न बनवावै. अब दशमें प्रकार

अथाष्टमः ॥ धनुर्मेषसिंहेयदारात्रिनाथस्तदापूर्वभागेन्यसेद्वारमाद्यम् ॥ मृगः कन्यकागोषुद्वारंचयाम्येतुलायुग्मकुंभेतथापश्चिमास्यम्
॥ ८७१ ॥ कर्कटेवृश्चिकेमीनेराशिस्थेचोत्तरेन्यसेत् ॥ अथनवमः ॥ कृत्तिकाद्यंसप्तपूर्वेमघाद्यंसप्तदक्षिणे ॥ ८७२ ॥ मैत्राद्यंपश्चि
मेज्ञेयंधनिष्ठाद्यंसप्तउत्तरे ॥ यद्दिग्भसंस्थितेचन्द्रेतद्दिग्द्वारम्प्रशस्यते ॥ ८७३ ॥ पृष्ठदक्षिणवामस्थेनविदध्यात्कदाचन ॥ अथ
दशमः ॥ प्रागादिविन्यसेद्वर्गान्सव्यमार्गेणवैद्विजाः ॥ ८७४ ॥ सिंहेचोत्तरदिग्द्वारंपश्चिमास्यंविवर्ज्जयेत् ॥ अथैकादशः ॥
प्राग्दक्षिणेगृजद्वारंवृषेप्राच्यान्नचान्यदिक् ॥ ८७५ ॥ पृष्ठद्वारन्नकर्त्तव्यङ्कोणेष्वेवविशेषतः ॥ अथद्वादशः ॥ त्रिषुत्रिषुचमासेषु
मार्गशीर्षादिषुक्रमात् ॥ ८७६ ॥ पूर्वदक्षिणतोयेशपौलस्त्याशांमादगुः ॥ द्वारेवह्निभयम्प्रोक्तंस्तम्भेवंशविनाशनम् ॥ ८७७ ॥

को कहतेहैं, पूर्व आदि दिशाओंमें सव्य (वाम) मार्गसे हे द्विजों! वर्गोंको स्थापन करै ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ सिंहमें उत्तरदिशा और पश्चिम
दिशाके द्वारको वर्जदे. अब ग्यारमें प्रकारको कहतेहैं, पूर्व और दक्षिणमें मेषके सूर्यमें वृषमें पूर्व दिशामें द्वारको बनवावै, अन्यदि
शामें नहीं ॥ ८७५ ॥ स्थानका पीठपर द्वार न करै और कोणोंमेंतो विशेषकर न करै. अब बारमें प्रकारको कहतेहैं, मार्गशिर आदि
तीन तीन महीनोंमें क्रमसे ॥ ७६ ॥ पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशामें राहु वसताहै. द्वारमें वह्निकाभय और स्तम्भके राहु-

के मुखकी दिशाके गाढनेसे वंशका नाश होताहै ॥ ७७ ॥ अब तेरमें प्रकारको कहतेंहै, राक्षस नैर्ऋति कुबेर (उत्तर) अग्नि जल-(पश्चिम) ईशान याम्य वायव्य इनदिशाओंमें आदित्यवारसे लेकर राहु वसता है. आठैदिशाओंके चक्रमें वह राहु गृहके द्वार और गमनके प्रारंभमें वर्जित है ॥ ७८ ॥ अब चौदहमें प्रकारके कहतेहैं, पहिला गृह ध्रुव कहाहै वह सब द्वारोंसे विवर्जित होताहै. पूर्वदिशामें जिसका द्वार हो वह धान्य कहाताहै और दक्षिणमें जिसका द्वार हो वह जयसंज्ञक गृह कहाताहै ॥ ७९ ॥ पूर्व दक्षिणमें द्वार होयतो नन्द गृह होताहै पश्चिममें होयतो खर होताहै पूर्व पश्चिममें होयतो कान्त, पश्चिम दक्षिण

अथत्रयोदशः ॥ रक्षः कुबेराग्निजलेचयाम्येवायव्यकाष्ठासुचभानुवारात् ॥ वसेत्तमश्चाष्टसुदिक्षुचक्रेमुखेविवर्ज्योगमनेगृहेच ॥८७८॥ अथचतुर्दशः ॥ ध्रुवन्त्वाद्यंगृहंप्रोक्तंसर्वद्वारविवर्जितम् ॥ धान्येपूर्वदिशिद्वारंदक्षिणेजयसंज्ञकम् ॥ ८७९ ॥ प्राग्दक्षिणेनन्दगृहेपश्चिमे खरमेवच ॥ प्राक्पश्चिमेतथाकान्तेप्रत्यग्याम्येमनोरमे ॥ ८८० ॥ सुवक्रेचोत्तरेवर्ज्यन्दुर्मुखेचोत्तरेतथा ॥ प्रागुत्तरेक्रूरसंज्ञेविपदो दक्षिणेतथा ॥ ८८१ ॥ धनदेपश्चिमेवर्ज्यंक्षयंचोत्तरपश्चिमे ॥ आक्रन्देदक्षिणन्त्याज्यंविपुलेपूर्वमेवच ॥ ८८२ ॥ विजयाख्यश्च तुर्द्वारमलिन्दैःसर्वतोयुतम् ॥ राज्ञांसिद्धिकरम्प्रोक्तंसर्वतोभद्रसंज्ञकम् ॥ ८८३ ॥

में होयतो मनोरम होताहै ॥ ८० ॥ उत्तरमें होयतो सुमुख होताहै और उत्तरमें दुर्मुखनामका गृह वर्जित है और उत्तर दक्षिणके क्रूरसंज्ञक गृहमें विपत्ति होतीहै ॥ ८१ ॥ पश्चिम द्वार धनद गृहमें वर्जित है और उत्तर पश्चिममें गृह होयतो क्षय होताहै. आक्रन्द-नामके घरमें दक्षिणका और विपुल नामके घरमें पूर्वका द्वार वर्जित है ॥ ८२ ॥ चार जिसमें द्वारहों ऐसा विजय नामका घर जो चारों तरफ अलिन्दोंसे युक्त है वह सर्वतोभद्रनामका गृह राजाओंको सिद्धि करनेवाला कहाहै ॥ ८३ ॥

अब पन्द्रहमें प्रकारको कहतेहैं, अब उस द्वारचक्रको कहताहुं, जो पाहिलै ब्रह्माने कहाहै कि सूर्यके नक्षत्रसे चार नक्षत्र द्वारके ऊपर रक्खै ॥ ८४ ॥ दोदो नक्षत्र कोणमें रक्खै और दोदो नक्षत्र दोनों शाखाओंमें रक्खै और तीन नक्षत्र नीचले भागमें रक्खै और चार नक्षत्र मध्यमें रक्खै ॥ ८८५ ॥ ऊर्ध्वके नक्षत्रोंमें द्वार बनवावै तो राज्यहोताहै, कोणके नक्षत्रोंमें उद्वासन (निकास), शाखाके नक्षत्रमें लक्ष्मीकी प्राप्ति और ध्वजाके नक्षत्रोंमें मरण होताहै ॥ ८६ ॥ मध्यके नक्षत्रोंमें सुख होता है. यह चक्र बुद्धिमान् मनुष्योंको सदा विचारने योग्य है. अश्विनी उत्तरा तिष्य (विशाषा) श्रवण मृगशिर ये नक्षत्र शुभहैं.

अथपञ्चदशः ॥ द्वारचक्रम्प्रवक्ष्यामियदुक्तंब्रह्मणापुरा ॥ सूर्यभाद्वचतुष्कन्तुद्वारस्योपरिविन्यसेत् ॥ ८८४ ॥ द्वेद्वेकोणेप्रदातव्यं शाखायुग्मेद्वयंद्वयम् ॥ अधश्चत्रीणिदेयानिवेदामध्येप्रतिष्ठिताः ॥ ८८५ ॥ राज्यंस्यादूर्द्ध्वनक्षत्रेकोणेषूद्वासनंभवेत् ॥ शाखायां लभतेलक्ष्मींध्वजेचैवमृतिर्भवेत् ॥ ८८६ ॥ मध्यस्थेषुभवेत्सौख्यंचिन्तनीयंसदाबुधैः ॥ अश्विनीचोत्तराहस्तातिष्यश्रुतिमृगाः शुभाः स्वातौपूष्णेचरोहिण्यान्द्वारशाखावरोपणे ॥ ८८७ ॥ पञ्चमीधनदाचैवमुनिनन्दावसौशुभम् ॥ प्रतिपत्सुनकर्तव्यंकृतेदुःखमवाप्नुयात् ॥ द्वितीयायांद्रव्यहानिः पशुपुत्रविनाशनम् ॥ ८८८ ॥ तृतीयारोगदाज्ञेयाचतुर्थीभङ्गकारिणी ॥ कुलक्षयेतथाषष्ठीदशमीधननाशिनी ॥ ८८९ ॥ विरोधकृत्त्वमावास्यानास्यांशाखावरोपणम् ॥ केन्द्रत्रिकोणेषुशुभैः पापैस्त्र्यायारिगैस्तथा ॥ ८९० ॥

स्वाति रेवती रोहिणी द्वार शाखाके स्थापनमें शुभ होतेहैं ॥८७॥ पंचमी धनकी दाता होतीहै और सप्तमी अष्टमी नवमी भी शुभहोतीहैं. प्रतिपदामें द्वार कभी नकरै, करैतो दुःख होताहै, द्वितीयामें द्रव्यकी हानि और पशु पुत्रका नाश होताहै ॥ ८८ ॥ तृतीया रोग की दाता चतुर्थी भंगको करतीहै, षष्ठी कुलका नाश और दशमी धनका नाश करती है ॥ ८८९ ॥ अमावास्या विरोधको करतीहै इससे इसमें शाखाका आरोप नकरै. केन्द्र और त्रिकोण (नोंमा पांचमां) इनमें शुभग्रह होंय और ३।११।६। स्थानोंमें पापग्रह होंय ॥९०॥

द्यून (सातमें) दशमं ये ग्रह शुद्ध होंय तो द्वारकी शाखाका स्थापन शुभ वारमें शुभ होताहै और पंचक त्रिपुष्कर योगमें
शुभ नहीं. अग्नि जिसका स्वामीहों ऐसे नक्षत्र (कृत्तिका) में और सोमवारको द्वार शाखाका स्थापन नकरै ॥ ९१ ॥ वास्तुपुरुष दिक्पाल
और क्षेत्रके स्वामीयोंको प्रणाम करके उसके अनन्तर द्वार शाखाका स्थापन शुभशकुनको देखकर करै अन्यथा वर्जदे
॥ ९२ ॥ और सुखके अभिलाषी मनुष्य कुड्य (भित्ति) को छोडकर द्वारको कदाचित् न बनवावै. कृत्तिका भग (पूर्वाफा०) अनुराधा
पुनर्वसु ॥ ९३ ॥ तिष्य हस्त आर्द्रा इन नक्षत्रोंको क्रमसे पूर्व दिशामें रक्खै. अनुराधा विशाखा रेवती भरणी उत्तराषाढा अश्विनी चित्रा

द्यूनाम्बरेशुद्धियुतेद्वारशाखावरोपणम् ॥ शुभंस्याच्छुभवारेचपञ्चकेनत्रिपुष्करे ॥ आग्नेयधिष्ण्येसोमेह्निनकुर्यात्काष्ठरोपणम् ॥ ८९१॥
प्रणम्यवास्तुपुरुषंदिक्पालंक्षेत्रनायकम् ॥ द्वारशाखारोपणञ्चकर्तव्यंतदनन्तरम् ॥ शुभंनिरीक्ष्यशकुनमन्यथापरिवर्जयेत् ॥ ८९२ ॥
कुड्यंभित्त्वानकुर्वीतद्वारंतत्रसुखेप्सुभिः ॥ कृत्तिकाभगमैत्रंतुविशाखाचपुनर्वसुः ॥ ८९३ ॥ तिष्यंहस्तंतथार्द्राचक्रमात्पूर्वेषु
विन्यसेत् ॥ मैत्रंविशाखापौष्णंचनैर्ऋत्यंयमदैवतम् ॥८९४॥ वैश्वदेवाश्विनीचित्राक्रमाद्दक्षिणमास्थिताः ॥ पित्र्यम्प्रौष्ठपदार्यम्णंतथामां
सान्नदैवतम् ॥ ८९५ ॥ वारुणाश्विनसावित्र्यंक्रमात्पश्चिमसंस्थितम् ॥ स्वात्यश्लेषाभिजित्सौम्यंवैष्णवंवासवन्तथा ॥ ८९६ ॥
याम्यम्ब्राह्म्यंक्रमात्सौम्यन्द्वारेषुचविनिर्दिशेत् ॥ द्वारर्क्षैस्तद्दिशाद्वारंस्थापयेद्वाविचक्षणः ॥८९७स्तंभाद्यारोपणंशस्तन्तथैवविधिनाबुधैः ॥
अधोमुखैश्चनक्षत्रैर्देहलीखातमेवच ॥ ८९८ ॥ तिर्यङ्मुखर्क्षैर्द्वारर्क्षैस्तंभद्वारावरोपणम् ॥ प्रासादेषुचहर्म्येषुगृहेष्वन्येषुसर्वदा ॥८९९॥

ये नक्षत्र क्रमसे दक्षिणमें स्थितहों, मघा प्रौष्ठपद अर्य्यमा मासान्नदैवत (मूल) ॥९४॥ ८९५ ॥ शतभिषा अश्विनी हस्त ये क्रमसे पश्चिम
दिशामें स्थित हैं, स्वाति श्लेषा अभिजित् मृगशिर श्रवण धनिष्ठा ॥ ९६ ॥ भरणी रोहिणी ये क्रमसे उत्तरके द्वारमें स्थापन करै. बुद्धि-
मान् मनुष्य उस दिशाके द्वारके नक्षत्रोंमेंही उस दिशाके द्वारको बनवावै ॥ ९७ ॥ और स्तंभ आदिका स्थापनभी बुद्धिमान्
मनुष्य विधिसे करैं और अधोमुख नक्षत्रोंमें देहली खातको करै ॥ ९८ ॥ और तिर्यङ्मुखनक्षत्रोंमें और द्वारके नक्षत्रोंमें स्तंभ

और द्वारका स्थापन प्रासाद हर्म्य और गृहोंके बीचमें सदैव करै ॥ ९९ ॥ पहिलास्तम्भ आग्नेयदिशामें विधिसे स्थापन करै और स्तंभके ऊपर जब काक गीध आदि पक्षीयोंको देखै ॥ ९०० ॥ और खोटे निमित्तोंको देखकर कर्ताको शुभ नहीं होता तिस से स्तंभके ऊपर छत्र वा फलवालीशाखाको ॥ ९०१ ॥ अथवा वस्त्रको धारण करवादे अथवा बुद्धिमान् मनुष्य रत्नआदि स्थापन करै और शिलाद्वारके स्थापनमें दिशाका साधनभी करै ॥ २ ॥ स्तंभ वास्तुपुरुषके स्थापन गृहकर्म प्रासाद यज्ञमण्डप और बलि

आग्नेय्यांप्रथमंस्तंभंस्थापयेत्तद्विधानतः ॥ स्तंभोपरियदापश्येत्काकगृध्रादिपक्षिणः ॥ ९०० ॥ दुर्निमित्तानिसंवीक्ष्यतदाकर्तुर्न शोभनम् ॥ तस्मात्स्तंभोपरिच्छत्रंशाखांफलवतींतुवा ॥ ९०१ ॥ धारयेदथवावस्त्रंबुधोरत्नादिनिःक्षिपेत्॥दिक्साधनञ्चकर्तव्यंशिला द्वारावरोपणम् ॥ ९०२ ॥ स्तंभेचवास्तुविन्यासेतथाचगृहकर्मणि ॥ प्रासादेवातथायज्ञेमण्डपेबलिकर्मसु ॥ ९०३ ॥ कृत्तिको दयतः प्राचीप्राचीस्याच्छ्रवणोदये ॥ चित्रास्वात्यन्तरेप्राचीदिनप्राचीरवेस्थिता ॥ ९०४ ॥ यदिवाश्रवणंपुष्पंचित्रास्वात्योर्यदन्तरम् ॥ एतत्प्राचीदिशारूपंदण्डमात्रोदितेरवै ॥ ९०५ ॥ द्वादशाङ्गुलमानेनशंकुनावाप्रकल्पयेत् ॥ शिलातलेसुसंशुद्धेसुलिते समताङ्गते ॥ ९०६ ॥

कर्म इनमें दिक्साधन करै ॥ ३ ॥ कृत्तिकाके उदयमें और श्रवणके उदयमें प्राची दिशा होतीहै, चित्रा और स्वातिके अन्तरमें प्राची होतीहै और सूर्यकी स्थितिमें दिन प्राची होतीहै ॥ ४ ॥ यदि श्रवण पुष्य और चित्रा स्वातिका जो अन्तर यह प्राची दिशाका रूपहै. जब दण्डमात्र सूर्यका बिम्बउदय होचुकाहो ॥ ५ ॥ द्वादशांगुलके मानसे वा शंकुसे कल्पना करै, शिलाका तल भलीप्रकार

शुद्धहो और लिपाहो और समान हो ॥ ६ ॥ इष्ट शंकुके प्रमाणसे समान मण्डलको लिखै, उसके मध्यमें शंकुको स्थापन करै और दो रेखावाले वृत्तको अर्थात् गोल आकारको बनाकर क्रांतिके प्रवेशके लिये गमनके स्थानमें चिह्नकी कल्पना करै, फिर दूसरे दिन उसके मध्यमें शंकुका आरोपण करै (रक्खै) ॥ ७ ॥ उसमें चिह्न और उसका जो मान उन दोनों मानोंके जो अनंतर (समीप) उसी अनुमानसे विषुवत (तुलामेष) संक्रांतिके अंतके दिनतक साधन करै ॥ ८ ॥ जितने चिह्नोंका व्यवधानहो उतने वृत्तमें डारदे उनका शोधन करै वा योजन दक्षिण और उत्तर दोनोंमें करै अर्थात् घटादे वा मिलादे ॥ ९ ॥ क्रांतियोंके मध्यमें जो शेषरहै

इष्टशंकुप्रमाणेनसममण्डलमालिखेत् ॥ तन्मध्येस्थापयेच्छङ्कुंवृत्तंकृत्वाद्विरेखिकम् ॥ द्युतिप्रवेशायगमस्थानेचिह्नंप्रकल्पयेत् ॥ अपरेह्निचतन्मध्येशंकुमारोपयेत्ततः ॥ १०७ ॥ तत्रचिह्नश्चतन्मानम्मानयोर्यदनंतरम् ॥ तेनानुमानेनविषुवद्दिवसां तश्चसाधयेत् ॥ १०८ ॥ यावन्तोव्यवह्नियन्तेतावद्वृत्तेविनिक्षिपेत् ॥ शोधयेद्योजयेद्वापिदक्षिणोत्तरयोर्द्वयोः ॥ १०९ ॥ क्रान्त्योर्यदवशिष्येतंतत्प्राचीसमुदाहृता ॥ ११० ॥ अथद्वारफलानि ॥ ईशानमादितः पूर्वेआग्नेयाद्दक्षिणेस्थिताः ॥ नैर्ऋत्या त्पश्चिमेज्ञेयावायव्यात्सौम्यदिक्स्थिताः ॥ १११ ॥ पूर्वादिक्रमयोगेनहुताशेग्निभयंभवेत् ॥ पर्जन्येप्रचुरानार्य्योजयन्तेबहुवित्तदाः ॥ ११२ ॥ माहेन्द्रेनृपवात्सल्यंसूर्य्येतिक्रोधताभवेत् ॥ सत्येनृतत्वंविज्ञेयङ्क्रूरत्वश्चभृशंभवेत् ॥ ११३ ॥

वही प्राची दिशा कही है ॥ १० ॥ अब द्वारके फलोंका वर्णन करते हैं, ईशानसे पूर्वमें और अग्निकोणसे दक्षिणमें और नैर्ऋत्यसे पश्चिममें और वायव्यसे उत्तर दिशामें क्रमसे चार दिशा स्थित रहती हैं ॥ ११ ॥ पूर्व आदि दिशाके क्रम योगसे अग्निका वास होय तो अग्निका भय होता है, पर्जन्य (मेघ) होय तो अनन्त धनकी दाता बहुत नारी होती हैं ॥ १२ ॥ माहेंद्र (इंद्रधनुष) होय तो राजाकी दया होती है, सूर्य होय तो अत्यंत क्रोध होता है सत्य होय तो अनृत होता है और अत्यंत क्रूर स्वभाव होता है ॥ १३ ॥

अंतरिक्ष होय तो नित्य चोरोंका समागम होता है दक्षिणमें होय तो पुत्रका नाश वायव्यमें होनेसे दासभाव होता है ॥ १४ ॥ वितथ (झूट) में नीचता जाननी और घरमें संतति टिकती है. रेवती नक्षत्रमें द्वारको बनावै तो शूद्रकर्मकी करनेवाली संतान होती है. नैर्ऋत्यमें कर्ताका नाश होता है ॥ ९१५ ॥ भगराज (पूर्वाफा०) में धनहीन होता है, मघामें पश्चिममुखका द्वार बनावै तो अल्प आयु धनका अभाव महान् भय होताहै ॥ १६ ॥ सुग्रीव नामकेमें पुत्रका नाश पुष्पदंतमें वृद्धि वरुणमें क्रोध और भोग असुरमें

अन्तरिक्षेचविज्ञेयोनित्यश्चोरसमागमः ॥ दक्षिणेस्यात्पुत्रनाशोवायव्येप्रेष्यमेवच ॥ ९१४ ॥ नीचत्वंवितथेज्ञेयंगृहेतिष्ठतिसंततिः ॥ शूद्रकर्माभवेत्पौष्णेनैर्ऋत्येकर्तृनाशनम् ॥ ९१५ ॥ अधनंभगराजाख्येमृगेपुत्रविनाशनम् ॥ पश्चिमेपित्र्येस्वल्पायुरधनंदौवारिकेमहद्भयम् ॥ ९१६ ॥ सुग्रीवेपुत्रनाशः स्यात्पुष्पदन्तेतुवर्द्धनम् ॥ वरुणे क्रोधभोगित्वंनृपभङ्गस्तथासुरे ॥ ९१७ ॥ नित्यातिशोषिताशोकेपापाख्येपापसञ्चयः ॥ उत्तरेरोगवधौनित्यंनागेरिपुभयंमहत् ॥ ९१८ ॥ मुख्येधनसुतोत्पत्तिर्भल्लाटेविपुलाः श्रियः ॥ सोमेतुधर्मशीलत्वंभुजङ्गेबहुवैरता ॥ ९१९ ॥ कन्यादोषाःसदादित्येअदितौधनसञ्चयः ॥ पदेपदेकृतंश्रेष्ठंद्वारंसत्फलदायकम् ॥९२०॥ पदद्वयकृतंयच्चयद्वामिश्रफलप्रदम् ॥ सूत्रेनवद्धतेभागेवसुभागन्तथैवच ॥ ९२१ ॥

राजाका भंग होता है ॥ १७ ॥ शोकमें नित्य अत्यंत सूकापन, पापनामकेमें पापका संचय उत्तरमें नित्य रोग और मरण. नागमें महान् शत्रुका भय होता है ॥ १८ ॥ मुख्यमें धन और पुत्रोंकी उत्पत्ति, भल्लाटमें विपुल (बहुत) लक्ष्मी सोममें धर्मशीलता भुजंगमें बहुत वैर होता है ॥ १९ ॥ आदित्यवारको सदैव कन्याओंका जन्म अदिति नक्षत्रमे धनका संचय होताहै पदपदमें किया श्रेष्ठद्वार श्रेष्ठ फलको देता है अर्थात् काष्ठका प्रमाण पदप्रमाणकाहो ॥ ९२० ॥ और जो दोपदोंसे बनाया हो वह मिश्र फलको देता है.

नौ ९ से भागदिये सूत्रमें वा वस्तुभागके प्रमाणसे ॥ २१ ॥ प्रासादमें बुद्धिमान् मनुष्य द्वारको बनवावै और आवास (बसनेका घर) में कोई विचार नहीं है. अनेक द्वारोंके अलिंदों (देहली) में द्वारका नियम नहीं कहा है ॥ २२ ॥ और सदन (घरमें) जीर्णोद्धारमें और साधारण घरोंमें मूलमें द्वार (छिद्र) घटमें स्वस्तिकके समान करना ॥ २३ ॥ जिसका आतपत्र (छत्र) प्रथमगणोंसे आकीर्ण (युक्त) हो वह श्रेष्ठ होता है, वीथि (गली) प्रमाणसे परै जो दक्षिण पश्चिमका द्वार है वह ॥ २४ ॥ प्रथम आकीर्ण न करना चाहिये अथवा उस द्वारको सुखदायी बनवावै अर्थात् सुखसे जाने आने योग्य होना चाहिये. प्राकार और प्रपामें

प्रासादेकारयेद्विद्वानावासेनविचारणा॥बहुद्वारेष्वलिन्देषुनद्वारानियमः स्मृतः॥१२२॥सदैवसदनेजीर्णोद्धारेसाधारणेष्वपि॥ मूलद्वारंप्रकर्तव्यंघटेस्वस्तिकसन्निभम् ॥ १२३ ॥ यस्यातपत्रंप्रथमागणाकीर्णंप्रशस्यते ॥ वीथिप्रमाणात्परतोद्वारंदक्षिणपश्चिमे ॥ १२४ ॥ नकार्यम्प्रथमाकीर्णंसुखिनंवाप्रकल्पयेत् ॥ प्राकारेचप्रपायाञ्चद्वारंप्रागुत्तरंन्यसेत् ॥ १२५ ॥ द्विशालासुचतद्वच्चद्वारम्प्राग्वत्प्रकल्पयेत् ॥ चतुर्द्वारमयेदुर्गेद्वारदोषोनविद्यते॥१२६॥प्रधानंयन्महाद्वारम्बाह्याभित्तिषुसंस्थितम् ॥ रथ्याविद्धंनकर्तव्यंनृपेणभूतिमिच्छता ॥१२७॥ सरलेनचमार्गेणप्रवेशोयत्रवेश्मनि ॥ मार्गवेधंविजानीयान्नानाशोकफलप्रदम् ॥ १२८ ॥ तरुवेधंविजानीयाद्यदिद्वारमुखेस्थितम् ॥ कुमारमरणंज्ञेयंनानारोगश्चजायते ॥ १२९ ॥ अपस्मारभयंविद्याद्गृहाभ्यन्तरवासिनाम् ॥ द्वाराग्रेपंचवेधन्तुदुःखशोकामयप्रदम् ॥ १३० ॥

द्वार पूर्व और उत्तरमें बनवावै ॥ १२५ ॥ और द्विशालाओंमेंभी दुर्गमें द्वारका दोष नहीं होता है ॥ २६ ॥ जो प्रधान महाद्वार बाहिरकी भींतोंमें स्थित है इसको भूति (ऐश्वर्य) का अभिलाषी राजा रथ्यासे विद्ध न बनवावै ॥ २७ ॥ जिस घरमें सरल मार्गसे प्रवेश होता है उसमें मार्गके वेधको नानाशोकरूप फलोंका दाता समझै ॥ २८ ॥ यदि द्वारके मुखपर वृक्षस्थित होय तो उसको तरुवेध जानै उस वेधमें कुमारका मरण और नानाप्रकारके रोग होते हैं ॥ २९ ॥ और घरके भीतर जो बसते हैं उनको अपस्मार

(मिर्गी) रोगका भय जानना द्वारके आगे पांच प्रकारका वेध दुःख शोक और रोगको देता है ॥ ३० ॥ और द्वारमें जलका स्राव (वहना) हो वा मूलमें होय तो अनर्थोंका समूह होता है द्वारके आगे देवताका स्थान होय तो बालकोंको दुःखदायी होता है ॥ ३१ ॥ देवताके मंदिरका द्वार होय तो वह विनाश करता है और महादेवके मंदिरका द्वार ब्रह्माके स्थानके द्वारसे विंधा होय तो वह कुलको नष्ट करनेवाला होताहै ॥ ३२ ॥ घरके मध्यभागमें बनायाहुआ द्वार द्रव्य और धान्यका विनाशक होताहै. विना बात कलह शोकको और स्त्रियोंके वासमें दूषणोंको करताहै ॥ ३३ ॥ उत्तरमें जो पांचवा द्वार है उसको ब्रह्मासे विद्ध कहतेहैं

जलस्रावस्तथाद्वारेमूलेनर्थचयोभवेत् ॥ द्वाराग्रेदेवसदनंबालानामार्तिदायकम् ॥३१॥ देवद्वारंविनाशायशङ्करंद्वारमेवच ॥ ब्रह्मणोयच्च संविद्धंतद्भवेत्कुलनाशनम् ॥ ३२ ॥ गृहमध्येकृतंद्वारंद्रव्यधान्यविनाशनम् ॥ अवातकलहंशोकंनार्यावासंप्रदूषयेत्॥ ३३॥ उत्तरेपं चमंद्वारंब्रह्मणोविद्धमुच्यते ॥ तस्मात्सर्वंशिराह्येवमध्येचैवविशेषतः ॥३४॥ द्वारन्नकारयेद्धीमान्प्रासादेतुविपर्ययः ॥ देवतासन्निधाने तुश्मशानाभिमुखेतथा ॥ ३५ ॥ स्त्रीनाशंस्तंभवेधेस्यात्पाषाणेचतथैवच ॥ देवतासन्निधानस्थेगृहेगृहपतेः क्षयः ॥ ३६ ॥ स्मशा नाभिमुखेगेहेराक्षसाद्भयमादिशेत्.॥ चतुःषष्टिपदंकृत्वामध्येद्वारंप्रकल्पयेत् ॥ ३७ ॥ विस्ताराद्द्विगुणोच्छ्रायस्तत्त्रिभागःकटिर्भवेत् ॥ विस्तारार्द्धंभवेद्गर्भोवित्तंयोन्यः समन्ततः ॥ ३८ ॥

तिससे संपूर्ण शिराओं (कोण) में और विशेष कर मध्यभागमें ॥ ३४ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य द्वारको न बनवावै और प्रासादमें तो पूर्वोक्तसे विपर्यय (उलटा) होताहै. देवताके संनिधान (समीप) में और श्मशानके संमुख गृहमेंभी विपरीत फल समझै ॥ ३५ ॥ स्तंभके वेधमें और पाषाणके वेधमें स्त्रीका नाश होताहै देवताके संनिधानमें घर होय तो घरके स्वामीका क्षयहोताहै॥३६॥श्मशानके संमुख घरमें राक्षसोंसे भय होताहै इससे चतुःषष्टिपद वास्तुविधिको करके मध्यमें द्वारको बनवावै ॥ ३७ ॥ विस्तारसे दूनी ऊंचाई

126

और उंचाईका तीसराभाग पृष्ठ होताहै और विस्तारसे आधा गर्भ (चौक) होताहै और वित्तकी योनि चारोंतरफ हो तीहैं ॥ ३८ ॥ गर्भके पादसे विस्तीर्ण और द्विगुण ऊंचा द्वार होताहै और उंचाईसे पादमात्र विस्तारकी गूलरकी द्वारशाखा हो तीहै ॥ ३९ ॥ विस्तारके पादकी बराबर शाखाओंका बाहुल्य कहाहै और तीन, पांच, सात, नौ, शाखाओंका द्वार इष्ट होताहै ॥ ९४० ॥ उसको कनिष्ठ मध्यम ज्येष्ठ यथायोग्य बनवावै विस्तारसे दूनी उंचाई होतीहै वह चालीस हस्तोंसे उत्तम कहाहै ॥ ९४१ ॥

गर्भपादेनविस्तीर्णंद्वारन्द्विगुणमुच्छ्रितम् ॥ उच्छ्रायात्पादविस्तीर्णाशाखातद्वदुदुंबरा ॥ ९३९ ॥ विस्तारपादप्रमितंबाहुल्यंशाखयोः स्मृतम् ॥ त्रिपंचसप्तनवभिः शाखाभिर्द्वारमिष्यते ॥ ९४० ॥ कनिष्ठंमध्यमंज्येष्ठंयथायोगंप्रकल्पयेत् ॥ विस्ताराद्द्विगुणोच्छ्राय श्चत्वारिंशद्भिरुत्तमम् ॥ ९४१ ॥ धन्यमुत्तममायुष्यंधनधान्यकमेवच ॥ शतंचाशीतिसहितंवातनिर्गमनंभवेत् ॥ ९४२ ॥ अधिकंदश भिस्तद्वत्तथाषोडशभिः शतम् ॥ शतमानन्तृतीयन्तुभवत्यशीतिभिस्तथा ॥ ९४३ ॥ दशद्वाराणिचैतानिक्रमेणोक्तानिसर्वदा ॥ अन्यानिवर्जनीयानिमनसोद्वेगदानितु ॥ ९४४ ॥ द्वारवेधन्तुयत्नेनसर्वथापरिवर्ज्जयेत् ॥ गृहोच्छ्रायाद्द्विगुणितन्त्यक्त्वाभूमिंब हिःस्थितः ॥ ९४५ ॥

उत्तम घर धन्य आयुका दाता धनधान्यका वर्द्धक होताहै और घरमें १८० एकसौ अस्सी ऐसी खिडकी हों जिनमें पवनका गमन आगमन होताहो ॥ ४२ ॥ और तिसीप्रकार दशअधिक शत ११० वा सोलहसे अधिक शत ११६ अथवा शत हों वा तृतीय ७८ हों अथवा अशीति ८० ऐसे द्वार बनवावै ॥ ४३ ॥ ये दशप्रकारके द्वार क्रमसे सदैव कहेहैं और अन्य जो मनके उद्वेग करनेवा ले द्वारहैं वे सदैव वर्जित हैं ॥ ४४ ॥ और द्वारके वेधको तो यत्नसे सर्वथा वर्जे दे घरकी उंचाईसे दूनी भूमिको छोडकर बाह्य

भागमें द्वार स्थित रहताहै ॥ ९४५ ॥ और एक घरका वेध गृहके स्वामीको नहीं होताहै घरका आधा भाग गृहिणी जानना वह गृहसे पूर्व और उत्तरमें शुभहै ॥ ४६ ॥ वा पक्षिणी होतीहै इसप्रकारसे अन्यके बनवाये घर सिद्धिके दाता नही होतेहैं मुखके द्वार का जिससे अवरोध (रोक) हो ऐसे पृष्ठ द्वारको कदाचित न बनवावै ॥४७॥ यदि द्वारके मुखका अवरोध होजाय तो निश्चयसे कुलका नाश होताहै और पृष्ठके द्वारमें सबका नाश, और उन्माद होतेहैं और स्वयं उद्घटित(खोले)में भी यही अनिष्ट फल होतेहैं अर्थात शास्त्रो क्त रीतिसे द्वारको बनवावै अपनी इच्छासे नही ॥ ४८ ॥ प्रमाणसे न्यूनमें दुःख होताहै और प्रमाणसे अधिकमें राजाका भय होताहै

नदोषायभवेद्वेधोगृहस्यगृहिणस्तथा ॥ गृहार्द्धंगृहिणीज्ञेयागृहात्पूर्वोत्तराशुभा ॥ ९४६ ॥ पक्षिणीवातथैवस्यादन्यगेहानसिद्धिदाः ॥ पृष्ठद्वारन्नकर्तव्यंमुखद्वारावरोधनम् ॥९४७॥ पिहितेतुमुखद्वारेकुलनाशोभवेद्ध्रुवम् ॥ पृष्ठद्वारेसर्वनाशोन्मादःस्वयमुद्घाटितेतथा॥९४८॥ मानोनेव्यसनंकुर्यादधिकेनृपतेर्भयम् ॥ अर्द्धखंडंयदिद्वारंदलवेधंविनिर्दिशेत् ॥ ९४९ ॥ कपाटच्छिद्रवेधंचकपाटैवैक्षयोभवेत् ॥ यत्रविद्धंयदाद्वारंप्रासादेचधनक्षयः ॥७५०॥ स्तंभंवारवतेयस्यतस्यवंशक्षयोभवेत् ॥ त्रिकोणंशकटाकारंशूर्पंव्यजनसन्निभम् ॥ ५१ ॥ मुरजंवर्तुलन्द्वारम्मानहीनञ्चवर्जयेत् ॥ त्रिकोणेपीड्यतेनारीशकटेस्वामिनोभयम् ॥ ९५२ ॥ सूर्पेधनविनाशः स्याद्धनुषिकलहः स्मृतः ॥ धननाशस्तुमुरजेवर्तुलेकन्यकोद्भवः ॥ ९५३ ॥

यदि द्वार आधाखंडित होय तो अस्तके वेधको कहतेहैं ॥ ४९ ॥ जो कपाटका च्छिद्र होय तो कपाटछिद्रवेधको कहतेहैं. यदि यंत्रसे विद्ध द्वार होय तो प्रासादमें धनका नाश होताहै॥९५०॥ और जिस द्वारके स्तंभमें शब्द होताहो उसके वंशका नाश होताहै तिकोना शकटकी तुल्य सूप व्यजन इनके समान जो द्वार है ॥ ५१ ॥ मुरजाकार वर्तुल द्वारोंको और प्रमाणसे हीन द्वारोंको वर्जदे. त्रिकोणके द्वारमें नारीको पीडा होतीहै शकटके द्वारमें स्वामीको भय होताहै ॥ ५२ ॥ सूपके समान द्वारमें धनका नाश होताहै धनुषाकारमें

कलह कहाहै मुरजमें धनका नाश होताहै वर्तुल (गोल) द्वारमें कन्याओंका जन्म होताहै ॥ ९३ ॥ जो द्वार मध्यभागसें हीन हो
ताहै वह नाना शोकरूप फलोंको देताहैं. स्तंभके अग्रभागपर काष्ठ रक्खै पाषाणका धारण कदाचित् न करै ॥ ९४ ॥ राजाके मं
दिर और देवताके घरमें पाषाणोंकेही द्वार और शाखाओंको बनवावै और राजाओंके घरमें द्वारशाखाभी पाषाणोंसेही ब
नी हुयी होतीहै ॥ ९९५ ॥ और वही बनवानी. अन्यमनुष्योंके घरोंमें बुद्धिमान् मनुष्य कदाचित् न बनवावै और घरके मध्यभाग
में स्तंभ होय तो ब्रह्माका वेध कहाताहै ॥ ९६ ॥ और गृहके मध्यभागमें भींतकोभी न बनवावै क्योंकि उससे ब्रह्माका स्थान न छु

मध्यहीनंतुयद्द्वारंनानाशोकफलप्रदम् ॥ स्तंभाग्रेविन्यसेत्काष्ठंपाषाणन्नैवधारयेत् ॥ ९९४ ॥ नृपालयेदेवगेहेपाषाणानाञ्चकारयेत् ॥
द्वारशाखानृपाणांतुगृहेपाषाणनिर्मिता ॥ ९९५ ॥ कर्तव्यानेतरेषाञ्चकारयेन्मतिमान्नरः ॥ गृहमध्येकृतंस्तंभंब्रह्मणोवेधमुच्य
ते ॥ ९९६ ॥ भित्तिश्चैवनकर्तव्यानब्रह्मस्थानमुच्यते ॥ तत्स्थानंयत्नतोरक्षेद्गृहीकीलादिकैस्तथा ॥ ९९७ ॥ भांडेनाशुचिनात
द्वच्छल्येनभस्मनातथा ॥ रोगानानाविधाःशोकाजायंतेतत्रनित्यशः ॥ द्वारस्योपरियद्द्वारन्तद्द्वारंशकटंस्मृतम् ॥ ९९८ ॥
चतुष्षष्टचङ्गुलोत्सेधंचतुस्त्रिंशच्चविस्तरम्॥द्वारस्योपरियत्नेनशिवायशकटंचयत् ॥ अध्मातेक्षुद्रजंप्रोक्तंकुलेकुलविनाशनम् ॥ ९९९॥

टैगा इससे गृहस्थी ब्रह्माके स्थानकी यत्नसे रक्षाकरै और कील आदिकोंकी रक्षा करै ॥ ९७ ॥ और अशुद्धपात्रसे और शल्यसे
और भस्मसे नाना प्रकारके रोग उस घरमें होतेहैं. जहां ब्रह्माका वेध होताहै द्वारके ऊपर जो द्वार होताहै उस द्वारको
शकट कहतेहैं. ॥ ९८ ॥ चौसठ ६४ अंगुल ऊंचा और चौंतीस ३४ अंगुल चौडा द्वारके ऊपर जो शकट है वह यत्नसे
कल्याणके लिये रक्खै. यदि वह शब्द न करै तो क्षुद्रज कहाहै और कुलका नाशक होताहै ॥ ९९९ ॥

पीडित द्वार पीडाको करताहै. मध्यपीडितद्वार अभावको करताहै, बाहिरको उन्नतद्वार होय तो प्रवास होताहै दिशाओंमें भ्रान्त होय तो चौरोंसे भय दौर्भाग्य मरण रोग दरिद्र कलह ॥ ६० ॥ विरोध अर्थका नाश ये फल क्रमसे सब दिशाओंके वेधमें होतेहैं पूर्वमें फलवाले वृक्ष और पश्चिममें पद्म और उत्पलोंसे भूषित जल श्रेष्ठ होते हैं ॥ ६१ ॥ और चारों तरफ परिखा और वलय आदि बनवाने. दक्षिणमें तपोवनका स्थान और उत्तरमें मातृकाओंका घर बनवाना ॥६२॥ पश्चिममें लक्ष्मीका निवास वायव्यमें ग्रहोंकी

पीडाकरम्पीडितन्तुअभावंमध्यपीडितम् ॥ बाह्योन्नतेप्रवासः स्याद्दिग्भ्रान्तेदस्युतोभयम् ॥ दौर्भाग्यंनिधनंरोगादारिद्र्यङ्कलहन्तथा ॥ ॥९६०॥ विरोधश्चार्थनाशश्चसर्ववेधेक्रमाद्भवेत् ॥ पूर्वेणफलितावृक्षाः क्षीरवृक्षाश्चदक्षिणे ॥ पश्चिमेनजलंश्रेष्ठंपद्मोत्पलविभूषितम्॥९६१॥ सर्वतश्चापिकर्तव्यंपरिखावलयादिकम् ॥ याम्यन्तपोवनस्थानमुत्तरेमातृकागृहम् ॥ ९६२ ॥ वारुणेश्रीनिवासस्तुवायव्येगृहमालिका ॥ उत्तरेयज्ञशालातुनिर्माल्यस्थानमुच्यते ॥ ९६३ ॥ वारुणेसोमदैवत्येबलिनिर्वपणंस्मृतम् ॥ पुरतोवृषभस्थानंशेषेस्यात्कुसुमायुधम् ॥ ९६४ ॥ जलवापीतथैशान्येविष्णुश्चजलशायिनम् ॥ एवमायतनंकुर्याच्छुभमंडपसंयुतम् ॥ ९६५ ॥ घण्टावितानकसतोरणाचित्रयुक्तन्नित्योत्सवंप्रमुदितेनजनेनसार्द्धम् ॥ यः कारयेत्सुरगृहंभवनंध्वजाङ्कंश्रीस्तन्नमुञ्चतिसदादिविपूज्यतेच ॥ ९६६ ॥

पंक्ति उत्तरमें यज्ञकी शाला और निर्माल्यका स्थान बनाना कहाहै ॥ ६३ ॥ सोम है देवता जिसकी ऐसी उत्तरदिशामें बलिदान का स्थान कहाहै. पूर्वमें वृषोंका स्थान शेष और कामदेवका स्थान कहाहै ॥ ६४ ॥ जल और वापी और जलशायी विष्णु का स्थान कहाहै इस प्रकार शुभमण्डपोंसे युक्त स्थानको बनवावै ॥ ९६५ ॥ घंटा वितान तोरण चित्र इनसे युक्त और ध्वजा से चिह्नित और नित्य उत्साहके कर्ता प्रसन्नमनोंसे युक्त देवताके भुवनको जो मनुष्य बनवाताहै उसको लक्ष्मी कदाचित् नहीं

छोडती और वह सदैव स्वर्गमें पूजित रहताहै ॥ ६६ ॥ इस प्रकार द्वारपूजाकी विधिको करके जो द्वारबलिको करै और द्वारके मुखमें प्रवेशके समय महाध्वजाका स्थापन करै ॥ ६७ ॥ उसके सब कर्मोंमें पुत्र दार धन आदिकी वृद्धि होती रहती है. यह द्वारकी विधि ब्रह्माके मुखसे कही हुई कही जो मनुष्य विधिसे करताहै वह सुखी और पुत्रवान् होताहै ॥ ६८ ॥ इति वास्तुशास्त्रे द्वारनिर्माणे पण्डितमिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतिसहिते सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ अब क्रमसे वापी कूप तडाग पुष्कर

एवन्द्वारार्चनविधिङ्कृत्वाद्वारबलिन्ततः ॥ महाध्वजन्द्वारमुखेप्रवेशसमयेकृतम् ॥ ९६७ ॥ पुत्रदारधनादीनांवृद्धिदंसर्वकर्मणि ॥ इतिद्वार विधिः प्रोक्तोमयाब्रह्ममुखोदितः ॥ यः करोतिविधानेनससुखीपुत्रवान्भवेत् ॥९६८॥ इतिवास्तुशास्त्रेद्वारनिर्माणेसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ अधुनाकथयिष्यामिवापीकूपक्रियाविधिम् ॥ तडागपुष्करोद्यानमंडपानांयथाक्रमात् ॥ ९६९ ॥ आयव्ययादिसंशुद्धिंमासशुद्धिन्त थैवच ॥ यथागेहेदेवगेहेतथैवात्रविचारयेत् ॥ ९७० ॥ त्रिकोणश्चतुरस्रंचवर्तुलश्चोत्तमंस्मृतम् ॥ धनुषङ्कलशंपद्मंमध्यमंतज्जलाश्र यम् ॥ ९७१ ॥ सर्पोरगन्ध्वजाकारंन्यूनंप्रोक्तश्चनिन्दितम् ॥ कोशोधान्यंभयंशोकनाशनंसौख्यमेवच ॥९७२॥ भयंरोगन्तथादुःखङ्की र्तिन्द्रव्याग्निजंभयम् ॥ यशश्चक्रमतश्चैत्रमासादेतत्फलंस्मृतम् ॥ ९७३ ॥

उद्यान मण्डप इनके बनवानेकी विधिको क्रमसे कहताहुं ॥ ६९ ॥ आय और व्यय आदिकी भली प्रकार शुद्धिको और मास शुद्धिको यहां भली प्रकार विचारै; जैसे घर और देवमन्दिरमें कहआये हैं ॥ ९७० ॥ त्रिकोण चतुरस्र वर्तुल तडाग आदि उत्तम कहाहै और धनुष कलश पद्मके आकारका जलस्थान मध्यम कहाहै ॥ ७१ ॥ सर्प उरग ध्वजाके आकारका न्यून और निन्दित कहाहै और कोश धान्य भय शोकनाश सुख ॥ ७२ ॥ भय रोग और दुःख कीर्त्ति द्रव्य अग्निका भय और यश ये फल

क्रमसे चैत्रआदि मासमें जलस्थानके बनवानेमें कहेहैं ॥ ७३ ॥ रोहिणी तीनों उत्तरा पुष्य अनुराधा शतभिषा मघा और धनिष्ठा ये नक्षत्रोंका गण जलस्थानके बनवानेमें विहितहै आदित्यवारको जलस्थान बनवावै तो जलको शोष भौमवारको ॥ ७४ ॥ रिक्त शनैश्चरको मलिनता होतीहै शेषवार शुभदायी होते हैं नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा जो क्रमसे तिथि होतीहैं वे अपने नामके अनु सार फलको करतीहैं. ये कर्मकेकर्ताने कहाहै ॥ ७५ ॥ लग्नमें चंद्रमा होय वा जलोदय राशिका होय अथवा पूर्णचंद्रमा केन्द्र

रोहिणचोत्तरात्रीणिपुष्यंमैत्रञ्चवारुणम् ॥ पित्र्यञ्चवसुदैवत्यंभगणोवारिबंधने ॥ जलशोषोभवेत्सूर्य्येभौमेरिक्तंविनिर्दिशेत् ॥ ९७४ ॥ मन्देचमलिनंकुर्याच्छेषावाराः शुभावहाः ॥ नन्दाभद्राजयारिक्तापूर्णाचैवयथाक्रमात् ॥ यथानामफलन्तद्वत्कुर्यादित्याहकर्म कृत् ॥९७५ ॥ लग्नेशशाङ्केथजलोदयेवापूर्णः शशिकेन्द्रगतोव्ययेवा ॥ लग्नेथजीवोभृगुजेथसौम्येजलंचिरस्थंसुरसंसुगन्धम् ॥ ९७६॥ कुजेतृतीयेभृगुजेस्तगेचषष्ठेरवौलाभगतेर्कपुत्रे ॥ चन्द्रेष्टषष्ठोव्ययवर्जितेचप्रियंजलन्तद्भवतीहचित्रम् ॥ ९७७ ॥ सौरेतृतीयेमदनेचचन्द्रे षष्ठे रवौलाभगतेचभौमे ॥ केन्द्रेशुभैश्चाष्टमवर्जितैश्चजलंस्थिरंस्याद्धनपुत्रदञ्च ॥९७८ ॥ केन्द्रत्रिकोणेषुशुभस्थितेषुपापेषुकेन्द्राष्टम वर्जितेषु ॥ सर्वेषुकार्येषुशुभंवदंतिप्रासादकूपादितडागवाप्याम् ॥ ९७९ ॥

वा बारमें स्थानमें हो, लग्नमें बृहस्पति शुक्र वा बुध हों तो चिरकालतक स्थायी रसवाले सुगन्धित जलको कहै ॥ ७६ ॥ भौम लग्न से तीसरे हो, शुक्र सातमें हो छठे सूर्य हो ग्यारमें शनैश्चर हो चंद्रमा द्वादशभुवनको छोडकर छठे आठमें हो तो बडा प्रिय विचित्र जल होताहै ॥ ७७ ॥ शनैश्चर तीसरे हो चंद्रमा सातमें हो सूर्य छठे और भौम ग्यारमें स्थानमें हो अष्टमराशिको छोड कर शुभग्रह केन्द्रमें होय तो धन और पुत्रका दाता स्थिर जल होताहै ॥ ७८ ॥ केन्द्र और त्रिकोणमें शुभ ग्रह स्थितहों और

पापग्रह केन्द्र और अष्टमसे भिन्नस्थानमें होय तो सब कार्योंमें प्रासाद कूप तडाग वापी आदि शुभ होते हैं ॥ ७९ ॥ उस दिन चंद्रमाका उदयहो और बृहस्पति केन्द्रमें स्थितहो और पापग्रह उच्च भवनके होंय तो उद्यान कूप वापी तडाग जलाशयोंका करना अत्यंत श्रेष्ठ होता है ॥ ९८० ॥ सिंह वृश्चिक धनुको छोडकर सब लग्नोंमें जलके स्थानको शुभ कहतेहैं श्रेष्ठग्रहोंकी दृष्टि और सौम्य योगोंसे और जल राशियोंको नवांश और वर्गमें जलस्थानको बनवावै ॥ ८१ ॥ संपूर्ण दिशाओंमें जलके स्थानको बनवावै नैर्ऋत दक्षिण अग्नि और वायव्यादिशाको त्यागदे पूर्व उत्तर ईशान और पश्चिम दिशाओंमें कियाहुआ जलस्थान सुख और सुतका दाता होता है ॥ ८२ ॥

चन्द्रोदयेतद्दिवसेसुरेज्येकेन्द्रस्थितेचोपचयैः खलैश्च ॥ उद्यानकूपादितडागवापीजलाशयानाङ्करणम्प्रशस्तम् ॥ ९८० ॥ सर्वेषुलग्नेषुशुभंवदन्तिविहायसिंहालिधनुर्धरांश्च ॥ ग्रहःसदालोकनयोगसौम्ययोगात्प्रकुर्याज्जलभांशवर्गे ॥ ९८१ ॥ सर्वासुदिक्षुसलिलम्प्रकुर्याद्विहायनैर्ऋत्ययमाग्निवायून् ॥ पूर्वोत्तरेशानजलेशदिक्षुकृतंजलंसौख्यसुतप्रदञ्च ॥ ९८२ ॥ नपूर्वकंवारुणदिक्स्थितञ्चविवर्जयेन्मध्यगृहस्थितञ्च ॥ क्रमेणगर्गादिवसिष्ठमुख्यादिशास्थितानाञ्चजलाशयानाम् ॥ ९८३ ॥ पुत्रार्त्तिवह्नेश्चभयंविनाशः स्त्रीणाङ्कलिर्वाह्यथदौष्टचमेव ॥ नैःस्वन्धनम्पुत्रविवृद्धिरुक्तापूर्वादिदिक्षुफलमेतदेव ॥ ९८४ ॥ व्यासप्रमाणंद्विगुणञ्चगुण्यंहारस्यहारोत्तरतोत्तरस्य॥ मध्येष्टहारेष्वपिपिण्डसंज्ञमेकादिहाराविषमाःप्रशस्ताः ॥ ९८५ ॥

पूर्व और वरुणकी दिशामेंभी पूर्वोक्त फल होता है और गृहके मध्यमें स्थित जलस्थानको वर्ज दे और क्रमसे गर्ग वसिष्ठ हैं मुख्य जिनमें ऐसे ऋषि दिशाओंमें स्थित जलाशयोंका यह फल कहते हैं ॥ ८३ ॥ पुत्रकी पीडा अग्निका भय विनाश स्त्रियोंका कलह और दुष्टता धनका नाश धन और पुत्रोंकी विशेषकर वृद्धि यह पूर्व आदि दिशाओंमें जलस्थानका फल होता है ॥ ८४ ॥ जलस्थानके व्यासका जो प्रमाण उसको द्विगुणित करै और हारके उत्तरोत्तरके जो हार हैं उनके मध्यमें आठ हारोंमें पिण्ड संज्ञा

होती है उनमें एक आदि विषम हार (१, ३, ५, ७) श्रेष्ठ कहेहैं ॥ ९८५ ॥ एक हारके अन्तरपर सन्धिके स्थानमें जलस्थान दीखै तो
व्याधिविनाश भय महान् शोक होता है और हारके मध्यभागको छोडकर आदिअन्तमें जलस्थान होय तो सपत्नीके विनाशको
करता है ॥ ८६ ॥ पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणके जो छिद्र और हार हैं उनके मध्यभागमें जलस्थान होय तो शोक मरण और
बन्धुओंके नाशको करते हैं यह बात मध्यके हारोंमेंभी विचारने योग्य है ॥ ८७ ॥ जो हारके सूत्र आदि अन्तमें गतहों और
हारके मध्यभागमें जलाशय होय तो शुभ होता है इसीप्रकार हारके उत्तरोत्तर क्रमसे जलाशय भ्राता और कलत्रआदिको

एकान्तरंसन्धिसमेक्षितानांव्याधिर्विनाशोभयशोकमुग्रम् ॥ आद्यन्तयोर्मध्यवियुक्तमेतत्तदाविनाशंकुरुतेसपत्न्याः ॥ ९८६ ॥ पूर्वा
परौचोत्तरयाम्यगेषुच्छिद्रेषुहारेष्वपिमध्यभागे ॥ कुर्वन्तिशोकंवधबन्धुनाशंहारेषुमध्येष्वपिचिन्त्यमेतत् ॥९८७॥ आद्यन्तयोर्हारगते
षुसूत्रसर्वेषुहाराग्रगतेशुभास्यात् ॥ भ्रातॄन्कलत्रादियथोत्तराणिहारस्यहारोत्तरतोत्तरस्य ॥९८८॥ दिग्मध्यसंस्थाःशुभदानराणांव्यङ्गे
षुवन्धंपशुपत्तिनाशम् ॥ याम्योत्तरंहीनधनङ्करोतिहीनोदकंहीनधनङ्करोति ॥ ९८९ ॥ चतुर्थाष्टमगैःपापैर्लग्नगेवाखलग्रहे ॥ चन्द्रेष्टमे
तदाकर्ताम्रियतेमासमध्यतः ॥ ९९० ॥ केन्द्रपापग्रहैर्युक्तेअष्टमेचव्ययेपिवा ॥ धर्मस्थानगतैर्वापितज्जलंक्षीयतेचिरात् ॥ ९९१ ॥

श्रेष्ठ कहे हैं ॥ ८८ ॥ यदि दिशाके मध्यमें स्थित जलाशय होय तो मनुष्योंको शुभदायी होतेहैं ॥ और व्यंगभागमें होय तो
बंधन पशु और पतियोंका नाश होता है दक्षिण उत्तरमें जलाशय होय तो धन को हीन करता है और न्यून जल होय तोभी
धनको हीन करता है ॥ ८९ ॥ चौथे आठमें स्थानमें पापग्रह होय लग्नमें खलग्रह होय चंद्रमा अष्टम होय तो गृहका कर्ता एक मासमें
मरता है ॥ ९९० ॥ केन्द्र पापग्रहोंसे युक्त होय अथवा अष्टम ८ व्यय १२ स्थानमें होय तो थोडेही दिनमें जल, क्षीण(नष्ट) होता है॥९९१॥

134

शनैश्वर मंगल सूर्य ये केन्द्रस्थानमें हों चन्द्रमा अष्टम स्थानमें हो ऐसे लग्नमें बनवाये जलस्थानमें वर्षदिनभी जल नहीं टिकता ॥ ९२ ॥ एकभी पापग्रह अष्टममें स्थित हो चतुर्थ भवनमें राहु हो और नवमस्थानमें मंगल होय तो विषके समान उस जलस्थानका जल कहा है ॥ ९३ ॥ पूर्वोक्त मार्गसे नन्दा आदिकोंका पूजन करै ईशान आदि क्रमसे दिशाओंकरिके शोधित स्थलमें उनका स्थापन करै मध्यमें कुंभके ऊपर शुभ दिनके समय पूर्णाका स्थापन करै वरुणके मंत्रोंसे प्रथम वरुणकी पूजाको करके ॥९४॥ शिराके

केन्द्रगैःसौरिभौमार्कैरष्टमस्थेनिशाकरे ॥ तज्जलंवर्षमध्येतुनतिष्ठतिजलाश्रये ॥ ९९२ ॥ एकः पापोष्टमस्थोपिचतुर्थेसिंहिकासुतः ॥ नवमेभूमिपुत्रस्तुतज्जलंविषवत्स्मृतम् ॥ ९९३ ॥ नन्दाद्याः पूजनीयाश्चपूर्वोक्तेनैवमार्गतः ॥ ईशानादिक्रमेणैवन्यसेदिक्छोशोधिते स्थले ॥ मध्येपूर्णांविनिःक्षिप्यकुंभोपरिशुभेदिने ॥ वरुणस्यविधायादौपूजांमंत्रैश्चवारुणैः ॥ ९९४ ॥ वटवेतसकीलानांशिरास्थाने निवेशनम् ॥ ततोग्रहार्चनंवास्तुपूजाविधिमतःपरम् ॥ ९९५ ॥ सौम्यायनेकीटगतेपतङ्गेमधुंविनाशीतकरेसुपूर्णे ॥ तथांविरिक्तेविकृते चवारेकार्याप्रतिष्ठाचजलाशयानाम् ॥ ९९६ ॥ लग्नेषुसौम्यग्रहवीक्षितेषुकार्याप्रतिष्ठाखलुतत्रतेषाम् ॥ जलोदयेपूर्णशशीचकेन्द्रेजीवे विलग्नेभृगुजेस्तगेवा ॥ ९९७ ॥ एकोपिचान्येभवनेस्वकीयेकेन्द्रस्थितोवाशुभदोनराणाम् ॥ एकोपिजीवज्ञसितासितानांस्वोच्च स्थितानांभवनेस्वकीये ॥ ९९८ ॥

स्थानमें वट और वेंतकी कीलोंका निवेश करै फिर ग्रहोंकी पूजा और वास्तुपूजाको करै ॥९५॥ उत्तरायण सूर्य हो और वृश्चिकराशिका सूर्य हो और चैत्रके विना चंद्रमा पूर्ण हो और रिक्तासे भिन्न तिथि हों और विकृतवार होय तो जलाशयोंकी प्रतिष्ठा करनी॥९६॥लग्नको सौम्यग्रह देखते होंय तो जलाशयोंकी प्रतिष्ठा करनी पूर्णचंद्रमा जलोदयराशिका होय केन्द्रमें बृहस्पति होय लग्न वा सप्तम भवनमें शुक्र होय तो प्रतिष्ठा शुभ होती है ॥ ९७ ॥ और जो कोई अन्यग्रह अपने भवनके हों वा केन्द्रमें स्थित हों तो मनुष्योंको शुभदायी

होते हैं एकभी ग्रह बृहस्पति बुध शुक्र शनैश्चर अपने उच्चभवनके वा अपने भवनके हों॥९९८॥वा केन्द्र वा त्रिकोणमें होय तो मनुष्योंके लिये वह जल स्थिर और शुभदायी होता है ॥९९९॥ जो पुण्यात्मा मनुष्य नगरमें जलकी शालाको बनाते हैं वे तबतक विष्णुके संग आनन्द भोगते हैं जबतक पृथिवीमण्डलपर जल रहता है॥ १०००॥ इति वास्तुशास्त्रे जलाशयाधिकरणे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर हे विप्रेन्द्र काष्ठके छेदनकी विधिको श्रवणकरो देवदारु चंदन शमी (छोंकर) महुआ ये वृक्ष ॥ १ ॥ ब्राह्मणोंके लिये शोभन और सब

केन्द्रत्रिकोणोपगतानराणांशुभावहंतत्सलिलंस्थिरंस्यात् ॥ ९९९ ॥ येकुर्वन्तिनराःपुण्याःपुरेपानीयशालिकाम् ॥ विष्णुनासहमोदन्तेयावद्भूमण्डलेजलम् ॥ १००० ॥ इतिवास्तुशास्त्रेजलाशयादिकरणेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ अथातःशृणुविप्रेन्द्रदारूणांछेदनेविधिम् ॥ सुरदारुचन्दनशमीमधूकतरवस्तथा ॥ १००१ ॥ ब्राह्मणानांशुभावृक्षाःसर्वकर्मसुशोभनाः ॥ क्षत्रियाणान्तुखदिरम्बिल्वार्जुनकशिंशिपाः॥१००२॥शालतूनीकसरलानृपवेश्मनिसिद्धिदाः ॥ वैश्यानांखादिरंसिन्धुस्यन्दनाश्चशुभावहाः ॥१००३॥ तिंदुकार्जुनशाशाश्ववैसराम्राश्चकण्टकाः ॥ येचान्येक्षीरवृक्षाश्चतेशूद्राणांशुभावहाः ॥१००४॥ द्व्यंगराशिगतेसूर्येमाघेभाद्रपदेतथा ॥ वृक्षाणाञ्छेदनङ्काष्ठसञ्चयार्थंनकारयेत् ॥१००५॥ सूर्य्यर्क्षाद्वेदगोतर्कदिग्विश्वनखसम्मिते ॥ चन्द्रर्क्षेदारुकाष्ठानाञ्छेदनंशुभदायकम् ॥१००६॥

कर्मोमें श्रेष्ठ होतेहैं और क्षत्रियोंके खदिर बेल अर्जुन शिंशप (शिरस) ॥ १००२ ॥ शाल तुनिका सरल ये वृक्ष राजाओंके मंदिरों में सिद्धिके दाता होते हैं और वैश्योंके खदिर सिंधु स्यंदन ये शुभदाता होतेहैं ॥ ३ ॥ तिंदुक अर्जुन शाश वैसर आमकंटक और जो अन्य क्षीरवृक्ष हैं वे शूद्रोंको शुभदायी कहेहैं ॥ ४ ॥ द्विस्वःभावराशिके सूर्यमें माघमें और भाद्रपदमें काष्ठसंचय के लिये वृक्षोंका छेदन न करवावै ॥ १००५ ॥ सूर्यके नक्षत्रसे वेद ४ गो २ तर्क ६ दिक् १० विश्व १३ नख २० इन

की तुल्य चंद्रमाका नक्षत्र होय तो दारुकाष्ठोंका छेदन शुभदायी होताहै ॥ ६ ॥ सब वर्णोंके लिये शुभदायी पूर्वोक्त काष्ठ कहै और देवदारु चंदन शमी शिंशिपा खादिर ॥ ७ ॥ शाल और शालविस्तृत अर्थात् शालके समान जिनका विस्तारहो ये वृक्ष सबजातियोंमें श्रेष्ठहैं एकजातिके वा दोजातिके जो वृक्षहै ॥ ८ ॥ उनको ही सब घरोंमें लगावै तीन जातिसोंसे ऊपर न लगावै अर्थात् तीन प्रकारके काष्ठतक ही घरोंमें लगावै चार पांच जातिके नहीं और एक काष्ठके जो घर हैं वे सब दुःखोंके

सर्वेषामपिवर्णानांदारवःकथिताःशुभाः ॥ सुरदारुचन्दनशमीशिंशिपाःखदिरस्तथा ॥ १००७ ॥ शालाशालविस्तृताश्चप्रशस्ताःसर्व जातिषु ॥ एकजात्याद्विजात्यावात्रिजात्यावामहीरुहाः ॥ १००८ ॥ कारयेत्सर्वगेहेषुतदूर्द्ध्वंनैवकारयेत् ॥ एकदारुमयागेहाः सर्वशल्य निवारकाः ॥ १००९ ॥ द्विजात्यामध्यमाःप्रोक्तास्त्रिजात्याअधमाःस्मृताः ॥ क्षीरिणंफलिनश्चैवकण्टकाढ्यंचवर्जयेत् ॥ १०१० ॥ श्मशानेनाग्निनाचैवदूषितेप्यथवाभुवा ॥ वज्रेणमर्दितंचैववातभग्नंतथैवच ॥ मार्गवृक्षंपुराछन्नंचैत्यङ्कुलपञ्चदेवकम् ॥ १०११ ॥ अर्द्धभग्नार्द्धदग्धाश्चअर्द्धशुष्कास्तथैवच ॥ १०१२ ॥ व्यङ्गाःकुब्जाश्चकाणाश्चअतिजार्णास्तथैवच ॥ त्रिशीर्षाबहुशीर्षाश्चअ न्यवृक्षेणभेदिताः ॥ १०१३ ॥

निवारक कहेहैं ॥ ९ ॥ दो जातिके काष्ठ मध्यम और तीन जातिके अधम कहेहैं दूधवाले और फलके दाता और कंटक आदि वृक्षोंको वर्ज दे ॥ १०१० ॥ श्मशान अग्नि और भूमि इनसे दूषित और वज्रसे मर्दित और पवनसे भग्न (टूटा) मार्गका वृक्ष लताओंसे आछन्न (ढका) चैत्य (चबूतरा) का वृक्ष कुलका वृक्ष अर्थात् बडोंका लगायाहुआ वृक्ष देवनाका वृक्ष ॥ ११ ॥ अर्द्धभग्न अर्द्धदग्ध अर्द्धशुष्क अर्थात् जो आधे टूटे जले सूकेहों ॥ १२ ॥ व्यंग (तिरछे) कुब्ज (कुबडे) काण अत्यंत जीर्ण और तीन शिरके और बहुत

शिरके और दूसरे वृक्षसे ताडेहुए ॥ १३ ॥ और जो वृक्ष स्त्रीके नामसे प्रसिद्ध है ये पूर्वोक्त संपूर्णवृक्ष घरके कामोंमें वर्जने योग्य हैं दूधवाले वृक्ष दूधको और फलके दाता वृक्ष पुत्रोंको नष्ट करतेहैं ॥ १४ ॥ कंटकीवृक्ष कलहको करताहै और जिसपर काक बैठते हों वह धनका क्षय करताहै और गीधोंका वृक्ष महारोगको और श्मशानका वृक्ष मरणको देतेहैं ॥ १५ ॥ जिसपर बिजली गिरीहो वह वज्रके भयको देताहै और जो पवनसे दूषितहो वह वातकेभयको देताहै मार्गके वृक्षसे कुलका ध्वंस होताहै और पुरच्छन्न वृक्ष भयको देताहै ॥ १६ ॥ कुलके वृक्षसे मृत्यु और देववृक्षसे धनका नाश और चैत्यके वृक्षसे गृहके स्वामीकी मृत्यु और कुलदेवके वृक्षसे

स्त्रीनाम्नायेचतरवस्तेवर्ज्यागृहकर्मणि ॥ क्षीरिणःक्षीरनाशायफलिनःपुत्रनाशनम् ॥ १०१४ ॥ कण्टकीकलहङ्कुर्यात्काकाच्छन्नन्धन क्षयम् ॥ गृध्रवृक्षम्महारोगंश्मशानस्थंमृतिप्रदम् ॥ १०१५ ॥ वज्राङ्कंवज्रभयंदवातदंवातदूषितम् ॥ मार्गवृक्षेकुलध्वस्तंपुरच्छन्नं भयप्रदम् ॥ १०१६ ॥ कुल्यवृक्षेभवेन्मृत्युर्देववृक्षेधनक्षयम् ॥ चैत्येगृहपतेर्मृत्युर्दैववृक्षेभयम्भवेत् ॥१०१७॥ अर्द्धभग्नंविनाशायअर्द्ध शुष्कन्धनक्षयम् ॥ व्यङ्गेमृतप्रजाज्ञेयाः कुब्जेकुब्जास्तथैवच ॥ १०१८ ॥ काणेराजभयंविन्द्यादतिजीर्णेगृहक्षयः ॥ त्रिशीर्षेगर्भपातः स्याद्बहुशीर्षेमृतप्रजाः ॥ १०१९ ॥ अन्यभेदेशत्रुभयमुद्यानेखेभयन्तथा ॥ वल्लीवृतेदरिद्रत्वंपुष्पवृक्षेकुलक्षयः ॥ १०२० ॥

भय होता है ॥ १७ ॥ अर्द्धभग्न वृक्ष विनाशको और अर्द्धशुष्क धनके नाशको करतेहैं व्यंगमें प्रजा (संतान) का मरण जानना और कुब्जमें कुब्ज संतान होतीहै ॥ १८ ॥ काणवृक्षसे राजाके भयको जानै अत्यंत जीर्णवृक्षसे घरका क्षय होताहै तीन शिरके वृक्षसे गर्भका पात होताहै और अनेक शिरकेसे संतानका मरण होताहै ॥ १९ ॥ अन्यवृक्षसे जो भेदन किया हो उससे शत्रुका भय होताहै उद्यानके वृक्षसे आकाशमें भय होताहै और लताओंसे जो ढकाहो उससे दरिद्रता और पुष्पके

वृक्षसे कुलका नाश होताहै ॥ २० ॥ सर्पसे युक्त वृक्षसे सर्पका भय और देवालयके वृक्षसे नाश होताहै और कन्याका जि समें चिह्न हो उससे कन्याओंका जन्म होताहै छिद्रोंसे जो युक्त हो उससे स्वामीको भय होताहै लिंग वा प्रतिमा वा शक्र इंद्रध्वजा इनको ॥ २१ ॥ कृत्तिका आदि पांच नक्षत्रोंमें चंद्रमा होय तो कदाचित् न बनवावै घर देवालय इनमें यत्नसे इसकी परीक्षा करै और मासदग्ध वारदग्ध और तिथिदग्ध ॥ २२ ॥ और रिक्ता तिथि अमावस्या और षष्ठी ६ तिथि इनकोभी

सर्पयुक्ते सर्पभयन्देवालयगतेक्षयः। कन्याजन्मातुकन्याङ्केसच्छिद्रेस्वामिनोभयम् ॥ लिङ्गेवाप्रतिमायांवातथाशक्रध्वजेपिच ॥१०२१॥
आग्नेयपञ्चकेचन्द्रेनविदध्यात्कदाचन ॥ गृहेदेवालयेवापिपरीक्षेतप्रयत्नतः ॥ मासदग्धंवारदग्धंतिथिदग्धन्तथैवच ॥ १०२२ ॥
रिक्तातिथिञ्चदर्शञ्चतिथिंषष्ठींचवर्जयेत् ॥ एकार्गलन्तथाभद्रांयेचयोगाःकुसंज्ञकाः ॥ १०२३ ॥ उत्पातदूषितमृक्षंसंक्रातौग्रहणेषुच ॥
वैधृतौचव्यतीपातेनविदध्यात्कदाचन ॥ १०२४ ॥ सौम्यंपुनर्वसुंमैत्रंकरम्मूलोत्तराद्वये ॥ स्वातौचश्रवणेचैववृक्षाणाञ्छेदनंशुभम्
॥ १०२५ ॥ समभूमिर्वनेयस्मिंस्तस्मिन्वृक्षंप्रपूजयेत् ॥ गन्धपुष्पादिनैवेद्यम्बलिन्दद्याद्विशेषतः ॥ १०२६ ॥ वस्त्रेणाच्छादितङ्कृत्वा
वेष्टयेत्तंतुनातथा ॥ श्वेतवर्णानुवर्णेनवर्णानुक्तक्रमेणच ॥ १०२७ ॥

वर्जदे एकार्गल दोष और भद्रा और अन्य जो कुयोग है ॥ २३ ॥ और उत्पातसे दूषित जो नक्षत्र है संक्रांति ग्रहण वैधृति व्यतिपात इनमें घरको कदाचित न बनवावै ॥ २४ ॥ मृगशिर पुनर्वसु अनुराधा हस्त मूल दोनों उत्तरा स्वाति श्रवण इनमें वृक्षों का छेदन शुभदायी होताहै ॥ १०२५ ॥ जिस वनकी भूमि समान हो उस वनमें वृक्षका पूजन करै और गंध पुष्प आदि नैवेद्यको और विशेषकर बलिको दे ॥ २६ ॥ और वस्त्रसे आच्छादित (ढक) करके सूत्रसे लपेटे वर्णसे श्वेतवर्ण हो वा चार वर्णोंके युक्तवर्ण

का हो ऐसे सूत्रसे लपेटै ॥ २७ ॥ इन मंत्रोंसे उस वृक्षका यथायोग्य प्रार्थना करै और आचार्य अथवा सूत्रधार रात्रिके समय उस वृक्षके समीप अधिवास (शयन) करै ॥ २८ ॥ विधिका ज्ञाता आचार्य वृक्षका स्पर्श करके रात्रिके समय इसमंत्रका उच्चारण करै कि इस वृक्षमें जो भूत है उनके यहां स्वस्ति (कल्याण) हो और उनको नमस्कारहै॥२९॥इस बलीको ग्रहण करके अपने वासका पर्यय आप करो अर्थात् अन्यत्र जा वसो प्रार्थना करके वर मांगै हे वृक्षमेंश्रेष्ठ आपके कल्याणहो ॥ ३० ॥ घरकेलिये वा अन्य कार्यके लिये इस पूजाको

मंत्रैरेतैर्यथान्यायंप्रार्थयेत्तंपुनः पुनः॥आचार्यःसूत्रधारश्चरात्रौतमधिवास्यच॥१०२८॥स्पृष्ट्वावृक्षमिमंमंत्रंब्रूयाद्रात्रौविधानवित्॥यानीहवृक्षेभूतानितेभ्यःस्वस्तिनमोस्तुवः ॥१०२९॥ उपहारंगृहीत्वेमंक्रियतांवासपर्ययः ॥ प्रार्थयित्वावरयतेस्वस्तितेस्तुनगोत्तम ॥ १०३०॥ गृहार्थवान्यकार्यार्थंपूजेयंप्रतिगृह्यताम् ॥ परमान्नमोदकौदनदधिपल्लौलादिभिर्दशैः ॥ १०३१ ॥ मद्यैःकुसुमधूपैश्चगन्धैश्चैवतरुम्पुनः ॥ सुरपितृपिशाचराक्षसभुजगासुरविनायकाश्च॥ गृह्णन्तुमत्प्रयुक्तांवृक्षंसंस्पृश्यचब्रूयात्॥यानीहभूतानिवसंतितानिबलिंगृहीत्वाविधिवत्प्रयुक्तम् ॥१०३२॥ अन्यत्रवासंपरिकल्पयन्तुक्षमन्तुतानद्यनमोस्तुतेभ्यः ॥१०३३॥ वृक्षंप्रभातेसलिलेनासिक्त्वामध्वाज्यलिप्तेनकुठारकेण ॥ पूर्वोत्तरस्यांदिशिसंनिकृत्त्यप्रदक्षिणंशेषमतोविहन्यात् ॥ १०३४ ॥

ग्रहण करो परम अन्न जलौदन दधि पल्लोल आदि दशोंसे ॥ ३१ ॥ फिर मद्य पुष्प धूप गंध इनसे तरुकी पूजा करके कहै कि सुर पितर पिशाच राक्षस सर्प असुर विनायक ये सब मेरी दीहुई पूजा बलीको ग्रहण करो और फिर वृक्षका स्पर्श करके कहैकि जो भूत इसवृक्षमें वसते हैं वे विधिसे दीहुई मेरी बलीको ग्रहण करके ॥३२॥ अन्यस्थानमें वासको स्वीकारकरो और क्षमा करो अब उनको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ प्रातः कालके समय वृक्षको जलसे सींचकर सहत और घी जिसपर लिया हो ऐसे कुठारसे पूर्वउत्तरकी

140

दिशामें प्रदक्षिण क्रमसे भलीप्रकार छेदनकरके उसके अनंतर शेष वृक्षका छेदन करै ॥ ३४ ॥ और गोलाकारसे छेदन करै और वृक्षके पतनको देखतारहै पूर्व दिशामें गिरै तो धन और धान्यसे पूरित घर होताहै अग्निदिशामें पडै तो अग्निका दाह करता है दक्षिणका पतन मृत्युको देता है नैर्ऋत्यमें कलहको करताहै और पश्चिमका पतन पशुओंकी वृद्धिको देताहै ॥ १०३५ ॥ वायव्यमें चौरोंका भय होताहै उत्तरके पतनमें, धनका आगम होताहै ईशानमें महाश्रेष्ठ और अनेक प्रकारसे उत्तम होताहै ॥ ३६ ॥ और जो काष्ठ भग्न होताहै और अन्यवृक्षके मध्यमें जमेहुये वृक्षका जो काष्ठ होताहै वह घरमें लगाना श्रेष्ठ नहीहै किंतु वर्जित है और

छेदयेद्वर्तुलाकारंपतनञ्चोपलक्षयेत् ॥ प्राग्दिशःपत्तनङ्कुर्याद्धनधान्यंसमर्चितम्॥ आग्नेय्यामग्निदाहःस्याद्दक्षिणेमृत्युमादिशेत् ॥ नैर्ऋत्ये कलहंकुर्यात्पाश्चिमेपशुवृद्धिदम् ॥१०३५॥ वायव्येचौरभीतिःस्यादुत्तरेचधनागमम् ॥ ईशानेचमहाश्रेष्ठंनानाश्रेष्ठन्तथैवच ॥१०३६॥ भग्नंवायद्भवेत्काष्ठंयच्चान्यत्तरुमध्यगम् ॥ तन्नशस्तंगृहेवर्ज्यन्दोषदङ्कर्मकारयेत् ॥ १०३७ ॥ भग्नकाष्ठेहतानारीस्वामिनायुधसंज्ञके ॥ कर्मकर्त्तारमन्तस्थंधननाशकरम्महत् ॥ १०३८ ॥ एकमाद्यम्महाश्रेष्ठंधनधान्यसमृद्धिदम् ॥ पुत्रदारपशूंश्चैवनानारत्नसमान्वितम् ॥ १०३९ ॥ द्विभागंसफलम्प्रोक्तन्त्रिभागन्दुःखदंस्मृतम् ॥ चतुष्षष्ठेबन्धनञ्चपञ्चमेमृत्युमादिशेत् ॥ १०४० ॥

दूषित कर्मको करवाताहै ॥ ३७ ॥ भग्नकाष्ठमें नारीका मरण होताहै शस्त्रसे छेदनकिये काष्ठसे स्वामीका नाश होताहै मध्यका काष्ठ कर्मके कर्ता (मिस्त्री) को नष्ट करता है अधिकभी धनका नाशकारीहै ॥ ३८ ॥ एक भागका काष्ठ महाश्रेष्ठ होताहै और धन धान्यकी वृद्धिको देताहै और पुत्र दारा पशु और अनेक रत्नोंसे युक्त घरको करताहै ॥ ३९ ॥ दोभागका वृक्ष सफल कहाहै तीन भागका दुःखदायी होताहै और चार छः भागके बंधनको जानै और पांचभागमें मृत्युको कहै ॥ १०४० ॥

जर्जर(जीर्ण)में धनका नाश होताहै मध्यमें छिद्र रोगदायक होताहै निष्फल वृक्षसे वर निष्फल होताहै और सफलसे सफल होताहै॥४१॥ विरूप (बदसूरत) से धनका नाश होताहै सक्षत (घूना) से रोग होताहै अंगहीनसे दूधका नाश और विकट वृक्षसे कन्याओंका जन्म होताहै ॥ ४२ ॥ यदि काष्ठको पक्षभर जलमें पडा रक्खै तो कीटभक्षण कदाचित् न करै कृष्णपक्षमें छेदन करै बुद्धिमान् मनुष्य शुक्लपक्षमें कदाचित् न करै ॥ ४३ ॥ शकटोंसे वा मनुष्योंसे चारोंतरफके काष्ठको इकट्ठा करके वैन्या (वेणी) के नाशमें अर्थात् शकटकी फडके टूट जानेपर स्वामीका नाश होताहै औरोंके भंगमें बलका नाश कहाहै ॥ ४४ ॥ अक्ष (पहियां) के भेदन

जर्जरेधननाशः स्यान्मध्येछिद्रंगदप्रदम्॥निष्फलेनिष्फलङ्केहंसफलेफलमेवच ॥१०४१॥ विरूपेधननाशः स्यात्सक्षतेरोगमेवच ॥ ही
नाङ्गेक्षीरनाशश्चविकटेकन्यकोद्भवम् ॥१०४२॥ काष्ठन्नोभज्यतेकीटैर्यदिपक्षंधृतंजले ॥ कृष्णपक्षेछेदनञ्चनशुक्लेकारयेद्बुधः ॥ १०४३॥
उद्धृत्यकाष्ठंशकटैर्मनुष्यैर्वासमन्ततः ॥ वैन्यानाशेतस्यनाशः आरभङ्गेबलक्षयः ॥१०४४॥ अर्थक्षयोक्षभेदेचतथाभङ्गेचवर्धके: ॥ विज
यायभवेच्छ्वेतः पीतोरोगप्रदोमतः ॥१०४५॥ जयदश्चित्ररूपश्चरक्तैःशस्त्राद्भयंभवेत्॥प्रवेशेचैवदारूणांबालकाश्चापितारुणाः ॥१०४६॥
यद्वावाचङ्कथयन्तितत्तथैवभविष्यति ॥ रजुच्छेदेबालपीडापश्चभेदेतथैवच ॥१०४७॥ इतिप्रोक्तम्मयावृक्षच्छेदनार्थविधानतः॥ शकुना
निपरीक्षितदारुच्छेदनकर्मणि ॥ १०४८ ॥ इतिवास्तुशास्त्रेवृक्षच्छेदनविधौनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

से धनका नाश होताहै और वर्धक (रस्सी) के भंगमेंभी धनकी हानि होतीहै श्वेतकाष्ठ विजयकारी होताहै और पीत रोगका दाता मानाहै ॥ १०४५ ॥ चित्ररूपका काष्ठ जयका दाता होताहै रक्तकाष्ठके लगानेसे शस्त्रसे भय होताहै और काष्ठके प्रवेशमें रक्त वस्त्र धारणकियेहुए बालक ॥ ४६ ॥ और तरुण जिस वाणीको कहतेहैं वह उसीप्रकार सत्य होतीहै रज्जूके छेदन और यन्त्रके भेदमें बालकोंमें पीडा होतीहै ॥ ४७ ॥ यह वृक्षछेदनकी विधि मैंने कही काष्ठके छेदनकर्ममेंभी शकुनकी परीक्षा ले ॥ ४८ ॥
इति वास्तुशास्त्रे वृक्षच्छेदनविधौ पं० मिहिरचंद्रकृतभाषाविवृतिसहिते नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अब नवीनमन्दिरके प्रवेशका वर्णन करतेहैं उत्तरायण सूर्य–बृहस्पति और शुक्रके बलवान् होनेपर ज्येष्ठ माघ फाल्गुन वैशाख मार्गशिरमें गृहका प्रवेश श्रेष्ठ होताहै और आषाढमें मध्यमफलको देताहै माघमें प्रथम प्रवेश होय तो धनका लाभ होताहै फाल्गुनमें पुत्र और धनका लाभ ॥ ४९ ॥ चैत्रमें धनकी हानि और वैशाखमें धन धान्य पशुपुत्रका लाभ होताहै ज्येष्ठ मार्गशिर आषाढ मासोंमें प्रथमप्रवेश मध्यम कहाहै राजाओंकी यात्रा निवृत्ति होनेपर प्रथम वास्तुपूजा और भूतबलिको करै ॥ १०५० ॥ और

अथप्रवेशोनवमन्दिरस्य सौम्यायनेजीवसितेबलाढये ॥ स्याद्देशनंज्येष्ठतपोत्यमाधवेमार्गेशुचौमध्यफलप्रदंस्यात् ॥ माघेर्थलाभः प्रथमप्रवेशेंपुत्रार्थलाभः खलुफाल्गुनेच॥१०४९॥चैत्रेर्थहानिर्धनधान्यलाभोवैशाखमासेपशुपुत्रलाभः ॥ज्येष्ठेचमार्गेचशुचौचमासेमध्यः प्रदिष्टः प्रथमप्रवेशः ॥ यात्रानिवृत्तौमनुजाधिपानांवास्त्वर्चनम्भूतबलिञ्चपूर्वे ॥ १०५० ॥ दिनेप्रदद्यादथदिक्क्रमेणमांसंह्यसृक्चाप्ययुतञ्चतुर्षु ॥ येभूतानीतिमन्त्रेणचतुर्दिक्षुबलिंहरेत् ॥ १०५१ ॥ गृहमूलेबलिन्दद्याद्गृहस्योर्द्धतथैवच ॥ दद्याद्दीपम्पूर्वदिनेवास्तुपूजान्ततश्चरेत् ॥ १०५२ ॥ घृतन्दुग्धन्तथामांसंलड्डुकंमधुसंयुतम् ॥ पूर्वादिक्रमयोगेनबलिन्दद्याद्विशेषतः ॥ १०५३ ॥ स्कन्धधरादियक्षाणां ईशानादिक्रमेणच ॥ चकारादिबलिञ्चैवविदिक्षुविनिवेदयेत् ॥ १०५४ ॥ विष्णोररातिमन्त्रेणपूजयेद्वास्तुपूरुषं ॥ नमोस्तुसर्पेभ्यइतिसर्पराजंप्रपूजयेत् ॥ १०५५ ॥

वह बलिप्रवेशके दिनसे प्रथम दिन करै फिर दिशाओंके क्रमसे मांस और असृक्की बली चारों कोनोंमें दे और ये भूतानि इस मंत्रसे चारों दिशाओंमे बलि दे ॥ ५१ ॥ घरके मूलमे और घरकेऊपर बलि दे और पहिले दिन दीपदान करै फिर वास्तुपूजा करै ॥ ५२ ॥ घी दूध मांस लड्डु और सहत इनकी बलि पूर्वआदि दिशाओंके क्रमसे दे ॥ ५३ ॥ और स्कन्धधर आदि वृक्षोंको ईशानआदि क्रमसे चकोरआदिकी बलिको विदिशाओंमें दे ॥ ५४ ॥ विष्णोरराट इस मंत्रसे वास्तुपुरुषका पूजनकरै नमोस्तु सर्पेभ्यः० इसमंत्रसे सर्प

राजका पूजनकरै ॥१०५५॥ और अन्यदेवताओंकाभी गायत्री मंत्र कहाहै अपूर्वनामके घरमें यह विधि मैने कही ॥५६॥ शुभका अभिलाषी मनुष्य इसमें कालशुद्धिके विचारको करै कुंभके सूर्य और फाल्गुनमास मार्गशिर कार्तिक और आषाढमें॥५७॥नवीन घरके प्रवेशको सर्वथा वर्ज दे द्वंद्व (दो मनुष्योंका) और पुराना जो घरहो उसमें मासका दोष नही है ॥५८॥ चिरकालतक परदेशके वासमें राजाके दर्शनमें और घरके प्रवेशमें सूर्यको शुद्ध देखना और चंद्रमाके मासमें प्रवेश करना ॥ ५९ ॥ यात्राके समयसे नवमें वर्ष और नवम मास और नवम

अन्येषामपिदेवानाङ्गायत्रीमंत्रईरितः ॥ अपूर्वसंज्ञेतुगृहेविधिरेषउदाहृतः ॥ १०५६ ॥ कालशुद्धिविचारोत्रकर्तव्यः शुभमिच्छता ॥
कुम्भेकैंफाल्गुनेमार्गेकार्तिकेतुशुचौतथा ॥१०५७॥ नववेश्मप्रवेशन्तुसर्वथापरिवर्जयेत्॥द्वंद्वसौपूर्विकगृहेमासदोषोनविद्यते॥१०५८॥
सुचिरप्रवासेनृपतेर्दर्शनेगृहवेशने ॥ भानुशुद्धिःप्रकर्तव्याचांद्रमासेप्रवेशनम् ॥१०५९॥ निर्गमान्नवमेवर्षेमासेवादिवसेपिवा ॥ प्रवेशो
निर्गमश्चैवनैवकुर्यात्कदाचन ॥ १०६० ॥ यद्येकदिवसेराज्ञः प्रवेशोनिर्गमस्तथा ॥ तदाप्रावेशिकश्चिन्त्यंबुधैर्नैवतुयात्रिकम् ॥१०६१॥
गृहारम्भदिनेमासेधिष्ण्येवारेविशेद्गृहम् ॥ विशेत्सौम्यायनेहर्म्यन्तृणागारंतुसर्वदा ॥१०६२॥ कुलीरकन्यकाकुंभेदिनेशे नविशेद्गृहम् ॥
ग्रामंवानगरंवापिपत्तनम्वातथैवच ॥१०६३॥ मृदुध्रुवर्क्षैः शुभदन्नववेश्मप्रवेशनम्॥पुष्यस्वातीयुतैस्तैश्चजीर्णेस्याद्वासवद्वये ॥१०६४॥

दिनमें प्रवेशको न करै और प्रवेशके समयसे निर्गम (यात्रा) कोभी कदाचित् न करै ॥ १०६० ॥ यदि एकही दिनमें राजाका प्रवेश और गमन होय तो तब प्रवेशके समयकी शुद्धिको विचारै यात्राकी शुद्धिको न विचारै ॥ ६१ ॥ गृहके प्रारंभके जो दिन मास नक्षत्र वार हैं उनमेंही गृहप्रवेश करै गृहमें उत्तरायणके विषै प्रवेश करै और तृणके घरमें तो सदैव प्रवेश करै ॥ ६२ ॥ कुलीर (कर्क) कन्या कुंभ इनके सूर्यमें घर ग्राम नगर और पत्तन (शहर वा जिला) इनमें प्रवेश न करै॥६३॥मृदु ध्रुव (मृग चित्रा अनु० रे० उ०३रो०) संज्ञक नक्षत्रोंमें

नवीन घरका प्रवेश शुभदायी होता है और पुष्य स्वाति और धनिष्ठा शतभिषासे युक्त पूर्वोक्त नक्षत्रोंमें जीर्ण (पुराने) घरमें प्रवेश शुभ होता है ॥ ६४ ॥ क्षिप्रसंज्ञक और पुनर्वसु स्वाति श्रवण, धनिष्ठा भरणी पूर्वाषाढ पूर्वाभाद्रपद और दारुण संज्ञक नक्षत्रोंमें नवीन गृहमें प्रवेशको कदाचित् न करै ॥ ६५ ॥ उग्र नाम नक्षत्र घरके स्वामीको और दारुण नक्षत्र बालकको और विशाखा नक्षत्र स्त्रीके नाशको करता है और कृत्तिका नक्षत्रमें प्रवेशको करै तो अग्निसे भय होता है ॥ ६६ ॥ द्वारके जो नक्षत्र है उनमेंही प्रवेश होता है अन्य दिशामें स्थित नक्षत्रोंमें प्रवेश कदापि न करै और रिक्तातिथि भौमवार और शनिवारको प्रवेश न करै कोई आचार्य

क्षिप्रैश्चरैश्चनक्षत्रैर्नववेश्मप्रवेशनम् ॥ नकुर्यादुग्रनक्षत्रैर्दारुणैर्वाकदाचन ॥ १०६५ ॥ उग्रोहन्तिगृहपतिंदारुणेषुकुमारकम् ॥ द्विदैवभेपत्निनाशमग्निभेत्वग्निजंभयम् ॥ १०६६ ॥ प्रवेशनन्द्वारभैः स्यादन्यदिक्स्थैर्नकारयेत् ॥ रिक्तातिथिंभौमवारंशनिंवानैवकारयेत् ॥ केचिच्छनिंप्रशंसन्तिचौरभीतिस्तुजायते ॥ १०६७ ॥ कुयोगेपापलग्नेवाचरलग्नेचरांशके ॥ शुभकर्मणियेवर्ज्यास्तेवर्ज्यास्मिन्प्रवेशने ॥ नन्दायांदक्षिणद्वारंभद्रायाम्पश्चिमेनतु ॥ १०६८॥ जयायामुत्तरद्वारंपूर्णायांपूर्वमाविशेत् ॥ व्याधिदाधनहाचैववित्तदोबन्धुनाशकृत् ॥ १०६९ ॥ पुत्रहाशत्रुहास्त्रीघ्नः प्राणहापिटकप्रदः ॥ सिद्धिदोधनदश्चैवभयकृज्जन्मराशितः ॥ १०७० ॥

शनैश्चरकी प्रशंसा करते है परंतु उसमें चौरोंका भय होता है॥६७॥ और कुयोग और पापलग्न और चरलग्न और चरलग्नका नवांशक और शुभ कर्ममें जो वर्जित हैं वे इस प्रवेशमेंभी वर्जित हैं और नंदातिथिको दक्षिणद्वारमें और भद्रातिथिको पश्चिमके द्वारमें प्रवेश करै ॥ ६८ ॥ जयातिथिको उत्तरके द्वारमें और पूर्णा तिथिको पूर्वके द्वारमें प्रवेशको करै और व्याधिका नाशक धनका नाशक धनकादाता बंधुओंका नाशक ॥६९॥ और पुत्रका नाशक शत्रुका नाशक स्त्रीका नाशक प्राणका नाशक और पिटक (पटियारी) का दाता सिद्धिका दाता धनका दाता

भयका कारक ये बारह प्रकारके पूर्वोक्त फल जन्मकी राशिसे होते हैं ॥ १०७० ॥ लग्नमें स्थित क्रमसे प्रवेशमें जन्मलग्नसे राशि लेनी और लग्नभी सौम्य ग्रहोंसे युक्त लेना और क्रूर ग्रहोंसे युक्त लग्नको प्रवेशमें कदाचित्भी ग्रहण न करना ॥७१॥ और निंदितभी लग्न और नवांशक और यदि चरराशिकेभी हों और शुभग्रहके नवांशकसे युक्त होंय तो तब प्रवेशमें ग्रहण करने जो वे प्रवेशकर्ताकी राशिके उपचय भवनमें स्थित हों ॥ ७२ ॥ मेषलग्नमें प्रवेश करै तो दुवारा फिर यात्रा होती है कर्कलग्नमें प्रवेश करै तो नाश होता है तुला लग्नमें

लग्नस्थक्रमतोराशिर्जन्मलग्नात्प्रवेशने ॥ लग्नंसौम्यान्वितंकार्यन्नतुक्रूरैः कदाचन ॥ १०७१ ॥ निन्दिताअपिलग्नांशाश्चरराशिगता यदि ॥ शुभांशसंयुताः कार्याः कर्तृभोपचयस्थिताः ॥ १०७२ ॥ भूयोयात्राभवेन्मेषेनाशङ्कर्कटकेपिवा ॥ व्याधिंतुलाधरेलग्नेम करेधान्यनाशनम् ॥ १०७३ ॥ एतदेवांशकफलंयदिसौम्ययुतेक्षितौ ॥ चरांशेचरलग्नेन्नप्रवेशन्नैवकारयेत् ॥ १०७४ ॥ चित्राशत भिषास्वातीहस्तः पुष्यःपुनर्वसुः॥रोहिणीरेवतीमूलंश्रवणोत्तरफाल्गुनी॥धनिष्ठाचोत्तराषाढाभाद्रपदोत्तरान्विताः॥अश्विनीमृगशीर्षञ्चअ नुराधास्तथैवच ॥वास्तुपूजनमेतेषुनक्षत्रेषुकरोतियः॥ सम्प्राप्नोतिनरोलक्ष्मीमितिशास्त्रेषुनिश्चयः ॥ १०७५ ॥ नित्ययानेगृहेजीर्णेप्राश नेपरिधानके ॥ वधूप्रवेशेमाङ्गल्येनमौढ्यङ्गुरुशुक्रयोः ॥ १०७६ ॥

-करै तो व्याधि होती है मकरलग्नमें धान्यका नाश होता है ॥ ७३ ॥ यही फल नवांशकका होता है यदि वह नवांशक सौम्यग्रहसे युक्त और दृष्ट हो और चरराशिके नवांशकमें और चर लग्नमें प्रवेशको कदापि न करै ॥ ७४ ॥ चित्रा शतभिषा स्वाति, हस्त पुष्य पुनर्वसु रोहिणी रेवती मूल श्रवण उत्तराफाल्गुनी धनिष्ठा उत्तराषाढ उत्तराभाद्रपद अश्विनी मृगशिर अनुराधा इन नक्षत्रोंमें जो मनुष्य वास्तुपूजन करता है वह मनुष्य लक्ष्मीको प्राप्त होताहै यह शास्त्रोंके विषयमें निश्चय है ॥ १०७५ ॥ नित्यकी यात्रा पुराना

घर अन्नप्राशन वस्त्रोंका धारण वधूप्रवेश और मंगलके कार्य इन कार्यांमें गुरु और शुक्रके अस्तका दोष नहीं है ॥ ७६ ॥ त्रिकोण ९–५ और केंद्र १–४–७–१०–स्थानोंमें सौम्य ग्रह हों स्थिर द्विःस्वभाव लग्न हों और पापग्रह दूसरे त्रिकोण केंद्र और अष्टमस्थानसे अन्य स्थानोंमें स्थित हों ऐसे लग्नमें गृहप्रवेश करै ॥ ७७ ॥ अभिजित् श्रवणके मध्यमें प्रवेशमें सूतिकागृहमें नृप आदि और ब्राह्मण इनका तिरस्कार कदापि न करै ॥ ७८ ॥ क्रूर ग्रहसे युक्त और क्रूर ग्रहसे विद्ध और क्रूरग्रहसे मुक्त (छोडा हुआ) और जिसपर क्रूर ग्रह जानेवा

त्रिकोणकेन्द्रगैः सौम्यैः स्थिरेद्व्यङ्गेखलग्रहैः ॥ द्विकत्रिकोणकेन्द्राष्टवर्जितैः प्रविशेद्गृहम् ॥ १०७७ ॥ अभिजिच्छ्रवणयोर्मध्येप्रवे शेसूतिकागृहे ॥ नृपादीनांब्राह्मणानांनावधेयङ्कदाचन ॥ १०७८ ॥ क्रूरयुक्तङ्क्रूरविद्धंमुक्तंक्रूरग्रहेणच ॥ यद्गन्तव्यन्नतच्छस्तंत्रिविधो त्पातदूषितम् ॥ १०७९ ॥ लत्तयानिहतंयच्चक्रान्तिसाम्येनदूषितम् ॥ प्रवेशेत्रिविधेत्याज्यंग्रहणेनाभिदूषितम् ॥ १०८० ॥ यावच्चन्द्रेणभुक्तंतद्दक्षेनैवतुशोभनम् ॥ जन्मभाद्दशमङ्कर्मसांघातर्क्षन्तुषोडशम् ॥ १०८१ ॥ अष्टादशंसामुदायंत्रयोविंशंविनाश कम् ॥ मानसंपञ्चविंशाख्यंनाचरेदेषुशोभनम् ॥ १०८२ ॥ स्वोच्चसंस्थेगुरौलग्नेशुक्रेवावेश्मसंस्थिते ॥ यस्यात्रवेशोभव तितद्गृहंसौख्यसंयुतम् ॥ १०८३ ॥

ला हो और जो तीनप्रकारके उत्पातोंसे दूषित हो वह नक्षत्र प्रवेशमें श्रेष्ठ नहीं होता ॥ ७९ ॥ और जो नक्षत्र लत्तासे निहत हो और जो क्रांतिसाम्यसे दूषित हो और ग्रहणसे दूषित यह तीन प्रकारका प्रवेशमें त्याज्य है ॥ १०८० ॥ और जो चंद्रमाने भोगा हो वह भी श्रेष्ठ नहीं है और जन्मके नक्षत्रसे दशमा और युद्धका नक्षत्र और सोलहवां नक्षत्र ॥ ८१ ॥ अठारहवां समुदायका तेईसवा नक्षत्र विनाशक होते हैं मानस नामक पच्चीसवां इनमें शोभन कर्मको न करै ॥ ८२ ॥ अपने अपने उच्चस्थानका गुरु लग्नमें हो

अथवा शुक्र वेश्म भवनमें हो ऐसे लग्नमें जिसका प्रवेश होता है वह घर सुखसे युक्त रहता है ॥ ८३ ॥ और अपने उच्चका सूर्य लग्नमें हो चौथे भवनमें गुरु हो जिसका ऐसे लग्नमें योग (मिलना वा प्रवेश) होता है वह घर संपदाओंसे युक्त रहता है और गुरु लग्नमें हो और शुक्र अस्त हो छठे स्थानमें सूर्य हो लाभमें शनि हो ॥ ८४ ॥ यह योग जिसके प्रवेशकालमें हो वह घर शत्रुओंके नाशको देताहै लग्नमें शुक्र हो चौथे भवनमें गुरु हो लाभमें सूर्य हो छठे स्थानमें मंगल हो इस योगमें जो घरका प्रवेश हो वह शत्रुओंका नाश कर्ता होताहै ॥ १०८५ ॥ गुरु और शुक्र चौथे भवनमें हों मंगल और सूर्य लाभ ११ स्थानमें हों इस

स्वोच्चस्थेलग्नगेसूर्य्येंचतुर्थेदेवपूजिते ॥ यस्यात्रयोगोभवतिसंपदाढ्यंगृहंभवेत् ॥ गुरौलग्नेस्तगेशुक्रेषष्ठेर्केलाभगेशनौ ॥ १०८४ ॥ प्रवेशकालेयस्यायंयोगः शत्रुविनाशदः ॥ लग्नेशुक्रेसुखेजीवेलाभेर्केरिपुगेकुजे ॥ वेश्मप्रवेशोयोगेस्मिञ्शत्रुनाशकरः परः ॥ १०८५ ॥ गुरुशुक्रौचहिबुकेलाभगौकुजभास्करौ ॥ प्रवेशोयस्यभवतितद्गृहंभूतिदायकम् ॥ १०८६ ॥ एकोपिजीवज्ञशशिसितानांस्वोच्चगः सुखे ॥ खभेवातद्गृहंसौख्यदायकंलग्नगेपिवा ॥ अष्टमस्थेनिशानाथेयदियोगशतैरपि ॥ १०८७ ॥ तदातेनिष्फलाज्ञेयावृक्षाव ज्रहताइव ॥ क्षीणचन्द्रोन्त्यषष्ठाष्टसंस्थितोलग्नतस्तथा ॥ भार्याविनाशनंवर्षात्सौम्ययुक्तेत्रिवर्षतः ॥ १०८८ ॥

योगमें जिसका प्रवेश होताहै वह घर भूति (धन) का दाता होताहै ॥ ८६ ॥ गुरु बुध चंद्रमा शुक्र इनमेंसे एकभी ग्रह अपने उच्चका होकर सुख ४ में वा दशमभवनमें स्थितहो वा लग्नमें होय तो वह घर सुखका दाता होताहै अष्टमस्थानमें चंद्रमा होय तो चाहै सौभी उत्तम योग हों ॥ ८७ ॥ तोभी वे इस प्रकार निष्फल जानने जैसे बिजलीके हतहुये वृक्ष. यदि क्षीण चंद्रमा बारहमें छठे आठवें भवन हो वा लग्नमें होय तो एक वर्षमें भार्याका नाश होताहै और सौम्यग्रहसे युक्त लग्न होय तो तीन वर्षमें

भार्याका नाश होताहै ॥ ८८ ॥ जन्मके लग्नराशिसे आठवां स्थान और जन्मलग्नसे आठवां नवांशक इनमें सबकर्मोंको त्या गदे और करै तो जीवन दुर्लभ होताहै ॥ ८९ ॥ प्रवेशके लग्नसे अष्टम स्थानमें यदि कोईभी पापग्रह पडाहो यदि वह क्रूर राशि पर होय तो छः मासमें और शुभ राशिपर होय तो आठ वर्षमें स्वामीका नाश करताहै ॥ ९० ॥ रंध्र १० पुत्र ५ धन ९ आय ११ । इनसे पंचम भवनमें सूर्य स्थित होय तो क्रमसे पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर मुखके घरमें प्रवेश करै और गुरु देवता अग्नि विप्र इन को वाम भागमें रक्खै ऊर्ध्वपाद नक्षत्रोंसे धनका नाश होताहै ॥ ९१ ॥ उत्तर और पश्चिमको शिर करके शयन करै तो मृत्यु होतीहै और

जन्मभादष्टमंस्थानंलग्नाद्वाथतदंशकम् ॥ त्यजेत्तत्सर्वकर्माणिदुर्लभंयदिजीवितम् ॥ १०८९ ॥ प्रवेशलग्नान्निधनेयःकश्चित्पापखेचरः ॥ क्रूरर्क्षेहन्तिवर्षार्द्धाच्छुभर्क्षेवाष्टवत्सरात् ॥ १०९० ॥ रन्ध्रात्पुत्राद्धनादायात्पञ्चस्वर्केस्थितेक्रमात् ॥ पूर्वाशादिमुखङ्गेहाद्दिशे द्वामोभवेद्यतः ॥ गुरुदेवाग्निगोविप्रऊर्द्ध्वपादैर्द्धनक्षयम् ॥ १०९१ ॥ सौम्यंप्रत्यक्छिरोमृत्युर्वंशाद्यारुक्सुतार्तिदा ॥ प्राक्छिराःशयने विद्याद्दक्षिणेसुखसंपदः ॥ पश्चिमेप्रबलाचिन्ताहानिंमृत्युंतथोत्तरे ॥ १०९२ ॥ स्वगेहेप्राक्छिराः सुप्याच्छ्वाशुरेदक्षिणाशिरः ॥ प्रत्य क्छिरःप्रवासेतुनोदक्सुप्यात्कदाचन ॥ १०९३ ॥ अथशय्याशयनानांलक्षणम् ॥ कथयामिसमासेनदारुकर्मक्रमेणच ॥ आयशुद्धातथा कार्यायथागोहरिकुञ्जराः ॥ १०९४ ॥

शय्याके वंश आदिभी रोग और पुत्रोंको दुःख देतेहैं शय्या पर पूर्वको शिर किये शयन करै वा दक्षिणको शयन करै तो सुख और संपदाओंको सदैव प्राप्त होताहै और पश्चिमको शिर करनेसे प्रबल चिंता होतीहै और उत्तरको शयन करनेसे हानि और मृत्यु होतीहै ॥ ९२ ॥ अपने घरमें पूर्वको शिर किये शयन करे श्वशुरके घरमें दक्षिणको शिरकिये और परदेशमें पश्चि मको शिर किये शयन करै और उत्तरको शिर किये कदाचित नसोवै ॥ ९३ ॥ अब शय्या और शयनोंके लक्षणोंको कहते हैं

अब क्रमसे और संक्षेप रीतिके अनुसार काष्ठके कर्मको कहते हैं जैसे गौ अश्व हस्ति आय शुद्धिसे किये जाते हैं इसी प्रकार श
य्याभी आय (विस्तार) से शुद्ध बनवावै ॥९४॥ और तिसी प्रकार दोलिका यान (सवारी) येभी शोभाके अनुसार बनाने कहेहैं हे
विप्रेंद्र उस प्रमाणको तुम सुनो जो मुझे बृहद्रथसे मिलाहै ॥ ९५ ॥ और शय्याका वर्णन उस प्रकारसे कहताहूं जैसे मनुष्य सु
खको प्राप्त हो अशन स्पंदन चंदन हरिद्रु देवदारु तिंदुकी शाल काश्मरी अर्जुन पद्मक शाक आम्र शिंशपा ये वृक्ष शय्याके
बनानेमें शुभ होते हैं ॥ ९६ ॥ अशनि (बिजली) पवन हस्ति इनके गिराये हुये और जिनपे मधु (सहत) पक्षी इनका निवा

तथैवदोलिकायानंयथाशोभंविधीयते ॥ प्रमाणंशृणुविप्रेंद्रयत्प्राप्तोहंबृहद्रथात् ॥ १०९५ ॥ कथयामितथाशय्यायेनसौख्यमवाप्नुयात् ॥
अशनस्पन्दनचन्दनहरिद्रुसुरदारुतिंदुकीशालाः ॥ काश्मर्यार्ज्जुनपद्मकशाकाम्रांशिशिपाचशुभाः ॥ १०९६ ॥ अशनिजलानिलह
स्तिप्रपातितामधुविहङ्गकृतनिलयाः॥चैत्यश्मशानपथिजार्द्धशुष्कवल्लीनिबद्धाश्च॥कण्टकिनोयेस्युर्महानदीसङ्गमोद्भवायेच ॥१०९७॥
सुरप्रासादगायेचयाम्यपश्चिमदिग्गताः ॥ १०९८ ॥ प्रतिषिद्धवृक्षजायेयेचान्येपिअनेकधा ॥ त्याज्यास्तेदारवस्सर्वेशय्याकर्म
णिकर्मवित् ॥ १०९९ ॥ कृतेकुलविनाशः स्याद्व्याधिः शत्रोर्भयानिच ॥ ११०० ॥

स हो और चैत्य (चबूतरा) श्मशानमार्ग इनमें उत्पन्न और अर्द्धशुष्क और ल॰ओंसे बंधेहुये ॥ ९७ ॥ और कंटकी अर्थात्
जिनकी त्वचापर कांटे हों और जो महानदीयोंके संगममें उत्पन्नहों और जो [दे]वताके मंदिरमें हों और जो दक्षिण और पश्चि
म दिशामें उत्पन्न हुये हों ॥ ९८ ॥ और जो निषिद्ध वृक्षसे उत्पन्न हुयेहों और जो अन्यभी भिन्न भिन्न प्रकारके हैं वे संपूर्ण काष्ठ शय्या
के काममें कर्मके ज्ञाताको त्यागने योग्य हैं ॥ ९९ ॥ और इन पूर्वोक्त निषिद्ध वृक्षोंकी शय्या बनवानेसे कुलका नाश

व्याधि और शत्रुसे भय होताहै ॥ ११०० ॥ जहां शय्याके आरंभसे पहिला छेदन किया काष्ठ हो वहां शकुनोंकी परीक्षा करके उस काष्ठको ग्रहण करै श्वेतपुष्प दंत दधि अक्षत फल ॥११०१॥ जलसे पूर्ण घट और रत्न अन्य जो मंगलकी वस्तुहैं उनको देखकर संग्रह करै और अन्य शकुनोंकीभी परीक्षा करै और तुषोंसे रहित आठ जौ जिसके भीतर आजांय उसको अंगुल कहतेहैं ॥ २ ॥ उसी मानसे स्थपति (बढई) शयन आदिको बनावै सौ १०० अंगुलकी शय्या बडी कहीहै वह चक्रवर्ति राजाओंकी

पूर्वंच्छिन्नंयत्रदारुभवेदारंभयेत्ततः॥शकुनानिपरीक्षेतकुर्यात्तस्यपरिग्रहः॥श्वेतपुष्पाणिदन्त्यश्चदध्यक्षतफलानिच ॥११०१॥पूर्णकुम्भाश्चरत्नाश्चमङ्गल्यानिचयानिच ॥ तानिदृष्ट्वाप्रकुर्वीतअन्यानिशकुनानिच ॥ यवाष्टकानामुदरैर्वितुषैरङ्गुलंस्मृतम् ॥ ११०२ ॥ तेनमानेनस्थपतिः शयनादीन्प्रकल्पयेत् ॥ शताङ्गुलातुमहतीशय्यास्याच्चक्रवर्तिनाम् ॥ अष्टांशहीनमस्यार्द्धविस्तारम्परिकीर्त्तितम् ॥ ११०३ ॥ आयामस्त्र्यंशकोभागः पादोच्छ्रायःसकुक्षिकः ॥ सामन्तानाञ्चभवतिसाषड्नातथैवच ॥ कुमाराणाञ्चसाप्रोक्तादशोनाचैवमन्त्रिणाम् ॥ ११०४ ॥ त्रिषड्कोणावलेशानांविंशोनाचपुरोधसाम् ॥ षडंशहीनमस्यार्द्धविस्तारम्परिकीर्त्तितम् ॥ ११०५ ॥ आयामस्त्र्यंशकोभागस्त्र्यंशहीनस्तथैवहि ॥ पादोच्छ्रायश्चकर्तव्यश्चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलैः क्रमात् ॥ ११०६ ॥

होतीहै और आठ भागसे हीन जो इसका अर्द्धभागहै वह शय्याका विस्तार (चौडाई) कहाहै ॥ ३ ॥ और आयाम तीसरे भागका होताहै और पादोंकी उंचाई कुक्षि पर्यंत होतीहै ॥ वह शय्या सामंत राजा आदि और चतुर मनुष्योंकी होतीहै और उससे दश अंगुल कम राजकुमारोंकी और मंत्रियोंकी होतीहै ॥ ४ ॥ और अठारह अंगुल कम सेनापति और पुरोहितोंकी कहीहै इससे छः भाग कम जो इसका अर्द्धभाग है वह विस्तार कहाहै ॥ ५ ॥ तीसरे अंशका जो भाग है वह आयाम

होताहै अथवा तीसरे भागसे कम होता है और पादोंकी उंचाई चार तीन दो अंगुलोंके क्रमसे कहीहै अर्थात् इन अंगुलोंसे कम चतुर्थ भागकी उंचाइके पाये बनवावे ॥ ६ ॥ और संपूर्ण वर्णोंकी शय्या साढ़ेतीन हाथ और इकासी ८१ अंगुलों की बनवानी और वह देवनिर्मित शय्या कहातीहै ॥ ११०७ ॥ अशन का वृक्ष रोगका हर्ता होताहै तिंदुककी शय्या पित्तको करतीहै चंदनकी शय्या शत्रुको नष्ट करतीहै और धर्म आयुः यशको देतीहै ॥ ८ ॥ और शिंशपावृक्षसे उत्पन्न हुयी शय्या महान् समृद्धिको करती है और पद्मकका जो पर्यंक (पलंग) है वह दीर्घ अवस्था लक्ष्मी पुत्र अनेक प्रकारका धन और शत्रुओंका नाश इन स

सर्वेषामेववर्णानांसार्द्धहस्तत्रयंभवेत् ॥ एकाशीत्यङ्गुलैः कार्याशय्यादेवविनिर्मिता ॥ ११०७ ॥ अशनोरोगहर्ताचपित्तकृत्तिन्दुकोद्भवः ॥ रिपुहाचन्दनमयोधर्मायुर्यशदायकः ॥ ११०८ ॥ शिंशिपावृक्षसम्भूतः समृद्धिङ्कुरुतेमहान् ॥ यस्तुपद्मकपर्य्यङ्कोदीर्घमायुःश्रियंसुतम् ॥ वित्तम्बहुविधन्धत्तेशत्रुनाशन्तथैवच ॥ ११०९ ॥ शालःकल्याणदःप्रोक्तःशाकेनरवितस्तथा ॥ केवलश्चन्दनेनैवनिर्मितंरत्नचित्रितम् ॥ सुवर्णगुप्तमध्यासम्पर्यङ्कम्पूज्यतेसुरैः ॥ १११० ॥ अनेनैवसमायुक्ताशिंशिपातिन्दुकीतिच ॥ शुभासनन्तथादेवदारुश्रीपर्णिनापिवा ॥ शुभदौशाकशालौतुपरस्परयुतौपृथक् ॥ ११११ ॥ तद्वत्पृथक्प्रशस्तौहिकदम्बकहरिद्रकौ ॥ सर्वकाष्ठेनरचितोनशुभःपरिकल्पितः ॥ आम्रेणवाप्राणहरश्वासनोदोषदायकः ॥ १११२ ॥

बको करताहै ॥ ९ ॥ शाल कल्याणका दाता कहा है और शाक और सूर्यके वृक्षसे और केवल चंदनसे निर्मित पर्यंक जो रत्नोंसे जटितहो और जिसका मध्यभाग सुवर्णसे गुप्तहो अर्थात् सुवर्णसे मढाहो उस पर्यंककी देवताभी पूजा करतेहैं और ॥ १११० ॥ इसकेही समान शिंशपा और तिंदुकी कहीहै और शुभासन देवदारु और श्रीपर्णी ये पूर्वोक्तकेही समान होतेहैं और शाक और शाल शुभदायी होतेहैं ॥ ११ ॥ और तिसीप्रकार कदंब और हरिद्रक (हलद) येभी पृथक् २ श्रेष्ठ होतेहैं और सब काष्ठोंसे रचित पर्यंक शुभ नहीं कहाहै

और आम्रकी शय्या प्राणोंको हरती है और अशन दोषोंको देताहै ॥ १२ ॥ और अन्यकाष्ठसे सहित अशन वृक्ष धनके संक्षय को करता है और आम्र उदुंबर (गूलर) वृक्ष और चंदन और स्यंदन शुभ होतेहैं और फलवाले वृक्षोंके जो पर्यंक और आसन हैं वे विशेषकर फलके दाताहोते हैं ॥ १३ ॥ और हाथीके दांत सब योगोंमें शुभ फलके दाता कहेहैं और उत्तम चंदनसे इनका अलंकार करवावै और हाथीके दांतका जो मूल उसकी जो परिधि उतना विस्तार मुटाईका करै ॥ १४ ॥ और शय्याके जो फलक(पट्टी) के मूलमें और आसन कोणमें चिह्न होना चाहिये और जो किरिचर हैं (पीठकआदि) उनमेंभी किंचित् २ चिह्न श्रेष्ठ होताहै ॥ १५ ॥

अनेनसहितोह्येपकरोतिधनसंक्षयम् ॥ आम्रोदुम्बरवृक्षाणाञ्चन्दनस्पन्दनाशुभा ॥ फलिनान्तुविशेषेणफलदंशयनासनम् ॥ ११११३ ॥ गजदन्ताश्चसर्वेषांयोगेशुभफलाःस्मृताः ॥ प्रशस्तेनचदन्तेनकार्योलङ्कारएतयोः ॥ दन्तस्यमूलपरिधीव्यायतंप्रोह्यकल्पयेत् ॥११११४॥ शय्याफलकमूलेतुचिह्नञ्चासनकोणके ॥ न्यूनङ्किरिचराणान्तुकिंचित्किञ्चित्प्रशस्यते ॥ ११११५ ॥ श्रीवृक्षवर्द्धमानैश्चध्वजंछत्र ञ्चचामरम् ॥ छेदेदृष्टेतुह्यारोग्यंविजयन्धनवृद्धिदम् ॥ ११११६ ॥ प्रहरणाभेजयोज्ञेयोनन्द्यावर्तेलभेन्महीम् ॥ लोष्टेतुलब्धपूर्व स्यदेशस्याप्तिर्भविष्यति ॥ ११११७ ॥ स्त्रीरूपेअर्थनाशःस्याद्भृङ्गराजेसुतस्यच ॥ लाभःकुंभेनिधिप्राप्तिर्यात्राविघ्नश्चदण्डके ॥११११८॥ कृकलासभुजङ्गाभेदुर्भिक्षंवानरेणच ॥ गृध्रोलूकश्येनकाकसदृशामकरोमहान् ॥ ११११९ ॥

और श्रीवृक्ष और वर्द्धमान वृक्ष इनकी ध्वजा छत्र चामर बनवावै. यदि उनमें छिद्र दृष्ट आवै तो आरोग्य विजय और धनकी वृद्धिको देताहै ॥ १६ ॥ यदि प्रहरण (शस्त्र) के समान चिह्न होय तो जय जानना और नंद्यावर्त (गोल) होय तो पृथ्वीका लाभ स्वामीको हो ताहै और लोष्टके समान होय तो पहिले मिलेहुये देशकी प्राप्ति होतीहै ॥१७॥ स्त्रीका रूप दीखै तो अर्थका नाश होताहै और भांगरा दीखनेसे पुत्रका लाभ होताहै कुंभके दीखने पर निधिकी प्राप्ति होतीहै और दंडकमें यात्राका विघ्न होता है ॥ १८ ॥ कृकलास (करकंटा)

और भुजंगके समान वा वानर दखै तो दुर्भिक्ष होताहै गीध उलूक श्येन काकके समान महान् मकर होय तो ॥ १९ ॥ और पाश
बाधकका बंध होय तो मृत्यु और जनोंसे विपत्ति होतीहै रुधिरका स्राव कृष्णशव (मुर्दा)ये दीखै तौ दुर्गंधवान् होताहै ॥ ११२० ॥
और शुक्र समान सुगंध चिकने छेद होय तो शुभ होताहै अशुभ और शुभ जो छेद है वे शय्यामें शुभदायी होते हैं ॥ २१ ॥ ईशान
दिशाआदिमें प्रदक्षिणक्रमसे छेद होय तो श्रेष्ठ होताहै और वामक्रमसे तीन दिशाओंमें होय तो भूतका भय होताहै ॥ २२ ॥ एकवार
केही विशरण (छेदन) में विकलता पादमें होजाय तो शुभ होताहै और दो विशरणोंसे पवनका तरना नहीं होताहै तीन चार

पाशेवाथकबन्धेवामृत्युर्जनविपद्भवेत् ॥ रक्तस्नुतेचकृष्णेचशावेदुर्गन्धिवान्भवेत् ॥ ११२० ॥ शुक्रैःसमैःसुगन्धैश्चस्निग्धैश्छेदः
शुभावहः ॥ अशुभाचशुभायेचछेदास्तेशयनेशुभाः ॥ ११२१ ॥ ईशादिगोप्रदक्षिण्याप्रशस्तमथवातथा ॥ अपसव्येदिक्त्रये
चभयम्भवतिभूतजम् ॥ ११२२ ॥ एकेनवाविशरणेवैकल्यंपादतःशुभम् ॥ द्वाभ्यांनतीर्यतेवातंत्रिचतुः क्लेशबन्धदौ ॥ ११२३ ॥
सुषिरेवाविवर्णेवाग्रन्थौपादेशरेतथा ॥ व्याधिः कुम्भेथवापादेग्रन्थिर्वेदनरोगदा ॥ ११२४ ॥ कुम्भाद्यभागेजंघायांजंघारोगन्तथाभ
वेत् ॥ तस्याश्चाधोपदाधोवाद्रव्यनाशकरःपरः ॥ ११२५ ॥ खुरदेशेयदाग्रन्थिःखुराणाम्पीडनंभवेत् ॥ राशिशीर्षेत्रित्रिभागसंस्थो
पिनशुभप्रदः ॥ ११२६ ॥ निष्कुटश्चाथकोलाख्यंघृष्टिनेत्रश्चवत्सकम् ॥ कोलकम्बंधुकश्चैवसंक्षेपंः छिद्रकस्यतु ॥ ११२७ ॥

विशरण क्लेश और बंधके दाताहोते हैं ॥ २३ ॥ छिद्र वा विवर्ण दीखै वा ग्रंथि वा शरपादमें दीखै तो व्याधि होतीहै कुंभ वा पादमें ग्रंथि
होय तो मुखरोगको देतीहै ॥ २४ ॥ कुंभके प्रथमभाग वा जंघामें छिद्र होय तो रोग होताहै उसके नीचे वा पादके नीचे छिद्र हो
य तो परम रोग होताहै ॥ ११२५ ॥ खुरके स्थानमें ग्रंथि होय तो खुरोंमें पीडा होतीहै यदि राशि (ग्रंथि) शिरके तीन २ भागमें स्थित
होय तो शुभदायी नहीं होती ॥ २६ ॥ और निष्कुट और कोलाख्य और घृष्टिनेत्र वत्सक कोलक और बंधुक इतने प्रकारके छिद्र

संक्षेपसे होतेहैं ॥ २७ ॥ घटके समान जो छिद्रहो उसे संकट और निष्कुट कहतेहैं. और छिद्र अपवित्र और नीलहो उसको बुद्धिमान् मनुष्य कोलाख्य कहतेहैं ॥ २८ ॥ जो छिद्र विषम हो उसे धृष्टिनयन कहतेहैं और जो विवर्ण हो और जिसका मध्यभाग दीर्घ हो और जो वाम आवर्तसे भिन्न हो वह यथायोग्य छिद्र वत्सनाभ कहाताहै ॥ २९ ॥ जिसका वर्ण कृष्ण हो वह कोलक होताहै और जो दो प्रकारका हो वह बंधुक होताहै और समान वर्ण जिसमें हो ऐसे छिद्रको दार और पापभी कहतेहैं ॥ ११३० ॥ निष्कुट

घटवत्सुषिरश्चैवसङ्कटाख्यंचनिष्कुटम् ॥ छिद्रन्निःपावनीलश्चकोलाख्यन्तद्बुधैःस्मृतम् ॥ ११२८ ॥ विषमंघृष्टिनयनम्वैवर्ण्यम्मध्यदीर्घकम् ॥ वामावर्त्तेचभिन्नंचयथावद्वत्सनाभकम् ॥ ११२९ ॥ कोलकङ्कृष्णवर्णञ्चवन्धुकंयद्द्वयोर्द्विधा ॥ दारंसवर्णछिद्रंचतथापापम्प्रकीर्तितम् ॥ ११३०॥ निष्कुटेद्रव्यनाशःस्यात्कोलाख्येकुलनाशनम् ॥ शस्त्राद्भयंशूकरेचवत्सनाभङ्गदप्रदम् ॥११३१॥ कालबन्धूकसंज्ञश्चकीटैर्वर्धनशोभनम् ॥ सर्वग्रन्थियुतंयच्चदारुसर्वत्रनोशुभम् ॥ ११३२ ॥ एकद्रुमेणधान्यंस्याद्वृक्षद्वयविनिर्मितम् ॥ धन्यंत्रिभिश्चपुत्राणांवृद्धिदम्परिकीर्तितम् ॥ ११३३ ॥ अर्थयशश्चतुर्भिश्चपञ्चत्वम्पञ्चभिःस्मृतम् ॥ षट्सप्तरचितेकाष्ठे कुलनाशोभवेद्ध्रुवम् ॥ ११३४ ॥

में द्रव्यका नाश होताहै कोलाख्यमें कुलका नाश और शूकरमें शस्त्रसे भय होताहै. और वत्सक भंगको देता है ॥ ३१ ॥ काल बंधूक नामका छिद्र कीटोंकी वृद्धि और शुभदायी होताहै और जो काष्ठ सर्वत्र ग्रंथियोंसे युक्तहै वह सब कामोंमें शुभ नहीं होताहै ॥ ३२ ॥ एक वृक्षके काष्ठसे धान्य होताहै और दो वृक्षोंसे जो पर्यंक आदि बनाया हो वह धन्य होता है तीन वृक्षोंका काष्ठ जिसमें लगाहो वह पुत्रोंकी वृद्धिका दाता कहा है ॥ ३३ ॥ और चार वृक्षोंसे धन और

यश होता है और पांच वृक्षोंके काष्ठ लगानेसे मरण होताहै और छः सात वृक्षोंके काष्ठसे रचेहुयेमें निश्चयसे कुलका नाश होता है ॥ ३४ ॥ वृक्षोंके शिर और मूलको क्रमसे अग्रभाग और पाद कहते हैं और विना वनके चंदनमें तो जिस भागमें मूल है उसी भागमें शिर होता है ॥ ११३५ ॥ भो ब्राह्मणों यह मैं शयन और आसनका लक्षण कहा और भंगमेंभी दोष कहे और स्वामिसहित भंगमेंभी दोषोंका वर्णन किया ॥ ३६ ॥ पादमें भंग होय तो मूलका नाश होता है अरणि होय तो धनका नाश होता है शिरमें होय तो मरण जानै और पादमें छिद्र होय तो महान् हानि होती है ॥ ३७ ॥ घंटाके आकारका चक्र लिखै और उसपर सूर्यके

शिरोमूलञ्चवृक्षाणामग्रेपादाःप्रकीर्तिताः ॥ अनारण्येचन्दनेतुयतोमूलन्ततःशिरः ॥ ११३५ ॥ इतिप्रोक्तम्मयाविप्राःशयनासनलक्षणम् ॥ भङ्गेचदोषाःकथिताःस्वामिनासहितेनच ॥ ११३६ ॥ पादभङ्गेमूलनाशमरणौधनसंक्षयः ॥ शीर्षेतुमरणंविद्यात्पादेहानिर्महान्भवेत् ॥ ११३७ ॥ घण्टाकारंलिखेच्चक्रंरविधिष्ण्यक्रमेणच ॥ शुद्धेशुभेदिनेचैवकृत्वातांनिशिविंन्यसेत् ॥ ११३८ ॥ शयीतदक्षिणेगेहेसुस्वप्नंशुभदंभवेत् ॥ मुखैकंदिक्षुचत्वारित्रीणिचगुदकण्ठयोः ॥ ११३९ ॥ एवञ्चक्रंसमालिख्यप्रवेशार्थंसदाबुधैः ॥ अग्निनाशोमुखेप्रोक्तउद्वासःपूर्वतोभवेत् ॥ दक्षिणेचार्थलाभश्चपश्चिमेश्रीप्रदोभवेत् ॥ ११४० ॥

नक्षत्रसे सब नक्षत्रोंको क्रमसे लिखै और शुद्ध शुभदिनमें उसे बनाकर रात्रिको रखकर ॥ ३८ ॥ और दक्षिणके घरमें शयन करै यदि शयनके समयमें स्वप्न श्रेष्ठ होय तो सुखदायी होताहै और मुखमें एक नक्षत्र और चारों दिशाओंमें चार २ और गुदा और कंठमें तीन २ लिखै ॥ ३९ ॥ प्रवेशके लिये बुद्धिमान् मनुष्य इसचक्रको भलीप्रकार लिखै. मुखके नक्षत्रोंमें प्रवेश होय तो अग्निका नाश कहा है पूर्वके नक्षत्रोंमें उद्वास होताहै दक्षिणके नक्षत्रोंमें धनका लाभ होता है पश्चिमके नक्षत्रोंमें जो प्रवेश है वह लक्ष्मीको

156

देताहै ॥ ४० ॥ उत्तरके नक्षत्रोंमें कलह और गर्भके नक्षत्रोंमें गर्भका नाश होताहै और कलशकी गुदा और कंठमें स्थिरता कही है ॥ ४१ ॥ स्नान करके शुद्ध और निराहार और भूषणोंसे भूषित और पुत्र और दारोंसे युक्त और मंत्री और पुरोहितों सहित यजमान गंध पुष्प नवीन वस्त्र इनको धारण करके ॥ ४२ ॥ और पुष्पमालाओंसे युक्त रुचिर और चित्रोंसे चित्रित प्राकारको माला से लपेटै और शोभित किये उसको ॥ ४३ ॥ मार्गमें वस्त्रोंसे आच्छादित मार्गको करके राजा सुखदायी आसनपर बैठकर और

उत्तरेकलहश्चैवगर्भेगर्भविनाशनम् ॥ स्थिरताचगुदेकण्ठेकलशस्यप्रकीर्तिता ॥ ११४१ ॥ स्नातःशुचिर्निराहारोलङ्कारे णविभूषितः ॥ पुत्रदारसमायुक्तःसामात्यःसपुरोहितः ॥ ११४२ ॥ गन्धपुष्पञ्चवस्त्रञ्चपरिधायपुनर्नवम् ॥ पुष्पमालान्वि तङ्कार्यंरुचिरश्चित्रचित्रितम् ॥ प्राकारंम्वेष्टयेत्तत्रमालयापरिशोभितम् ॥ ११४३ ॥ वस्त्रेणाच्छादितम्मार्गङ्कृत्वाराजासुखासने ॥ निवेश्याग्रेतथाराज्ञींनिवेश्यविजितेन्द्रियः ॥ गीतोत्सवादिभिर्युक्तोगीतवाद्यादिसंयुतः ॥ ११४४ ॥ अग्रेसुपूर्णान्कलशान्विप्रान्वे दविशारदान् ॥ गायकान्गणिकाश्चापिसुवासिन्योविशेषतः ॥ ११४५ ॥ व्यस्तैर्यात्रादिशकुनैर्द्वारमार्गेणभूपतिः ॥ वितानैस्तो रणैःपुष्पैःपताकाभिर्विशेषतः ॥ ११४६ ॥ अलङ्कृत्यनवंगेहंदेहलींपूजयेत्ततः ॥ दिक्पालांश्चतथाक्षेत्रपालंग्रामपदेवतान् ॥ ११४७ ॥

रानीकोभी पहिले सुखासनपर बैठाकर जितेंद्रिय राजा गीत और उत्सव आदिसे और बाजोंसे युक्त राजा ॥ ४४ ॥ और अग्र भागमें जलसे पूर्ण कलश और वेदमें विशारद ब्राह्मणोंको और गायक और विशेषकर सुवासिनी (सुहागिनियोंको) करके ॥ ४५ ॥ और पृथक् २ यात्रा आदिके शकुनोंसे राजा द्वारके मार्गसे वितान तोरण पुष्प और पताकाओंसे नवीन घरको ॥ ४६ ॥ भूषित करके फिर देहलीका पूजन करै फिर दिशाओंके स्वामी और क्षेत्रपाल और ग्रामके देवताओंका पूजन करै ॥ ४७ ॥

और विधिवत् प्रणाम करके द्वारमार्गसे घरके विषै प्रवेश करै और गणेशजी और षोडशमातृकाओंका विशेषकर पूजन करै और वसो र्धाराका पात कराकर ग्रहोंका पूजन करै ॥ ४८ ॥ और वास्तुनाथका पूजन करके फिर ब्राह्मणोंका पूजन करै फिर धनकी शक्तिके अनुसार विद्वानोंको दक्षिणा दे और गोदान और भूमिका दान विधिके अनुसार करै ॥ ४९ ॥ और पुरोहित और ज्यो तिषी और स्थपति इनका यथार्थ संतोष करके दीन अंध कृपण इनको दान भोजन दे ॥ ५० ॥ और लिंगी (संन्यासी) और वि

प्रणम्यविधिवत्पूज्यद्वारमार्गेणविशेद्गृहम् ॥ पूजयेद्गणनाथञ्चमातृकाश्चविशेषतः ॥ वसोर्धाराम्पातयित्वाग्रहांश्चैवतुपूजयेत् ॥ ११४८ ॥ वास्तुनाथञ्चसंपूज्यब्राह्मणान्पूजयेत्ततः ॥ दक्षिणाञ्चततोदद्याद्विद्वद्भ्योवित्तशक्तितः ॥ गोदानम्भूमिदानञ्चकारयेच्चयथाविधि ॥ ११४९ ॥ पुरोहितञ्चदैवज्ञंस्थपतीन्परितोष्यच ॥ दीनान्धकृपणेभ्यश्चदद्याद्दानञ्चभोजनम् ॥ ११५० ॥ लिङ्गिनश्चविशेषेणबन्धुवर्ग ञ्चपूजयेत् ॥ दानमानैश्चतान्सर्वान्परितोष्ययथाविधि ॥ ११५१ ॥ भोजयेद्बन्धुवर्गांश्चस्वयंभुंजीतवाग्यतः ॥ राजाचान्तःपुरेवध्वा स्त्रीजनैश्चसमन्वितः ॥ ११५२ ॥ भोजयेच्छक्तितश्चान्तःपुरस्थान्स्वजनांस्ततः ॥ विहरेच्चसुखंराजास्वावासेभार्ययान्वितः ॥ ११५३ ॥

इति श्रीवास्तुशास्त्रेगृहप्रवेशविधिप्रकरणेदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

शेषकर बंधुओंके समूहको पूजै और दान और मानसे यथाविधि संतोष करके ॥ ५१ ॥ बंधुओंके समूहको भोजन करावे और मौन होकर आप भोजन करै और राजा अंतःपुरमें बंधु और स्त्रीजनोंसहित भोजन करै ॥ ५२ ॥ और शक्तिके अनुसार अंतः पुरमें स्थित स्त्रियोंको फिर स्वजनोंको भोजन करावै फिर राजा अपने घरमें भार्या सहित सुखपूर्वक विहार करै ॥ ५३ ॥

इति वास्तुशास्त्रे गृहप्रवेशविधिप्रकरणे पं० मिहिरचंद्रकृतभाषाविवृतिसहिते दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इसके अनंतर हे विप्रेंद्र तिसीप्रकार दुर्गोंके करनेको श्रवण करो जिसके ज्ञान मात्रसे निर्बलभी प्रबल होजाताहै ॥ ५४ ॥ और जिस दुर्गके आश्रयके बलसे ही भूतलमें राजा राज्य करते हैं और राजाओंका विग्रह (लडाई) भी सामान्य शत्रुओंके संग दुर्ग के ही आश्रयसे होताहै ॥ ५५ ॥ विषम दुर्गम और घोर वक्र (टेढा) भीरु भयका दाता और वानरके शिरकी तुल्य समान रौद्र अलकमंदिर ॥ ५६ ॥ ऐसा स्थानको विचारकर उसमें विषमदुर्गकी कल्पना (रचना) करै जिसका प्रथम परकोट

अथातःशृणुविप्रेन्द्रदुर्गाणाङ्करणन्तथा ॥ येनविज्ञानमात्रेणअबलःसबलोभवेत् ॥ ११५४ ॥ यस्याश्रयबलादेवराज्यङ्कुर्वन्तिभूतले ॥ विग्रहश्चैवराज्ञान्तुसामान्यैःशत्रुभिस्सह ॥ ११५५ ॥ विषमन्दुर्गमंघोरंवक्रंभीरुंभयावहम् ॥ कपिशीर्षसमंचैवरौद्रादलकम न्दिरम् ॥ ११५६ ॥ स्थानंविचिन्त्यविषमन्तत्रदुर्गम्प्रकल्पयेत् ॥ प्रथमंमृन्मयम्प्रोक्तञ्जलकोटन्द्वितीयकम् ॥ ११५७ ॥ तृतीयंग्रामकोटञ्चचतुर्थङ्गिरिगह्वरम् ॥ पञ्चमम्पर्वतारोहंषष्ठङ्कोटञ्चडामरम् ॥ ११५८ ॥ सप्तमंवक्रंभूमिस्थंविषमाख्यन्तथा ष्टमम् ॥ चतुरस्रंचतुर्द्वारंवर्तुलञ्चतथैवच ॥ ११५९ ॥ दीर्घद्वारन्द्वयाक्रान्तान्त्रिकोणमेकमार्गकम् ॥ वृत्तदीर्घञ्चतुर्द्वारमर्द्ध चन्द्रन्तथैवच ॥ ११६० ॥

मिट्टीका कहाहै और दूसरा कोट जलका होताहै ॥ ५७ ॥ तीसरा ग्रामकोट होताहै चौथा गिरिगह्वर होताहै पांचमा पर्वतारोह होता है छठा कोट डामर होताहै ॥ ५८ ॥ सातवा कोट वक्रभूमिमें होताहै आठवां कोट विषम होताहै चकोर और वर्तुल (गोल) ॥ ५९ ॥ और दीर्घ जो दो द्वार उनसे आक्रांत (युक्त) हो और त्रिकोण हो और जिसका एक मार्गहो और वृत्त (गोल) और दीर्घ (लंबे) जिसके चारद्वार हों और जो अर्द्धचंद्राकार हो ॥ ११६० ॥

गोस्तनञ्चचतुर्द्वारन्धानुषम्मार्गकण्टकम् ॥ पद्मपत्रनिभञ्चैवछत्राकारन्तथैवच॥११६१॥ दशप्रकाराणिमयाप्रोक्तानिद्विजपुङ्गव॥मृन्मये
खननाद्भीतिंजलस्थेमोक्षबन्धनात् ॥ ११६२ ॥ ग्रामदुर्गेऽग्निदाहाच्चप्रवेशाद्गह्वरस्यच ॥ पर्वतेस्थानभेदाच्चडामरेभूबलाद्भयम् ॥११६३॥
चक्राख्येकवियोगाच्चविषमेस्थायिनान्तथा ॥ बलाबलाद्यमपदम्पुनरन्यत्प्रवच्म्यहम् ॥ ११६४ ॥ अतिदुर्गङ्कालवर्णञ्चक्रावर्तंच
डिंबरम् ॥ नालवर्तञ्चपद्माक्षंपक्षभेदश्चसर्वतः ॥ ११६५ ॥ कारयेत्प्रथमंराजापश्चाद्दुर्गंसमाचरेत् ॥ प्राकारेविन्यसेदादौबाह्य
स्थान्पूजयेत्ततः ॥ ११६६ ॥ परिखाश्चततःकृत्वातन्मध्येचततःपुनः ॥ सव्यापसव्यमार्गेणमार्गन्तस्यप्रकल्पयेत् ॥ ११६७ ॥
गृहाणिबाह्यसंस्थानिकोणेकोणेषुविन्यसेत् ॥ कोणस्थान्बाह्यतोगेहान्विषमान्कारयेत्ततः ॥ ११६८ ॥

और गौके स्तनकी तुल्य जिसकी चार द्वार हो और धनुषाकार और मार्गकंटक और पद्मपत्रके समान और छत्रके आकारकी तुल्य ॥ ६१ ॥ हे द्विजोमें श्रेष्ठ ये दशप्रकारके दुर्ग मैंने कहे मृन्मयदुर्गमें खनन (खोदना) से भीति होतीहै और जलमें स्थित दुर्गमें मोक्षबंधनसे भय होताहै अर्थात् पुलके टूटनाका भय होताहै ॥ ६२ ॥ और ग्रामदुर्गमें अग्निके दाहसे और गह्वरमें प्रवेशका भय होताहै पर्वतमें स्थानके भेदसे और डामरमें भूमिके बलसे भय होताहै ॥ ६३ ॥ और चक्रनामके दुर्गमें वियोगसे और विषमदुर्गमें स्थायि राजाओंको भय होताहै और बल अबलसे मैं फिर यमपदको कहताहूं ॥ ११६४ ॥ अतिदुर्ग कालवर्ण चक्रावर्त और डिंबर नालावर्त और पद्माक्ष और सर्वतः (चारोंतरफसे) पक्षभेद इनको ॥ ६५ ॥ राजा प्रथम करवावै और पीछेसे दुर्ग बनावै प्रथम प्राकार (कोट) बनावै फिर बाह्यमें जो मनुष्य स्थित रहैं उनकी पूजा करै ॥ ६६ ॥ और उस दुर्गकी परिखाओंको करवाकर उसके मध्यमें वाम और दक्षिण मार्गसे उस दुर्गके मार्गकी कल्पना करै ॥ ६७ ॥ और बाहिर स्थित जो घर हैं उनको कोण २ में बनवावै और बाह्यदेशमें जो कोणोंमें स्थित घर हैं उनको विषम अर्थात् गमनके अयोग्य बनवावै फिर ॥ ६८ ॥

160

पंत्रकालहै नाम जिसका ऐसी परिखाकी कालरूपिणी प्रतोली बनावै और उसमें शकलीयंत्रोंसे अर्थात् छिद्रोंसे मंडित रमणी
क यंत्रको करवाकर ॥ ६९ ॥ मुशल मुद्गर प्रास यंत्र खड्ग धनुर्धारी इनसे युक्त बनवावै और शूरवीर जो योद्धा है उनसे संयु
क्त करवावै ॥ ११७० ॥ और कोण २ में उनशस्त्रोंके चलानेके अंत्रपुर (छिद्र) बनवावै उसके बाह्यदेशमें परिखाका आकार कालरूप
विस्तारसे बनवावै ॥ ७१ ॥ और मध्यमें जो समान देशहो उसमें बडे २ घर बनवावै उन घरोंमें वास्तु और कोटपाल

प्रतोलिम्पत्रकालाख्यांपरिखाकालरूपिणीम् ॥रणयंत्रङ्कत्वायेयाच्छकलीयंत्रमंडितम् ॥११६९॥ मुशलैर्मुद्गरैःप्रासैर्यन्त्रैः खड्गैर्धनुर्धरैः॥
संयुतंसुभटैःशूरैःसंयुतानिचकारयेत् ॥ ११७० ॥ तन्मोक्षोत्रपुरानोहान्कोणेकोणेप्रदापयेत् ॥ तद्बाह्येपरिखाकाराकालरूपासु
विस्तरा ॥११७१॥ समेप्रदेशेमध्येतुमहागेहानिविन्यसेत् ॥ तत्रसंपूजयेद्वास्तुंकोटपालन्तथैवच ॥११७२॥ क्षेत्रपालञ्चविधिवत्पूर्वव
त्तंप्रपूजयेत् ॥ एतद्विधानंसर्वेषुदुर्गेषुचविधानतः ॥ ११७३ ॥ कारयेद्विषमेस्थानेपर्वतेचविशेषतः ॥ बाह्येचपरिखाकार्याप्राकारन्तस्य
मध्यतः ॥ ११७४ ॥ तन्मध्येचपुनर्भित्तिंभित्तिमध्येगृहानपि ॥ गृहाणाम्मध्यभागेतुपरिखान्नैवकारयेत् ॥ ११७५ ॥ पूर्ववत्कोणभा
गेषुगृहान्विन्यस्यपूर्ववत् ॥ त्रिपञ्चसप्तप्राकारान्कारयेन्मध्यमध्यतः ॥ ११७६ ॥ तन्मध्येतुमहापद्मंपूर्ववत्परिकल्पयेत् ॥ तत्रै
वस्थापयेद्वास्तुंकोटपालन्तथैवच ॥ ११७७ ॥

का पूजन करै ॥ ७२ ॥ और विधिपूर्वक क्षेत्रपालका पूजन करै यह विधि संपूर्ण दुर्गोंमें शास्त्रोक्तविधिसे होती है ॥ ७३ ॥ और विषमस्थान
और विशेषकर पर्वतमेंभी यही विधि करै और बाह्यमें परिखा करनी और उसके मध्यमें प्राकार बनवाना ॥ ७४ ॥ और उसके मध्यमें
फिर भीत बनवावै और भीतके मध्यमें घरोंको बनवावै और गृहोंके मध्यभागमें परिखाको न करवावै॥७५॥पूर्वके समान कोणके मार्गमें
पूर्वरीतिसे गृहोंको बनवाकर मध्य २ में तीन पांच सात प्राकारोंको बनवावै ॥ ७६ ॥ और उनके मध्यमें पूर्वके समान महापद्मकी रचना

करै और उस महापद्मके मध्यमें वास्तुपुरुष और कोटपालका स्थापन करै ॥ ७७ ॥ दीर्घ दुर्गमें दीर्घ घरोंको और वृत्तमें वृत्तघरोंको और त्रिकोणमें त्रिकोणघरोंको बुद्धिमान मनुष्य बनवावै वा अपनी बुद्धिसे बनवावै ॥ ७८ ॥ और धनुषदुर्गमें धनुषके आकार और गोस्तनके समान दुर्गमें गोस्तनके आकारके घर बनवावै और त्रिकोण और छत्रखंडमें द्वार पातालसे होताहै (नीचा) ॥ ७९ ॥ प्राकार पर स्थित धनुर्द्धारी जैसे सर्वत्र देखसकै उस प्रकारसे भलीप्रकार दृढ शोभन भित्ति विस्तारसे बनवावै ॥ ११८० ॥ इसप्रकार

दीर्घेदीर्घगृहान्कुर्याद्वृत्तेवृत्तांस्त्रिकोणके ॥ त्रिकोणान्कारयेद्धीमास्वबुद्ध्यावातथैवच ॥ ११७८ ॥ धानुषेधनुषाकारांगोस्तनेगोस्तनाकृतिम् ॥ त्रिकोणेछत्रखण्डेवाद्वारम्पातालतोभवेत् ॥ ११७९ ॥ प्राकारस्थोधनुर्द्धारीसर्वत्रअवलोकने ॥ तथाभित्तिः प्रकर्तव्यासुदृढाविस्तराशुभा ॥ ११८० ॥ एवम्मयाविनिर्दिष्टान्कोटान्करोतुबुद्धिमान् ॥ कोटस्थान्बाह्यभागस्थान्यःसर्वानवलोकते ॥ ११८१॥ तादृक्पुराणिसर्वाणिकारयेत्स्थपतिःक्रमात् ॥ अथातःसंप्रवक्ष्यामियदुक्तम्ब्रह्मयामले ॥११८२॥ यदाकोटस्यनक्षत्रे स्वामिऋक्षेतथैवच ॥ गोचराष्टकभेदेनस्तंभानांभेदनेतथा ॥ ११८३ ॥ पापाक्रान्तेमध्यकोटेजन्मर्क्षेग्रहदूषिते ॥ वज्रास्त्रग्न्यादिदोषेचतथाभूकम्पदूषिते ॥ ११८४ ॥

मेरे कहेहुये कोटोंको जो बुद्धिमान् करताहै वह कोटोंपर स्थित होकर बाह्य देशमें स्थित सबको देखताहै ॥ ८१ ॥ उन संपूर्ण पुरोंको स्थपति (राजा) क्रमसे बनवावै इसके अनंतर उसका वर्णन करताहूं जो ब्रह्मयामलमें कहाहै ॥ ८२ ॥ जब कोटके नक्षत्रमें स्वामीका नक्षत्र हो और गोचराष्टकके भेदसे स्तंभोंके छेदनमें पूर्वोक्त नक्षत्र एकहो ॥ ८३ ॥ और मध्य कोटका नक्षत्र पापग्रह करके आक्रांतहो और जन्मका नक्षत्र ग्रहोंसें दूषित हो और वज्र (बिजली) अस्त्र अग्नि आदिका दोष हो वा भूकंप

से दूषित हों ॥ ८४ ॥ कोणका नक्षत्र राहुसे युक्त हों वा ग्रहण उत्पातसे दूषित होयं तो ऐसे मुहूर्तमें यथार्थ रीतिसे विधिपूर्वक शास्त्रोक्त शांति करनी ॥ ८५ ॥ उस पुरमें पताकाओंसे अलंकृत मंडपको बनवावै और अष्ट कुंभोंको वहाँ सर्वौषधिसे युक्त करै ॥ ८६ ॥ सर्वबीज और पंचरत्न और तीर्थके जलोंसे पूरित करै प्रथम घटमें भूमिका आवाहन करै दूसरे घटमें नागराजाका आवाहन करै ॥ ८७ ॥ तीसरेमें कोटपालका और चौथे घटमें स्वामीका आवाहन करै पांच

कोणभेराहुणायुक्तेग्रहणोत्पातदूषिते ॥ तत्रशान्तिः प्रकर्तव्यायथावद्विधिनोदिता ॥ ११८५ ॥ तत्पुरेमण्डपंकुर्यात्पताकाभिरलङ्कृतम् ॥ अष्टकुंभांस्तत्रकुर्यात्सर्वौषधिभिरन्वितान् ॥ ११८६ ॥ सर्वबीजैः पञ्चरत्नैस्तीर्थतोयैश्चपूरितान् ॥ भूमिञ्चावाहयेत्पूर्वंद्वितीये नागनायकम् ॥ ११८७ ॥ तृतीयेकोटपालञ्चस्वामिनञ्चचतुर्थके ॥ पञ्चमेवरुणञ्चैवषष्ठेरुद्रन्तथैवच ॥ ११८८ ॥ सप्तमेचण्डिकान्देवीम्मातृभिःसप्तभिर्युताम् ॥ अष्टमेसुरनाथञ्चतत्तन्मन्त्रैश्चपूजयेत् ॥ ११८९ ॥ वास्तुपूजान्ततः कुर्याद्ग्रहमण्डलगान्ग्रहान् ॥ गन्धैःपुष्पैस्तथाधूपैर्दीपैःकर्पूरसंभवैः ॥ ११९० ॥ नैवेद्यैश्चापिभूयिष्ठैःफेणिकैःपूरिकादिभिः ॥ शष्कुलीभिस्सखर्ज्जूरैर्लड्डुकैर्मोदकैस्तथा ॥ ११९१ ॥ नानाविधैः फलैश्चापिविधिवत्तोषयेत्सुरान् ॥ द्वाराग्रेभैरवन्देवंविधिवत्पूजयेत्ततः ॥ ११९२ ॥

वेंमें वरुणका और छठेमें रुद्रका आवाहन करै ॥ ८८ ॥ और सातवेमें सातमातृकाओंसे युक्त चंडिका देवीका आवाहन करै और आठवेमें सुरनाथ (इंद्र) का आवाहन करै और इन सबका तिस २ के मंत्रोंसे पूजन करै ॥ ८९ ॥ फिर वास्तुपूजाको करै और ग्रहमंडलके मध्यमें जो ग्रह हैं उनका गंध पुष्प और धूप दीपक और कपूरके धूपदीपोंसे ॥ ९० ॥ और नैवेद्य और अधिक जो फेणिक और पूरीआदि और शष्कुली और खजूर लड्डू और मोदक इनसे पूजनकरै ॥ ९१ ॥ और नाना प्रकारके फलोंसे

विधिपूर्वक देवताओंका संतोष करै फिर द्वारके आगे विधिपूर्वक भैरवदेवका पूजन करै ॥ ९२ ॥ और बाह्यदेशमें दिक्पालोंका पूजन करै और गृहके मध्यभागमें क्षेत्रपालको पूजै और अपनी शाखामें उक्तविधिसे ग्रहोंके निमित्त होमकरै ॥९३॥ फिर वास्तुहोम करै और भूमि आदिकोंके निमित्त होम करै और भैरवी भैरव सिद्धिग्रह नाग और उपग्रह॥९४॥ जो भैरवके समीपमें स्थित हैं उनका यथाविधि पूजन करके विधिसे क्षेत्रपालके मंत्रसे होमको करै ॥ ११९५ ॥ और होमके अंतमें पांच बेल वा बेलके बीजोंसे कोटपालके नामसे वास्तु होम-

दिक्पालान्पूजयेद्बाह्येक्षेत्रपालञ्चमध्यतः ॥ होमङ्कुर्याद्ग्रहाणान्तुस्वशाखोक्तविधानतः ॥ ११९३ ॥ वास्तुहोमन्ततःकुर्याद्भूम्यादीनान्त
थैवच ॥ भैरवीभैरवाः सिद्धिग्रहानागाउपग्रहाः ॥११९४॥ भैरवस्यसमीपस्थांस्तान्सम्पूज्ययथाविधि ॥ क्षेत्रपालस्यमन्त्रेणहोमङ्कुर्याद्वि
धानतः ॥ ११९५ ॥ होमान्तेपञ्चभिर्बिल्वैर्बिल्वबीजैस्तथापिवा ॥ वास्तुहोमम्प्रकुर्वीतकोट्टपालस्यनामतः ॥ ११९६ ॥ स्वामिनाम
स्यमन्त्रेणप्रणवाद्येनवैद्विज ॥ भूर्भुवःस्वरितिपूर्वेणपूजांवाहोममेवच ॥ दुष्टग्रहाणाम्मन्त्रैश्चहुनेदष्टोत्तरंशतम् ॥ प्रत्येकञ्जुहुयाद्वि
द्वांस्तिलैर्वाथघृतेनवा ॥ ११९७ ॥ उष्ट्रिमन्त्रंजपेन्मध्येसहस्रेणशतेनवा ॥ अष्टोत्तरंशतंहुत्वाबलिन्दद्यादतःपरम् ॥ ११९८ ॥
पूरिकायाबलिम्पूर्वेदक्षिणेकृशरन्ततः ॥ पश्चिमेपायसन्दद्यादुत्तरेघृतपायसम् ॥ ११९९ ॥

को करै ॥ ९६ ॥ और ओंकारहै आदिमें जिसके ऐसे स्वामीके उस नाममंत्रसे जिसके आदिमें भूर्भुवः स्वः हों पूजा वा होमको करै और दुष्टग्रहोंके मंत्रोंसे अष्टोत्तर शत १०८ आहुति दे और बुद्धिमान् मनुष्य प्रत्येक ग्रहके नामसे तिल वा घृतसे होमकरै ॥ ९७ ॥ और मध्यमें एक सहस्र वा शत उष्ट्रि मंत्रका जप करै और उससे अष्टोत्तरशत होमको करके बलिको दे ॥ ११९८ ॥ पूर्वदिशामें पूरीकी बलि दे दक्षिणमें कृशरअन्नकी और पश्चिममें पायसकी और उत्तरमें घी और पायसकी बलि दे ॥ ९९ ॥

और दिक्पालोंकी बली और फिरक्षेत्रपालकी बलिको और फिर कोटपालकी बलिको फिर कोटस्वामीकी बलिको
दे ॥ १२०० ॥ पुरके ऊपर पशुकी बलीको दे और द्वारके आगे महिष (भैंसे) की बली दे और एकसहस्रके प्रमा-
णसे पहिले यमश्लोकको जपै ॥ १२०१ ॥ और विधिसे पूर्णाहुतिको देकर अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणाको दे फिर ब्रा
ह्मणोंको भोजन करावै इसप्रकार करनेसे राजाकी सिद्धि होतीहै ॥ १२०२ ॥ फिर पुरके कर्मको समाप्त करके संध्या कालके समय

दिक्पालानाम्बलिश्चैवक्षेत्रपालबलिन्ततः ॥ कोटपालबलिश्चैवकोटस्वामिबलिन्ततः ॥ १२०० ॥ पुरोपरिपशुन्दद्याद्द्वाराग्रेम
हिषन्ततः ॥ यमश्लोकञ्जपेत्पूर्वंसहस्रस्यप्रमाणतः ॥ १२०१ ॥ पूर्णांदत्वाथविधिवत्स्वशक्त्यादक्षिणाञ्चरेत् ॥ ब्राह्मणान्भोजये
त्पश्चात्ततः सिद्धिर्भविष्याति ॥ १२०२ ॥ पुरकर्मततः कृत्वासन्ध्याकालेचनैर्ऋते ॥ बलिन्दद्याद्विधानेनमंत्रान्पूर्वोदितान्पठेत्
॥ १२०३ ॥ मांसौदनबलिश्चैवमंत्रमेतदुदीरयेत् ॥ ॐह्रीं सर्वविघ्नानुत्सारयननननननमोहिनिस्तंभिनिममशत्रुंमोहयमोहयस्तं
भयस्तंभयअस्यदुर्गस्यरक्षांकुरुकुरुस्वाहा ॥ बलिन्दत्वाह्यनेनापिकृतकृत्योभवेन्नरः ॥ दुष्टऋक्षस्ययः स्वामीतन्मन्त्रेणचकार
येत् ॥ १२०४ ॥ खादिरस्यचकीलन्तुद्वादशाङ्गुलमानतः ॥ मृत्युंजयेनमन्त्रेणअभिमंत्र्यसहस्रधा ॥ १२०५ ॥

नैर्ऋतमें विधिसे बलिको दे और पूर्वोक्त मंत्रोंको पढै ॥१२०३॥ और मांसओदनकी बलिदे और इस मंत्रको पढै कि (ओंह्रीं सर्व विघ्नान्
उत्सारय न न न न न न नमोहिनि स्तंभिनि मम शत्रून् मोहय मोहय स्तंभय स्तंभय अस्य दुर्गस्य रक्षां कुरु २ स्वाहा) और इस मंत्रसे
भी बलिको देकर मनुष्य कृतकृत्य होताहै और दुष्ट नक्षत्रका जो स्वामी है उसके मंत्रसेभी बली और होम करवावै ॥ १२०४ ॥
बारहअंगुलके प्रमाणकी जो खदिरवृक्षकी कील है उसका मृत्युंजय मंत्रसे सहस्रवार १००० अभिमंत्रण करके ॥ १२०५ ॥

165

स्थिर लग्न और स्थिरलग्नके नवांशकमें और शोभनदिन और शोभनलग्नमें दुर्गके मध्यमें रोपण करै (गाडदे) ऐसा करनेसे सिद्धि हो जातीहै ॥ १२०६ ॥ और सबकालमें कोटका स्वामी सुखका भागी होताहै उष्ट्रीमंत्रयहहै कि ॐ उष्ट्रि विकृतदंष्ट्राननने त्रुंफट् स्वाहा ॥१२०७॥ इस उष्ट्रीमंत्रको दशसहस्र जपकर घृत मधु पुष्पोंसे एकसहस्र मंत्रसे होमकरै फिर मंत्र सिद्धहोजाताहै ॥१२०८॥ और द्वात्रिंश त३२है अक्षर जिसमें ऐसे यमश्लोकको द्वात्रिंशत् सहस्र जपै फिर सिद्ध होताहै ॥१२०९॥ तिसीप्रकार पूर्वविधिसे शत शत १०० मंत्रोंसे हो

स्थिरलग्नेस्थिरांशेचसुलग्नेसुदिनेततः ॥ रोपयेद्दुर्गमध्येतुततःसिद्धिर्भविष्यति ॥ १२०६ ॥ सर्वदासुखभागीचकोटपोभवतिध्रु
वम् ॥ उष्ट्रीमंत्रः ॐह्लींउष्ट्रिविकृतदंष्ट्राननेत्रुंफट्॥१२०७॥उष्ट्रीमंत्रंदशसहस्राणिजपित्वाघृतमधुनापुष्पैः सहस्रमेकंयजेत्ततः सिद्धोभवति
॥१२०८॥यमश्लोकंद्वात्रिंशाक्षरंद्वात्रिंशत्सहस्राणिजपेत्ततःसिद्धोभवति॥१२०९॥तथापूर्वविधिनाशतशतानिहोमयेत्ततः सिद्धोभवति॥
तत्तत्सकलं कर्मकरोति ॥१२१०॥ द्वादशारंलिखेच्चक्रंवृत्तत्रयविभूषितम् ॥ उष्ट्रिमन्त्रश्चतद्बाह्येयमश्लोकौचमध्यतः ॥१२११॥ वज्रार्गल
विधानन्तुकर्तव्यन्दुर्गलक्षणे ॥ भजनेयमराजाख्यमित्युक्तम्ब्रह्मयामले ॥ १२१२ ॥ मृत्युंजयमंत्रः ॐ जूंसः ॥ इतिवास्तुशास्त्रेको
टवास्तौएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ अतः परंप्रवक्ष्यामिशल्यज्ञानविधिम्पुनः ॥ येनविज्ञानमात्रेणगृहेशः सुखमाप्नुयात् ॥ १२१३ ॥

मकरै फिर सिद्ध होताहै और तिसरसंपूर्ण कर्मको करता है॥१२१०॥और द्वादश है अरे जिसमें ऐसे चक्रको तीनों वृत्तोंसे विभूषित युक्तको लिखै और उस यंत्रके बाह्य देशमें उष्ट्रिमंत्रको और मध्यमें यमके श्लोकोंको लिखै ॥१२११॥ और दुर्गकी रक्षाके लिये वज्रार्गलविधानको करै और भजनकरनेमें यमराजनामके विधानको करै यह ब्रह्मयामलमें कहा है ॥ १२१२ ॥ मृत्युंजयका मंत्र यह है कि ओंजूंसः ॥ इति वास्तुशास्त्रे पं०मिहिरचंद्रकृतभाषाविवृतिसहिते कोटवास्तौ एकादशो ऽध्यायः ॥ ११ ॥ इसके अनंतर फिर मैं शल्य ज्ञानकी

विधिको कहताहूं जिसके ज्ञानमात्रसे गृहका स्वामी सुखको प्राप्त होताहै ॥ १२१३ ॥ घरके प्रारंभ समयमें जिस अपने अंगमें कं
डू (खुजली) पैदा होजाय उस अंगमें अपने देह और प्रासाद और भवनमें शल्य (दुःखको) जानै ॥ १४ ॥ जिससे शल्यसहित
घर भयका दाता होताहै इससे अल्प सिद्धिका दाता होताहै नमस्कार करवा कर यजमानकी परीक्षाकरै ॥ १५ ॥ जिसं मस्तक
आदि अंगका स्पर्श कर्ता (यजमान) करै उसके ही दुःखको दूरकरताहै और आठ तालकी ध्वनिके भीतर नीचेके अंगका स्पर्श
करै तो उस अंगमें शल्य होताहै इसमें संशय नहीं ॥ १२१६ ॥ नासिकाके स्पर्शमें कर्ता और वास्तुको अल्पदुःख होताहै इस

गृहारंभेचकंडूतिः स्वाङ्गेयत्रप्रवर्तते ॥ शल्यमासादयेत्तत्रप्रासादेभवनेतथा ॥ १२१४ ॥ सशल्यंभयदंयस्मादल्पसि
द्धिप्रदायकम् ॥ कारयित्वानमस्कारंयजमानंपरीक्षयेत् ॥ १२१५ ॥ यदङ्गंसंस्पृशेत्कर्तामस्तकंशल्यमुद्धरेत् ॥ अष्टताला
दधस्तस्मिंस्तत्रशल्यंनसंशयः ॥ १२१६ ॥ नासिकास्पर्शनेकर्तुर्वास्तोः शल्यन्तदल्पकम् ॥ स्थितंविनिश्चितम्ब्रूयात्तल्लक्षणमथो
च्यते ॥ १२१७ ॥ शिरसः स्पर्शनेवास्तोः सार्द्धहस्तादधः स्थितम् ॥ मौक्तिकन्तुकरत्रेणमुखस्पर्शेतिदेहिनः ॥ १२१८ ॥
वाजिदंतंमहाशल्यमुद्धरेद्वास्तुतंत्रवित् ॥ करस्पर्शेकरेवास्तोः खड्गाङ्गेचकरादधः ॥ १२१९ ॥ अथापरमपिज्ञानङ्कथयामिस
मासतः ॥ षड्गुणीकृतसूत्रेणशोधयेद्धरणीतले ॥ १२२० ॥

मर्यादा को निश्चित कहै इसके अनंतर उसके लक्षणको कहतेहैं ॥ १२१७ ॥ वास्तुके शिरका स्पर्श करै तो सार्ध हांथ १॥ सेनीचे शल्यको
जानै यदि मौक्तिकका स्पर्श अपने करसे करै वा किसी देहीके मुखका स्पर्श करै ॥ १२१८ ॥ तो अश्वोंके दांतोंका जो दुःखहै उसके
उद्धार (नाश) को वास्तुतंत्रका ज्ञाता करताहै हाथका स्पर्शकरै तो वास्तुके हाथमें और खड्गके अंगका स्पर्श करै तो करसे
नीचेके दुःखको कहै ॥ १२१९ ॥ इसके अनंतर संक्षेपसे अन्य ज्ञानको भी कहताहूं कि छः गुना कियेहुये सूत्रसे भूमिके तलको

शुद्ध करै ॥ १२२० ॥ उस सूत्रके भली प्रकार धारणा करनेके समयमें यदि कोई उस सूत्रका लंघन करै उसकाही अस्थि उस भूमिका भागमें उस पुरुषके ही प्रमाणको जानै ॥ १२२१ ॥ और जिस दिशामें आसक्त अस्थि दीखै उसी दिशामें शल्यको कहै और उसी दिशामें उसके अस्थि सत्तर ७० अंगुलके प्रमाणसे जानै ॥ १२२२ ॥ और सूत्र धारणके समयमें जहां आसन पर स्थित हुआ मनुष्य आदिहो उसके ही अस्थिको वहां जानै इसका उस क्षितिमें संशय न समझे ॥ १२२३ ॥ नव कोष्ठ

सुधृतेसमयेतस्मिन्सूत्रङ्केनापिलङ्घितम् ॥ तदस्थितत्रजानीयात्पुरुषस्यप्रमाणतः ॥ १२२१ ॥ आसक्तोदृश्यतेयस्मादिशंशल्यं समादिशेत् ॥ तस्यामेवतदस्थीनिसप्तत्यङ्गुलमानतः ॥ १२२२ ॥ सूत्रितेसमयेयत्रआसनोपरिसंस्थितः ॥ तदस्थितत्रजानीयात्क्षितौ क्षणेनसंशयः ॥ १२२३ ॥ नवकोष्ठीकृतेभूमिभागेप्राच्यादितोलिखेत् ॥ अकचटतपयशान्क्रमाद्वर्णानिमानिच ॥ १२२४ ॥ प्रारंभःस्याद्यदिप्राच्यांनरशल्यंतदाभवेत् ॥ सार्द्धहस्तप्रमाणेनतच्चमानुष्यमृत्यवे ॥ १२२५ ॥ अग्नेर्दिशिचकः प्रश्नेखरशल्यं करद्वयोः ॥ राजदंडोभवेत्तस्मिन्भयश्चैवप्रवर्तते ॥ १२२६ ॥ याम्यांदिशिकृतेप्रश्नेनरशल्यमधोभवेत् ॥ तद्गृहस्वामिनोमृत्युङ्करो त्याकटिसंस्थितम् ॥ १२२७ ॥

किये हुये भूमिके भागमें पूर्व आदि दिशाओंमें अ क च ट त प य श इन वर्णोंको क्रमसे लिखै ॥ १२२४ ॥ यदि पूर्व दिशामें प्रारंभ होय तो मनुष्यको दुःख होताहै वह भी सार्द्ध हस्त १॥ के प्रमाणसे होताहै और वह मनुष्यकी मृत्युका हेतु होताहै ॥ १२२५ ॥ अग्निदिशामें प्रश्न होय तो दोनों कर (हाथ) में खर शल्य होताहै और उसीमें राजदंड और भय होताहै ॥ १२२६ ॥ दक्षिण दिशामें प्रश्न किया जाय तो नीचेके भागमें नरशल्य होताहै और वह घरके स्वामीकी मृत्यु (दुःख) को कटिपर्यंत भागमें करता

168

है ॥ १२२७ ॥ और नैर्ऋत्य दिशामें प्रश्न करै तो सार्द्ध हाथके अधोभागमें अर्थात् डेढ हाथ नीचे श्वानके अस्थिको जानै उसमें डिंभोंकी मृत्यु होतीहै ॥ १२२८ ॥ और पश्चिमदिशामें प्रश्न होय तो शिव (मंगल) में शल्य (दुःख) होताहै और सार्द्ध हाथके प्रमाणसे होताहै और वह स्थान स्वामीके प्रवासका कारण होताहै ॥ १२२९ ॥ और वायव्य दिशामें प्रश्न होय तो मनुष्योंके चतुष्करमें शल्यको भली प्रकार उद्धार करता है और बुद्धिमान् मनुष्य उसमें मित्रके नाशको जानै ॥१२३०॥उत्तर दिशामें प्रश्न होय तो साढे चार

नैर्ऋत्यान्दिशितःप्रश्नेसार्द्धहस्तादधस्तले ॥ शुनोस्थिजायतेतत्रडिंभानांजनयेन्मृतिम् ॥१२२८॥ प्रश्नेचपश्चिमायान्तुशिवशल्यंप्रजायते॥सार्द्धहस्तेप्रवासायसदनंस्वामिनःपुनः ॥ १२२९ ॥ वायव्यांदिशितुप्रश्नेनराणांवाचतुष्करे ॥ शल्यंसमुद्धरेद्धीमान्करोतिमित्रनाशनम् ॥ १२३० ॥ उत्तरस्यांदिशिप्रश्नेगर्दभास्थिनसंशयः॥ सार्द्धहस्तचतुष्केचपशुनाशायतद्भवेत् ॥ १२३१ ॥ ईशानदिशियःप्रश्नोगोशल्यंसार्द्धहस्ततः ॥ तच्चगोधननाशायजायतेगृहमेधिनः ॥ १२३२ ॥ मध्यकोष्ठेचयःप्रश्नोवक्षोमात्रादधस्तदा ॥ केशाःकपालंमर्त्यास्थिभस्मलोहेचमृत्यवे ॥१२३३॥ मंत्रश्चॐह्रींकूष्मांडिकौमारिममहृदयेकथयकथयह्रींस्वाहा ॥ एकविंशतिवारमनेनमंत्रेणाभिमंत्र्यप्रश्नमानयेत् ॥ अत्रदिशः सूर्योदयाद्गणनीयाः ॥ जलान्तंप्रस्तरांतंवापुरुषान्तमथापिवा ॥१२३४॥

ई.	पू.	अ.
उ.	म.	द.
वा.	प.	नै.

हाथपर गर्दभके अस्थिको जानै और वह पशुओंके नाशको करताहै ॥ १२३१ ॥ ईशान दिशामें प्रश्न होय तो सार्द्ध हाथपर १॥ गौके शल्यको जानै और वह गृहस्थीके गोधनको नष्ट करताहै ॥ १२३२ ॥ मध्यकोष्ठके विषै जो प्रश्न होय तो वक्षः (छाती) के नीचेके प्रमाणसे केश कपाल मनुष्यके अस्थि लोहा ये जानने और ये मृत्युके कर्ता होते हैं ॥ १२३३ ॥ मंत्र यह है कि ओंह्रींकूष्मांडि कौमारि मम हृदये कथय कथय ह्रीं स्वाहा इक्कीस वार इस मंत्रसे अभिमंत्रित (पउना) करके प्रश्नको लावै और इसमें दिशा सूर्योदयसे गिननी

और जलके अंततक वा प्रस्तरके अंतपर्यंत वा पुरुषके अंत तक ॥ १२३४ ॥ क्षेत्रको भली प्रकार शोधकर और शल्यका उद्धार करके स्थानका प्रारंभ करै और धातु काष्ठ आस्थि इनसे पैदा हुये शल्य अनेक प्रकारके कहेहैं ॥ १२३५ ॥ हे द्विजोंमें उत्तम ! परीक्षा करके घरका प्रारंभ करना और जब घरके प्रारंभ कर्ममें शल्य नजाना जाय ॥ १२३६ ॥ तो फलके पाक होनेपर अर्थात् कष्ट आदिके हो नेपर कर्मके ज्ञाता शल्यको जानले कि शल्यसहित वास्तुके स्थानमें पहिले दुष्ट स्वप्न दीखताहै ॥ १२३७ ॥ हानि वा अत्यंत रोग और

क्षेत्रंसंशोद्धयचोद्धृत्यशल्यंसदनमारभेत् ॥ शल्यानेकविधाः प्रोक्ताधातुकाष्ठास्थिसंभवाः ॥ १२३५ ॥ तान्परीक्ष्यप्रकर्तव्योगृहारंभो द्विजोत्तम ॥ यदानज्ञायतेशल्यंगृहारंभणकर्मणि॥१२३६॥ फलपाकेनशल्यंतज्ज्ञातव्यंकर्मवेदिभिः ॥ सशल्येवास्तुसदनेपूर्वन्दुःस्वप्न दर्शनम् ॥ १२३७ ॥ हानिर्वारोगमतुलंधननाशस्तथैवच ॥ अन्यानिवास्तुशल्यानिकथयामिसमासतः ॥ १२३८ ॥ सप्ताहा द्वासितेरात्रौगौर्वागोष्ठेथवन्धकी ॥ रोदन्तेवारुणोश्वोवाश्वानोवागृहमूर्द्धनि ॥ १२३९ ॥ वन्योवाप्रविशेद्यस्यनिर्विशङ्कोथवामृगः ॥ श्येनोवाथकपोतोवाव्याघ्रोगोमायुवातथा ॥ १२४० ॥ गृध्रोवाप्यथवाकृष्णसर्पोवाथशुकोपिवा ॥ नरास्थीनिगृहीतश्चचाङ्कुलोवा थकारणात् ॥ १२४१ ॥ वज्रेणदूषितंयच्चयच्चवाताग्निदूषितम् ॥ यक्षोवाराक्षसोवापिपिशाचोवातथैवच ॥ १२४२ ॥

धनका नाश उस दुःस्वप्नसे होताहै अन्यभी वास्तुके शल्योंको संक्षेपसे कहताहूं ॥१२३८॥ जिस घरमें सात दिनतक रात्रिके समयमें गौ शब्दकरै वा गोष्ठमें बंध की शब्द करै और जिसमें हाथी अश्व शब्द करैं वा घरके ऊपर श्वान शब्द करैं॥१२३९॥अथवा जिस घरमें वनका मृग निडर होकर प्रविष्ट होजाय वा श्येन कपोत व्याघ्र वा गीदड प्रविष्ट होजाय ॥ १२४० ॥ गीध वा कालासर्प वा शुक (तोता) जो जंगलका हो वह मनुष्यके आस्थि लेकर किसी हेतुसे [illegible] ॥ १२४१ ॥ और जो घर वज्रसे दूषित हो और जो पवन

170

और अग्निसे दूषितहो और यक्ष वा राक्षस वा पिशाच प्रविष्ट होजाय ॥ १२४२ ॥ वा रात्रिके समयमें काक वा भूतको ताडना दीजाय और जिस घरमें रात्रि दिन कलह हो वा युद्ध हो ॥ १२४३ ॥ उस पूर्वोक्त दुःशकुनवाले घरमेंभी शल्य जानै और जो अन्य घरके दोषहैं उनमें और काष्ठके दीखनेमें भी और काष्ठोंके व्यत्ययमें भी शल्यको जानै ॥ १२४४ ॥ गौका शल्य वा अन्य कोई शल्य जिस स्थानमें हो वहां शल्यके उद्धारको करै वंशआदिका जो शल्य हो और द्वारमार्गका जो शल्य हो ॥ १२४५ ॥ और बाह्य जो वेधका शल्य हो उसको भी शल्योद्धार नष्ट करताहै जिससे अनेक प्रकारके शल्योंका ज्ञान मनुष्योंको नहीं होसकता

काकोवाताड्यतेरात्रौभूतोवापिगृहेथवा ॥ कलहश्चदिवारात्रौयोषितांयुद्धमेवच ॥ १२४३ ॥ तत्रापिशल्यंजानीयाद्येचान्येगृहदोषकाः ॥ काष्ठेपिशल्यंजानीयाद्दारूणांव्यत्ययेतथा ॥ १२४४ ॥ गोशल्येवान्यकल्पेवाशल्योद्धारन्ततश्चरेत् ॥ वंशादीनाञ्चयच्छल्यंय च्छल्यन्द्वारमार्गतः ॥ १२४५ ॥ बाह्यंवेधस्ययच्छल्यंतद्दोषश्चविनाशयेत् ॥ तस्मादनेकशल्यानांज्ञानन्नास्तितदानरैः ॥ १२४६ ॥ अवश्यमेवकर्तव्यंशल्योद्धारंहितेप्सुभिः ॥ वास्तुपूजांचविधिवत्कारयेत्पूर्वकेदिने ॥ १२४७ ॥ सुदिनेशुभनक्षत्रेचन्द्रताराबलान्विते ॥ शुद्धेकालेप्रकर्तव्यंशल्योद्धारंद्विजोत्तमैः ॥ १२४८ ॥ शिलाङ्कुर्यात्समांश्लक्ष्णांहस्तमात्रांदृढांशुभाम् ॥ चतुरस्रांत्रिभागे नपट्टिकाभिर्विनिर्मिताम् ॥१२४९॥ तावत्प्रमाणामाधाराशिलांकृत्वाविधानवित् ॥ नन्दायांमस्तकंप्रोक्तंभद्रायांदक्षिणङ्करम्॥१२५०॥

तिससे ॥ १२४६ ॥ हितके अभिलाषी मनुष्य शल्योद्धारको अवश्य करै और पहिले दिन विधिसे वास्तुपूजाको करै ॥ १२४७ ॥ सुंदर दिनमें और शुभ नक्षत्रमें और चंद्र ताराके बलसे युक्त शुद्ध कालमें द्विजोंमें उत्तम शल्योद्धारको करै ॥ १२४८ ॥ समान चिकनी हाथभरकी दृढ शुभ चकोर और स्थानके त्रिभागमें वर्तमान और पट्टिकाओंसे बनाई हो ऐसी शिलाको बनवावै ॥ १२४९ ॥ उतने ही प्रमाणकी आधारशिलाको विधानका ज्ञाता बनवाकर और उसके मस्तकको नंदामें कहाहै और भद्रा नामकी शिलामें दक्षि

171

ण हाथ कहाहै ॥ १२५० ॥ और उसके वाम करमें रिक्ता कहीहै और जयामें उसके चरण कहेहैं और नाभिदेशमें पूर्णा जाननी और उसका संपूर्ण अंग वास्तुपुरुषरूप है ॥ १२५१ ॥ संपूर्ण देवस्वरूप वास्तुपुरुष सबको शुभकारी होताहै तिस बुद्धिमान् मनुष्य मध्यप्रदेशमें एक शिलाका स्थापन करवावै ॥ १२५२ ॥ घरके मध्य भागमें चारों तरफसे नाभिमात्र गर्त (गड्ढा) को करके शिलाके मध्यमें स्वस्तिक नामके शोभन यंत्रको लिखै ॥ १२५३ ॥ और खोदकर उसमें बुद्धिमान् स्थपति (कारीगर) तीन

रिक्तावामकरेप्रोक्ताजयायांचरणौतथा ॥ नाभिदेशेतथापूर्णासर्वाङ्गंवास्तुपूरुषम् ॥ १२५१ ॥ सर्वदेवमयंपुंसांसर्वेषांशोभनंभवेत् ॥ तस्मान्मध्येप्रदेशेतुशिलैकांस्थापयेद्बुधः ॥ १२५२ ॥ गृहमध्येनाभिमात्रङ्कृत्वागर्तंसमंततः ॥ शिलामध्येलिखेद्यंत्रंस्वस्तिकाख्यंसुशोभनम्॥१२५३॥खनित्वास्थपतिस्तस्मिंस्त्रिभागान्कारयेद्बुधः ॥ तन्मध्येस्वस्तिकाकारांकारयेच्चसमन्ततः ॥१२५४॥ ईशानादिचतुष्कोणेशिलांसम्पूज्यवेदवित् ॥ ईशानकोणेनन्दायाः पूजनञ्चैवकारयेत् ॥ १२५५ ॥ आग्नेयकोणेभद्रायांनैर्ऋत्येचजयांतथा ॥ रिक्तावायव्यदिक्कोणेपूर्णास्वस्तिकमध्यतः ॥ १२५६ ॥ पूर्ववत्पूजयेत्तांतुक्रमेणैवविधानवित् ॥ चतुराशिपलङ्कुम्भंताम्रोद्भूतंदृढंशुभम् ॥ १२५७ ॥ हस्तमात्रंभवेद्गर्भशुद्धंस्याच्चतुरङ्गुलम् ॥ कण्ठंरसाङ्गुलन्तस्यपिहितंवसुवर्चसम् ॥ १२५८ ॥

भागको करै और उसके मध्यमें चारों तरफ स्वस्तिकके आकारोंको करै ॥ १२५४ ॥ ईशान आदि चारोंकोणोंमें वेदका वेत्ता (ज्ञाता) शिलाको भली प्रकार पूजकर ईशान कोणमें नंदाके पूजनको करै ॥ १२५५ ॥ और अग्निकोणमें नंदाका और नैर्ऋत्य कोणमें जयाका और वायव्यकोणमें रिक्ताका और स्वस्तिकके मध्यमें पूर्णाका पूजन करै ॥ १२५६ ॥ और विधानका ज्ञाता आचार्य उसका पूर्वके समान क्रमसे पूजन करै चार राशि पलका और तांबेसे बनाहुआ और दृढ शुभदायी कुंभ ॥ १२५७ ॥ जो हाथ भर

172

का हो गर्भ (मध्य) में शुद्धहो और चार अंगुल जिसका मुख हो और छः अंगुल जिसका कंठ हो और ढकाहुआ हो और भली प्रकार तेजस्वी हो ॥ १२५८ ॥ ऐसे घटका मध्यमें स्थापन करके उसके बाह्य देशमें आठ घटोंका स्थापन करै उन घटोंको भोजन और औषधोंसे पूर्णकरै और उन आठों घटोंको क्रमसे आठों दिशाओंमें दिक्पालोंके मंत्रोंसे स्थापन करै ॥ १२५९ ॥ और उनको तीर्थके जलोंसे और पांच नदियोंके जलोंसे भली प्रकार पूर्ण करके और वह मध्यका घट पंच रत्न फल और बीजपूरसे युक्तहो ॥ १२६० ॥ और कुंकुम चंदन कस्तूरी गोरोचन कपूर देवदारु पद्म और सुरभि (सुगंधि) अन्य पदार्थ ॥ १२६१ ॥

अष्टौकुम्भावहिः स्थाप्याः पूरयेद्भोजनौषधैः ॥ दिक्ष्वष्टसुक्रमेणैवदिक्पालानांचमंत्रकैः ॥ १२५९ ॥ तीर्थतोयेनसंपूर्यतथापञ्चनदी जलैः ॥ पञ्चरत्नैर्युतंतच्चसफलैर्बीजपूरकैः ॥ १२६० ॥ कुंकुमञ्चन्दनञ्चैवकस्तूरीरोचनातथा ॥ कर्पूरन्देवदारुञ्चपद्माख्यंसुरभिस्त था ॥ १२६१ ॥ अष्टगन्धन्तथान्यानिगन्धान्यस्मिन्विनिःक्षिपेत् ॥ वृषशृङ्गोद्भवासिंहनखोद्भूतातथैवच ॥ १२६२ ॥ वाराहवारणरदोत्थाश्चाष्टमृदस्तथा ॥ देवालयद्वारमृदः पञ्चगव्यंसमंत्रितम् ॥ १२६३ ॥ पञ्चामृतन्तथापञ्चपल्लवान्पञ्चवात्वचः ॥ कांषायान्पञ्चवात स्मिन्कलशेतुविनिःक्षिपेत् ॥ १२६४ ॥ त्रिमधुश्चतथासप्तधान्यान्पारदसंयुतान् ॥ तत्रावाह्यगणेशादीँल्लोकपालांस्तथैवच ॥ १२६५ ॥

अष्टगंध और अन्यभी गंधके पदार्थ उस घटमें डारै और वृषके शृंगसे उखाडी और सिंहके नखोंसे उखाडीहुई मृत्तिका ॥ १२६२ ॥ और वाराह और हाथीके दांतोंमें जो लगीहुई मिट्टी है उसके और अन्य जो आठ प्रकारकी मिट्टी और देवमंदिरके द्वारकी मिट्टिको और मंत्र पढेहुये पंचगव्यको ॥ १२६३ ॥ और पंचामृत और पंचपल्लव और पांच त्वचा और पांच कषाय इन सबको उस कलशमें डारदे ॥ १२६४ ॥ तीन मधु और सप्तधान्य जो पारेसे युक्तहों उनकोभी डारै उसमें गणेश आदि देवता और लोकपालोंका

आवाहन करके ॥ १२६५ ॥ और घरमें धनकेपति वरुणका स्थापनकरके और नागोंके नायक (शेष)का स्थापन करै और पूर्वोक्त विधिसे वेदके मंत्रोंसे आवाहन करके और ॥ १२६६ ॥ आगमके मंत्रोंसे और पुराणोंमें पढेहुये मंत्रोंसे और अष्टशत ८०० गायत्रीसे और एकशत १०० गायत्रीसे ॥१२६७॥ और शतवार त्रीणिपदानि० इसमंत्रसे वा एकशतवार तद्विप्रासो० इस मंत्र और अपोदेवा यह जो दिव्यमंत्रहै इससे तीनसौ ३०० वार ॥ १२६८ ॥ विधिसे होमको करके हे ब्राह्मणो उसके अन्यदेवताओंके निमित्त वास्तु

वरुणञ्चगृहेस्थाप्यरायकन्नागनायकम् ॥ आवाह्यवेदमन्त्रैश्चपूर्वोक्तेनविधानतः ॥ १२६६ ॥ आगमोक्तैश्चमन्त्रैश्चमन्त्रैः पुराणसम्भवैः ॥ गायत्र्याष्टशतेनैवव्यांहृत्याष्टशतेनवा ॥ १२६७ ॥ त्रीणिपदेतिशतधातद्विप्रासेइतिवातथा ॥ अतोदेवाइतितथादिव्यमन्त्रैः शतत्रयम् ॥ १२६८ ॥ हुत्वाग्नौविधिवद्विप्रावास्तुहोमन्ततश्चरेत् ॥ अष्टाधिकन्तथाहोमंगृहहोमन्तथैवच ॥ १२६९ ॥ गणपत्यादिमंलोकपालादीनांहोममाचरेत् ॥ दिक्पालानान्तथाक्षेत्रपालस्यापिविशेषतः ॥ १२७० ॥ दिव्यान्तरिक्षभौमानांहोममन्त्रञ्चकारयेत् ॥ सुलग्नेसुमुहूर्तेतुशिलास्थापनमाचरेत् ॥ १२७१ ॥ तत्पश्चिमेमहादीपंमहाकुंभंशिरोपरि ॥ स्थापयेत्पूर्वभागेचशल्यमंत्रानुदीरयेत् ॥ १२७२ ॥ नन्देनन्दयवासिष्ठेवसुभिश्चहितप्रजे ॥ तिष्ठाप्यस्मिन्गृहान्तेत्वंसर्वदासुखदाभव ॥ १२७३ ॥

होमको करै और आंठ अधिक शत १०८ होमको और तिसीप्रकार गृहहोमको करै ॥ १२६९ ॥ और प्रथम गणपतिके निमित्त होमको करै फिर लोकपाल दिक्पाल और विशेषकर क्षेत्रपालके निमित्त होमको करै ॥ १२७० ॥ और दिव्य अंतरिक्ष भूमि इनकेभी होम मंत्रोंसे होमकरै फिर सुंदर लग्न और सुंदर मुहूर्तमें शिलाके स्थापनको करै ॥ १२७१ ॥ उसके पश्चिमभागमें महाकुंभके शिरके ऊपर बडे दीपकको रक्खै उसके पूर्वभागमें शल्यके मंत्रोंको पढै ॥ १२७२ ॥ हे नंदे! तू आनंद कर हेवासिष्ठे हेप्रजाके हित

कारिणि ! इसगृहके मध्यभागमें तू टिक और सबकालमें सुखकी दाता हो ॥ १२७३ ॥ हे भद्रे तू पुरुषोंको भद्र (कल्याण) की दाता है हे काश्यपनंदिनि, तू अतुल आयुः आरोग्यको कर और संपूर्ण शल्योंका निवारण कर ॥ १२७४ ॥ हे जये तू भार्गवकी पुत्री है इससे प्रजाओंके हितको कर हे देवी आपका यहां स्थापन करताहूं तू संपूर्ण शल्योंका निवारणकर ॥ १२७५ ॥ हे रिक्ते तू रिक्त दोषको नाशकरनेवाली है हे सिद्धिकी दाता और सुखदाता हे शुभे हे सबकालमें सबदोषोंकी नाशक हे अत्रिकी

भद्रेत्वम्भद्रदापुंसाङ्कुरुष्काश्यपनन्दिनि ॥ आयुरारोग्यमतुलंसर्वशल्यान्निवारय ॥ १२७४ ॥ जयेभार्गवदायादेप्रजानांहितमावह ॥ स्थापयाम्यत्रदेवित्वांसर्वाञ्छल्यान्निवारय ॥ १२७५ ॥ रिक्तेत्वंरिक्तदोषघ्नेसिद्धिदेसुखदेशुभे ॥ सर्वदासर्वदोषघ्नेतिष्ठास्मिन्नत्रिनन्दिनि ॥ १२७६ ॥ अव्यङ्गेचाक्षतेपूर्णेमुनेरङ्गिरसः सुते ॥ इष्टकेत्वम्प्रयच्छेष्टंशुभञ्चगृहिणांकुरु ॥ १२७७ ॥ ताम्रकुंभञ्चनिःक्षिप्य शिलांद्वीपंतथैवच ॥ गीतवादित्रनिर्घोषंकृत्वातम्पूरयेन्मृदा ॥ १२७८ ॥ हृदिकृत्याशिलाकुंभंमन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥ वास्तुपुरुषनमस्तेस्तुभूमिशय्यारतप्रभो ॥ १२७९ ॥ मद्गृहंधनधान्यादिसमृद्धंकुरुसर्वदा ॥ नागनाथनमस्तेस्तुशल्यसमुद्धरणेक्षम ॥ १२८० ॥

नंदिनी (पुत्री) इस गृहमें तू टिक ॥ १२७६ ॥ हे अव्यंगे अर्थात् नाशरहिते हे अक्षते हे पूर्णे हे अंगिरामुनिकी पुत्री हे इष्टके तू इष्टको दे और गृहस्थियोंके शुभको कर ॥ १२७७ ॥ तांबेके कुंभको गर्तमें डार और शिला द्वीपकोभी उसीमें गेरकर गीत और वादित्रके शब्दको करके उस गर्तको मिट्टीसे पूर्ण करदे ॥ १२७८ ॥ और शिलाके कुंभका हृदयपर स्पर्श करके इनमंत्रोंको उच्चार करै हे वास्तुपुरुष हे भूमिशय्यामें रमणकेकर्ता हे प्रभो आपको नमस्कार है ॥ १२७९ ॥ मेरे घरको धन और धान्य आदिसे

समृद्ध (पूर्ण) सबकालमें करो हे नागनाथ हे शल्यके उद्धार करनेमें समर्थ आपको नमस्कारहै ॥ १२८० ॥ तू वास्तुरूप है और विश्वका धारण कर्ता है इससे प्रजाओंकी हितकर हे पृथिवी तू लोकोंका धारण करतीहै और हे देवि तुझे विष्णुने धारण किया है और हे देवि तू मुझे धारण कर और आसनकोभी पवित्र कर ॥ १२८१ ॥ गणपतिआदि लोक और देवता और दिक्पाल ये सब आयुध (शस्त्र) और गणोंसहित होकर मेरे घरको शुद्धकरो ॥ १२८२ ॥ इन मंत्रोंको पढकर फिर बलि दे और वह बलि

वास्तुरूपोविश्वधारीप्रजानांहितमावह ॥ पृथ्वीत्वयाधृतालोकादेवित्वंविष्णुनाधृता ॥ त्वञ्चधारयमान्देविपवित्रङ्कुरुचासनम्॥१२८१॥ गणपत्यादयोलोकादेवादिक्पालकास्तथा ॥ सायुधाःसगणोपेताः शुद्धंकुर्वन्तुमेगृहम् ॥ १२८२ ॥ इतिमन्त्रान्पठित्वातुदद्याद्द्वाह्यब लिन्ततः ॥ राक्षसानाम्पिशाचानाङ्गुह्यकोरगपक्षिणाम् ॥ १२८३ ॥ भूतानाञ्चतथायक्षगणानांग्रामवासिनाम् ॥ पूर्वोक्तैरागमैर्मंत्रै र्विधानेनविधानवित् ॥ १२८४ ॥ गृह्णन्तुबलयः सर्वेतृप्ताःशल्यंहरन्तुमे ॥ कुम्भाष्टकानान्तुजलैस्तद्गृहंचाभिषिंचयेत् ॥१२८५॥ भेदत्रयन्तथोत्पाताग्रहपीडाश्चदारुणाः ॥ तेसर्वेनाशमायान्तुशल्योद्धारेकृतेगृहे ॥ १२८६ ॥ आचार्यायचगान्दद्यादृत्विग्भ्यो दक्षिणान्तथा ॥ दानमानेनसंतोष्यदैवज्ञंस्थपतिन्तथा ॥ १२८७ ॥

राक्षस पिशाच गुह्यक उरग पक्षी इनको दे और ॥ १२८३ ॥ भूतोंको और यक्षोंके गणोंको और ग्रामके वासी देवताओंको विधिका ज्ञाता आचार्य पूर्वोक्त आगमके मंत्रोंसे उक्त बलिको दे ॥ १२८४ ॥ और यह कहै कि संपूर्ण देवता बलिको ग्रहण करो और तृप्त होकर मेरे शल्यको हरो और आठ कुंभोंके जलसे उस गृहको सींचै॥१२८५॥ तीन प्रकारके भेद और उत्पात और दारुण(भयानक)ग्रहके उत्पात ये सब उस घरमें नष्ट हो जाते हैं जिसमें शल्यका उद्धार किया हो ॥ १२८६ ॥ आचार्यको गौ दे और ऋत्विजोंको दक्षिणा दे और दान और

मानसे ज्योतिषी और स्थपतिको संतुष्ट करके ॥ १२८७ ॥ और अन्योंकोभी अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणासे विधिपूर्वक पूजकर दीन अंधे कृपण और विशेषकर लिंगी अर्थात् ब्रह्मचारी वा संन्यासी और ॥ १२८८ ॥ गायक और अन्य नट आदिकोंको दक्षिणा दे और अपनी शक्तिके अनुसार अपने घरमें ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ १२८९ ॥ फिर बंधुओंके संग भोजन करै और उस मंदिरमें सुखसे विहार करै हे ब्राह्मणो इसप्रकार जो मनुष्य अपने घरमें शल्योद्धार करता है ॥ १२९० ॥ वह सुखका भागी और दीर्घ

अन्यांश्चविधिवत्पूज्यदक्षिणाभिः स्वशक्तितः ॥ दीनान्धकृपणेभ्योपिलिङ्गिभ्योपिविशेषतः ॥ १२८८ ॥ गायकेभ्यस्तथान्येभ्योनटेभ्योदक्षिणांततः ॥ दद्यात्स्ववेश्मनियथाशक्त्याविप्रांश्चभोजयेत् ॥ १२८९ ॥ भुंजीतबन्धुभिस्सार्द्धंविहरेच्चसुखंततः एवंयः कुरुतेविप्राः शल्योद्धारंस्ववेश्मनि ॥ १२९० ॥ सुखवान्दीर्घजीवीस्यात्पुत्रान्पौत्रांश्चविन्दति ॥ १२९१ ॥ इतिवास्तुशास्त्रे शल्योद्धारनिर्णयोनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ अतः परंप्रवक्ष्यामिगृहाणांवेधनिर्णयम् ॥ अन्धकंरुधिरञ्चैवकुब्जङ्काणम्बधीरकम् ॥ १२९२ ॥ दिग्वक्रञ्चिपिटञ्चैवव्यङ्गजंमुरजन्तथा ॥ कुटिलङ्कुट्टकञ्चैवसुप्तञ्चशङ्खपालकम् ॥ १२९३ ॥ विकटञ्चतथाकंकंकैंकरंषोडशंस्मृतम् ॥ अंधकञ्छिद्रहीनञ्चविच्छिद्रंदिशिकानकम् ॥ १२९४ ॥

जीवी होता है और पुत्र और पौत्रोंको प्राप्त होता है ॥ १२९१ ॥ इति वास्तुशास्त्रे पंडितमिहिरचंद्रकृतभाषाविवृतिसहिते द्वारनिर्णयो नाम द्वादशोध्यायः ॥ १२ ॥ इसके अनंतर गृहोंके वेधनिर्णयको कहताहूं अंधक-रुधिर-कुब्ज-काण और बधिर ॥ १२९२ ॥ और दिग्वक्र और चिपिट और व्यंगज और मुरज कुटिल कुट्टक सुप्त और शंखपालक ॥ १२९३ ॥ और विकट और कैंक और कैंकर यह पूर्वोक्त सोलहप्रकारका वेध स्थानोंमें होता है और जो घर छिद्रोंसे हीन हो उसमें अंधक भेद होता है और जो विच्छिद्र दिशा-

ओंमें हो वह काण होता है ॥ १२९४ ॥ जिसके अंग हीन हों वह कुब्जक होता है और जिसका द्वार पृथिवीमें हो वह बधिर होता है जिसके छिद्र विकीर्ण (जहां तहां) हों उसे दिग्वक्र कहते हैं ॥ १२९५ ॥ और तुंग (उंचाई) से हीन हो वह चिपिट होता है और जिसमें अनर्थ दीखैं उसे व्यंग कहते हैं और जो पार्श्वोंमें उन्नत (ऊंचा) हो वह मुरज होता है और जो तालसे हीन हो वह कुटिल होता है ॥ १२९६ ॥ और जो जंघासे हीन हो वह शंखपाल कहाता है और जो दिशाओंमें वक्र (टेढा) हो वह विकट कहाता है और पार्श्वभाग जिसमें नहो उसे कंक कहते हैं और जो हलकेसमान उन्नत हो उसे कैंकर कहते हैं ॥ १२९७ ॥ ये पूर्वोक्त

हीनाङ्गंकुब्जकश्चैवपृथ्वीद्वारंबधीरकम् ॥ रन्ध्रंविकीर्णन्दिग्वक्रंरुधिरश्चविपद्गतम् ॥ १२९५ ॥ तुङ्गहीनश्चचिपिटंव्यङ्गंचानर्थ दर्शनम् ॥ पार्श्वोन्नतश्चमुरजंकुटिलन्तालहीनकम् ॥ १२९६ ॥ शंखपालञ्जंघहीनन्दिग्वक्रंविकटंस्मृतम् ॥ पार्श्वहीनन्तथाकंकंकैं करंचहलोन्नतम् ॥ १२५७ ॥ इत्येतेअधमाः प्रोक्तावर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ अन्धकेरोगमतुलंरुधिरेऽतीसारजंभयम् ॥ १२९८ ॥ कुब्जे कुष्ठादिरोगंस्यात्काणेंधत्वंप्रजायते ॥ पृथ्वीद्वारेसर्वदुःखंमरणंवाप्रजायते ॥१२९९॥ दिग्वक्रेगर्भनाशः स्याच्चिपिटेनीचसङ्गतिः ॥ व्यङ्गे चव्यङ्गतान्नैःस्वंमुरजेकुटिलेक्षयः॥१३००॥कुट्टकेभूतदोषःस्यात्सुतेगृंहपतेःक्षयः ॥ शङ्खपालेकुरूपंस्याद्विकटेऽपत्यनाशनम्॥१३०१॥

घर अधन कहे है और ये सब यत्नसे वर्जनेयोग्य हैं अंधकघरमें अतुल रोग होता है और रुधिर नामके घरमें अतीसार रोगका भय होता है ॥ १२९८ ॥ और कुब्जघरमें कुष्ठ आदि रोग होते हैं और काणघरमें अंधे मनुष्य पैदा होते हैं और पृथ्वी द्वारमें सब दुःख वा मरण होता है ॥ २९९ ॥ और दिग्वक्रमें गर्भका नाश होता है और चिपिटमें नीचोंकी संगति और व्यंगघरमें व्यंगता (अंगहीनता) और मुरजमें धनका अभाव और कुटिलमें क्षय (नाश) होता है ॥ १३०० ॥ और कुट्टकमें भूतदोष होता है और

सुप्तमें गृहके स्वामीका मरण होता है और शंखपालमें कुत्सित रूप होता है और विकटमें संतानका नाश होता है ॥ १३०१ ॥ और कंकघरमें शून्यता और कैंकरमें स्त्रीकी हानि और प्रैष्यता (दासभाव) होती है॰ और कुलिश (विजली) से तोडा हुआ काष्ठ जो घरके भीतर होय तो मरण होता है ॥ १३०२ ॥ और अग्निसे दग्ध काष्ठ घरमें होय तो निर्धनता होती है और संतानका नाश होता है और विरूप जर्जर जीर्ण और अग्रभागसे हीन और अर्द्धदग्ध ॥ १३०३ ॥ और अंगसे हीन और छिद्रहीन और छिद्रसे युक्त जो काष्ठ हों उनको वर्ज दे और वक्र काष्ठ होय तो परदेशमें वास होता है और अर्द्धशुष्कमें स्वामीसे भय होता है ॥ १३०४ ॥

कङ्केशून्यंकैंकरेचस्त्रीहानिः प्रैष्यताभवेत् ॥ कुलिशेनाहतेदारोर्गृहान्तस्थेमृतिर्भवेत् ॥ १३०२ ॥ वंह्निदग्धेनिर्धनत्वमपत्यादिक्षयो भवेत् ॥ विरूपाजर्जरीजीर्णाअग्रहीनार्द्धदग्धिताः॥ १३०३॥ अङ्गहीनाछिद्रहीनाछिद्रयुक्ताश्चवर्जयेत् ॥ वक्रेचपरदेशःस्याच्छुष्कार्द्धेस्वामिनोभयम् ॥ १३०४ ॥ व्यङ्गेरोगभयंघोरंसर्वाच्छिद्रेमरणंभयम् ॥ पाषाणान्तर्गतङ्गेहंशुभंसौख्यविवर्द्धनम् ॥१३०५॥ गेहमध्यास्थितं यच्चसर्वदोषकरंभवेत् ॥ विस्तीर्णमानंयद्गेहन्तदूर्ध्वंपरिकीर्तितम् ॥१३०६॥ शेषाश्चैवत्रिभागन्तुतद्गृहश्चोत्तमंस्मृतम्॥तुङ्गंमूनाधिकंरोगभयङ्करोतिविस्तृतम् ॥१३०७ ॥ त्रिकोणन्निधनंशीघ्रंगृहन्दीर्घन्निरर्थकम् ॥ अथान्यान्दशवेधांश्चकथयामिबाह्यःस्थितान् ॥१३०८॥

और व्यंगमें घोर रोगका भय होता है और सर्वछिद्रमें मृत्युका भय कहा है और जो घर पाषाणोंके अंतर्गत है वह शुभका दाता और सुखका वर्द्धक होता है ॥ १३०५ ॥ और गेहके मध्य भागमें स्थित पाषाण होय तो संपूर्ण दोषोंको करता है और जो घर विस्तीर्ण मानहै उसको ऊर्द्ध कहतेहैं ॥ १३०६ ॥ और जिसकी उंचाई घरकी भूमिके त्रिभागकी हो वह घर उत्तम कहा है और इससे न्यून वा अधिक जिसकी उंचाई हो वह विस्तार रोग भयको करता है ॥ १३०७ ॥ और त्रिकोण जो घर है वह धनसे हीन, शीघ्रही होता है और दीर्घ (लंबा) घर निरर्थक होताहै इसके अनंतर अन्यभी बाह्य देशमें स्थित

दश प्रकारके वेधोंको कहताहूं ॥ १३०८ ॥ कि कोण दृक् छिद्र छाया ऋतु वंश अग्र भूमि संघातका दाता जो उन दोनोंका हों ये बाह्यके दश वेध कहेहैं ॥ ३०९ ॥ जिस घरकी कोणके अग्रभागमें अन्य घर हो वा जिसकी कोणके संमुख अन्य कोण हो और तैसेही घरके अर्द्ध भागसे मिलीहुई अन्य घरकी कोण होय तो वह घर शुभका दाता नहीं होताहै ॥ १३१० ॥ कोणवेध घरमें व्याधि होतीहै और धनका नाश और शत्रुओंके संग विग्रह होताहै और प्रधान एक द्वारके संमुख प्रधान

कोणदृक्छिद्रदृक्छायाऋतुवंशाग्रभूमिकाः ॥ संघातदंतयोश्चैवभेदाश्चदशधास्मृताः ॥ १३०९ ॥ कोणाग्रेवान्यगेहेचकोणात्कोणान्तरंपुरः ॥ तथागृहार्द्धसंलग्नंकोणंनशुभदंस्मृतम् ॥ १३१० ॥ कोणवेधेभवेद्व्याधिर्धननाशोरिविग्रहम् ॥ एकम्प्रधानद्वारस्याभिमुखेन्यच्चप्रधानकम् ॥ १३११ ॥ द्वारंगृहाच्चद्विगुणंतादृग्वेधंप्रचक्षते ॥ दृष्टिवेधेभवेन्नाशोधनस्यमरणन्ध्रुवम् ॥ १३१२ ॥ समक्षुद्रंक्षुद्रवेधेपशुहानिकरंपरम् ॥ द्वितीयेतृतीयेयामेछायायत्रपतेद्गृहे ॥ १३१३ ॥ छायावेधन्तुतद्गेहंरोगदंपशुहानिदम् ॥ आदौपूर्वोत्तरापंक्तिः पश्चाद्दक्षिणपश्चिमे ॥ १३१४ ॥ वास्त्वन्तरेभित्तिसमंशुभदंतत्प्रकीर्तितम् ॥ विषमेदोषवहुलमृतुवेधम्प्रजायते ॥ १३१५ ॥

अन्य घरका द्वार हो ॥ १३११ ॥ और घरसे दूना द्वार हो उसकोभी गृहवेध कहतेहैं और दृष्टिवेधमें धनका नाश और निश्चयसे मरणहोताहै ॥ १३१२ ॥ समान क्षुद्र (छोटा) जो घर है वह क्षुद्रवेध होनेपर अत्यंत पशुहानियोंको करताहै और जिस घरमें दूसरे वा तीसरे पहरमें अन्य घरकी छाया पडै ॥ १३१३ ॥ छाया वेधका वह घर रोग और पशु हानिको देताहै और जिस घरमें पहिली गृहोंकी पंक्ति पूर्व उत्तरको हो और पिछली पंक्ति दक्षिण पश्चिमको हो ॥ १३१४ ॥ और वास्तुके मध्यमें जिसकी समा

न भित्तिहों वह घर शुभदायी कहाहै और विषम घरमें अर्थात् जो एकतरफ लंबा और एक तरफ न्यून हो उसमें अनेक दोषों का दाता ऋजुवेध होता है ॥ १३१५ ॥ और ऋजुवेधवाले घरमें महान् त्रास होता है इसमें संशय नहीं है और जिस घरके वंशके आगे वंश हो वा आगे बाह्यकी भित्ति हो ॥ ३१६ ॥ वह वंशवेध जिस घरमें हो उसमें वंशकी हानि होती है जिस घरकी उक्षों (भुजा) का संयोग यूकके अग्रभागमें हो जाय अर्थात् स्तंभके सन्मुख हो ॥ ३१७ ॥ उसको उक्षवेध जानै उसमें विनाश और कलह होता है जिस वास्तुकी पूर्वोत्तरकी भूमि विपरीत हों वा निम्न (नीची) हों ॥ ३१८ ॥ वह उच्चवेध होता है और वह शुभदायी नहीं

ऋजुवेधेमहात्रासोजायतेनात्रसंशयः ॥ वंशाग्रेचान्यवंशःस्यादग्रेवाभित्तिबाह्यगाः ॥१३१६॥ तद्वंशवेधयेद्गेहेवंशहानिः प्रजायते॥उक्षयो र्यत्रसंयोगोयूकाग्रेषुप्रज[illegible]ते ॥ १३१७ ॥ उक्षवेधंविजानीयाद्विनाशङ्कलहंभवेत् ॥ पूर्वोत्तरेवास्तुभूमौविपरीतेथनिम्नका ॥ १३१८ ॥ उच्चवेधोभवेन्नूनंतद्वेधेनशुभप्रदम्॥द्वयोर्गेहान्तरगतंगृहन्तच्छुभदायकम्॥१३१९॥गृहोच्चादर्द्धसंलग्नेतथापाराग्रसंस्थितम्॥ संघातमेलनं यत्रगेहयोर्भित्तिरेकतः ॥ १३२० ॥ विधिवश्यंशीघ्रमेवमरणंस्वामिनोर्द्वयोः ॥ पर्वतान्निःसृतंचाश्मदन्तवद्भित्तिसम्मुखम् ॥ १३२१ ॥ तद्दन्तवेधमित्याहुः शोकंरोगङ्करोतितत् ॥ अधित्यकासुयद्गेहंयद्गेहंपर्वतादधः ॥ १३२२ ॥

होता है दो घरोंके अंतर्गत (मध्यमें) जो घर है वह शुभदायी होता है ॥ ३१९ ॥ जिस घरकी ऊँचाईसे आधे भागपर दूसरा घर हो और तैसेही पारके अग्रभागमें स्थित हो और जिस घरमें दो घरोंकी भित्ति एक स्थानमें हो वह संघातमें होता है ॥ १३२० ॥ उन घरोंमें विधिवशसे शीघ्रही दोनों स्वामियोंका मरण होता है पर्वतसे निकासा हुआ पत्थर जिसकी भित्तिके संमुख हो ॥ १३२१ ॥ उसको दंतवेध कहते हैं और वह शोक और रोगको करता है और जो घर पर्वतकी भूमिके ऊपरहो वा जो घर पर्वतके नीचे भागमें

हो ॥ १३२२ ॥ और जो घर पत्थरोंसे मिला हो वा पाषाणोंसे युक्त घोर हो वा जो धाराके अग्रभागमें स्थित हो वा पर्वतके मध्यमें मिला हो ॥ ३२३ ॥ और जो नदीके तीरमें स्थित हो और दो शृंगों (शिखर) के अंतर्गत हो और जो घर भित्तियोंसे भिन्न हो और जो सदैव जलके समीप हो ॥ ३२४ ॥ और जिसका द्वार रोता हुआ हो अर्थात् उदासीनहो और जिसमें काक और उल्लुओंका निवास हो और जो कपाट और छिद्रोंसे हीन हो और जिसमें शशेका शब्द हो ॥ १३२५ ॥ और जिसमें अजगर सर्पका निवास हो और जो वज्रकी अग्निसे दूषित हो और जो जलके स्राव (वहाव) से युक्त हो वा कुब्ज काणा बधिर हो ॥ ३२६ ॥ और जो

यद्गेहश्चाश्मसंलग्नंघोरम्पाषाणसंयुतम् ॥ धाराग्रंसंस्थितंवापिसंलग्नान्तरपर्वते ॥ १३२३ ॥ नदीतीरस्स्थितंवापिशृङ्गान्तरगतन्तथा ॥ भित्तिभिन्नन्तुयद्गेहंसदाजलसमीपगम् ॥ १३२४ ॥ रुदन्तद्वारशब्दार्थङ्काकोलूकनिवासितम् ॥ कपाटच्छिद्रहीनञ्चशशनादितम् ॥ १३२५ ॥ स्थूलसर्पनिवासञ्चयत्रवज्राग्निदूषितम् ॥ जलस्रावान्वितंभीरुकुब्जङ्काणम्बधीरकम् ॥ १३२६ ॥ यच्चोपघातानिभवंब्रह्महत्यान्वितन्तथा ॥ शालाविहीनंयच्चापिशिखाहीनन्तथैवच ॥ १३२७ ॥ भित्तिबाह्यगतैर्दारुकाष्ठैरुधिरसंयुतम् ॥ कृतङ्कण्टकिसंयुक्तञ्चतुष्कोणन्तथैवच ॥ १३२८ ॥ श्मशानदूषितंयच्चयच्चैत्यानिकास्थितम् ॥ वासहीनंन्तथाम्लेच्छचाण्डालैश्चाधिवासितम् ॥ १३२९ ॥ विवरान्तर्गतंवापियच्चगोधाधिवासितम् ॥ तद्गृहेनवसेत्कर्त्तावसन्नपिनजीवति ॥ १३३० ॥

उपघात (लडाइसे मरण) से युक्त हो और जो ब्रह्महत्यासे युक्त हो और जो शालासे रहित हो वा शिखासे विहीन हों ॥ ३२७ ॥ और भित्तिके बाह्यके जो दारु काष्ठ हैं उनसे जो रुधिर संयुक्त हो और जो कांटोंसे युक्त चारों कोणोंमें हो ॥ ३२८ ॥ और जो श्मशानसे दूषित हों वा जो चैत्य (चबूतरा) पर स्थित हो और जो मनुष्योंके वाससे हीन हो और जिसमें म्लेच्छ चांडाल वसे हों ॥ ३२९ ॥ और जो घर छिद्रोंके अंतर्गत हो और जिसमें गोधाका निवास हो इस पूर्वोक्त सब प्रकारके घरमें कर्ता न वसै और

182

वसै तो न जीवै ॥ १३३० ॥ तिससे बुद्धिमान् मनुष्य इन पूर्वोक्त प्रकारके घरोंको वर्ज दे और अन्य घरमें लगे हुये काष्ठको अन्य घरमें न लगावै ॥ १३३१ ॥ और बुद्धिमान् मनुष्य पुराने काष्ठोंसे घरको न बनवावै और बनवावै तो मरण और संपदाओंके नाशको प्राप्त होता है ॥ १३३२ ॥ जीर्ण घरमें नवीन काष्ठ श्रेष्ठ होता है और नवीन घरमें जीर्ण (पुराना) काष्ठ श्रेष्ठ नहीं होता है और जिस स्थानके घर पूर्व उत्तरमें नीचे हों और दक्षिण पश्चिमके ऊंचे हो ॥ १३३३ ॥ और जिसकी संपूर्ण दिशा तिरछी हों और जिसके भागमें पीडाके दाता घर हों और जो दक्षिणको एक योजन ऊंचा हो और पश्चिममें अर्द्धयोजन ऊंचा हो ॥ १३३४ ॥ और उससे आधा

तस्मात्सर्वप्रयत्नेनवर्जयेन्मतिमान्नरः ॥ अन्यवेश्मस्थितंदारुनैवान्यस्मिन्प्रयोजयेत् ॥ १३३१ ॥ नगृहंकारयेद्धीमान्पुराणैर्नचदारुभिः ॥ कुर्वन्नाप्नोतिमरणंसंपदांनाशमेवच ॥ १३३२ ॥ जीर्णेतुनूतनंशस्तन्नोजीर्णंनूतनेशुभम् ॥ पूर्वोत्तरेनीचगताउच्चस्थादक्षिणापरे ॥ १३३३ ॥ तिर्यग्गताः सर्वदिशाभागेपीडावहागृहाः ॥ दक्षिणेयोजनमुच्चंपश्चिमेचार्द्धयोजनम् ॥ १३३४ ॥ तदर्द्धमुत्तरेचैवतस्यार्द्धंपूर्वदिक्स्थितम् ॥ एतद्वेधंनृपाणाञ्चगृहाणांकथितन्द्विजाः ॥ १३३५ ॥ विशेषेणद्विजातीनांम्प्रमाणंकथयाम्यतः ॥ पूर्वोत्तरेनीचभागाशतपादान्वितन्तथा ॥ १३३६ ॥ दण्डानाम्पश्चिमेयाम्येद्विशतंसार्द्धसंयुतम् ॥ ऊर्द्ध्वीभूतः पुमान्यस्यगेहाद्गेहान्तरंयदि ॥ १३३७ ॥ दक्षिणस्थंप्रपश्येततद्वेधञ्चविनिर्दिशेत् ॥ उच्चस्थोप्यथनीचस्थःसदायाम्यगृहन्त्यजेत् ॥ १३३८ ॥

ऊंचा उत्तरमें हो और उससे आधा पूर्व दिशामें हो यह वेध राजाओंके घरोंका हे द्विजों मैंने कहा है ॥ १३३५ ॥ इसके अनंतर विशेषकर द्विजातियोंके घरोंका प्रमाण कहताहूं कि पूर्व उत्तरके नीचे भागमें सौ १०० पादोंसे जो युक्त हो ॥ १३३६ ॥ और पश्चिम और दक्षिणमें जिसकी लंबाई सार्द्धद्विशत (अढाई सौ) हो और जिसके ऊपरके भागमें स्थित मनुष्य एक घरसे यदि दूसरे घरको ॥ १३३७ ॥ जो दक्षिणमें स्थित हो उसको देख सकै वह वेध कहा है और उच्च भागमें स्थित हो वा नीच

184

भागमें स्थित हो परंतु दक्षिणके घरको सदैव त्याग दे ॥ १३३८ ॥ और उसमें वसै तो अवस्था पुत्र कलत्र ये शीघ्र नष्ट होते हैं पूर्व उत्तरमें जो घर नीचाहै और वह जलके समीप भागमें होय तो ॥ १३३९ ॥ मध्यकी भूमि दोषकी दाता नहीं होती इतने ये दोनों घर दीखनेके योग्य हों और जो घर ऊंचेभागमें स्थित पूर्वदिशाके भागमें वीस दंडहों वहभी श्रेष्ठ है ॥ १३४० ॥ अन्यजातिका मनुष्य राजाके मंदिरमें न वसै और सौम्य (उत्तर) भागमें जिसके तीसदंड और पश्चिममें चालीस दंडहों ॥ १३४१ ॥ और जिसकी दक्षिणदिशामें पंचाशत ५० दंड हों और नीचे भागमें

आयुःपुत्रकलत्राणियतः शीघ्रंविनश्यति ॥ पूर्वोत्तरेगृहेनीचेभवेदादौजलान्तिके ॥ १३३९ ॥ मध्यभूमिर्नदोषाययावंदृष्टिपथेनयोः ॥ तुङ्गस्थेपूर्वदिग्भागेदण्डान्विंशतिसम्मितान् ॥ १३४० ॥ नचान्यजातीयनरोनृपसद्मवसेन्नरः ॥ सौम्यभागेतथात्रिंशच्चत्वारिंसच्चपश्चिमे ॥ १३४१ ॥ याम्येपञ्चाशत्संख्यानिदण्डानिनीचसंस्थितः ॥ प्रासादवीथीचतथागृहञ्चआग्नेयवायव्यतथेशरक्षे ॥ त्रिकोणवेधः कथितः क्रमेणसुतार्थिनातत्रविवर्जनीयाः ॥ १३४२ ॥ आग्नेयन्दृष्टितोविद्धंवायौद्विगुणभूमिषु ॥ नैर्ऋत्येदृक्पथंयावदीशानेत्रिगुणंगृहात् ॥ १३४३ ॥ एतन्नृपाणाङ्कथितंवर्णानामनुपूर्वशः ॥ पूर्वाशादिक्रमेणैवब्राह्मणादिक्रमेणच ॥ पञ्चाशद्धनुषान्नीचैर्विधेयन्द्विजमन्दिरात् ॥ तथासौम्यजनोनीचोदण्डान्सप्ततिसंमितान् ॥ १३४४ ॥

स्थितहों—और प्रासादकी वीथी (गली) और घर और अग्नि और ईशान और नैर्ऋत कोणमें जिसके वेध हों यह त्रिकोणवेध संक्षेपसे कहा पुत्रका अभिलाषी मनुष्य इसको विशेषकर वर्जदे ॥ १३४२ ॥ अग्निकोणका घर दृष्टिसे विद्ध होताहै और वायुकोणका घर द्विगुणभूमियों में विद्ध होताहै और नैर्ऋत्य में इतने दृष्टिके मार्गमें हो और ईशानमें गृहसे तिगुनेगृहसे वेध होताहै ॥ १३४३ ॥ यह राजाओंके घरों का वेध वर्णोंके क्रमसे कहा और वह वेध पूर्व दिशाआदिके क्रमसे और

ब्राह्मण आदिकों के क्रमसे कहा द्विजों के मंदिरसे पंचाश धनुष नीचा अन्यजातियों को मंदिर बनवाना और सौम्य स्वभावका नीचजन सत्तरदंड नीचा घर बनवावै ॥ १३४४ ॥ वरुणकी दिशामें स्थित घर ऊंचाई में प्रांतके दंड भर पुरके प्रमाणसे न्यूनहो और दक्षिणदिशाका घर ऊंचाई में वीस दंड भर न्यूनहोना चाहिये ॥ १३४५ ॥ अब संक्षेपसे शूद्रोंके पुरसे लेकर पुरको कहताहूं प्रांतभागमें दश दंडपर्यंत पूर्व भागमें नीचा हो ॥ १३४६ ॥ नीचे स्थानमें स्थित घरके उत्तरभागमें

जलाशासंस्थितोप्युच्चेप्रान्तदण्डान्हरेत्पुरात् ॥ याम्योच्चस्थोहरेद्गेहन्दण्डान्विंशतिसम्मितान् ॥ १३४५ ॥ शूद्राणान्तुसमासेनकथयामिपुरात्पुरम् ॥ दशदण्डानिपर्य्यन्तंप्रयान्तेपूर्वनीचगम् ॥ १३४६ ॥ उत्तरेद्वादशदण्डंनीचस्थानस्थितस्यतु ॥ पश्चिमेत्रिंशदण्डानियदिचेदुच्चभूमिषु ॥ १३४७ ॥ दक्षिणेशतदण्डानिगृहाणिपरिवर्जयेत् ॥ वैपरीत्येपादहीनान्दण्डान्सन्त्यज्यबुद्धिमान् ॥ ॥१३४८॥शतदण्डानिपर्यंतम्पीड्यतेपुरवासिनाम्॥ समभूमिषुसन्त्याज्योवेधयोद्विजपुङ्गवाः ॥१३४९॥दक्षिणेन्तोदिग्विषयेभवनवरेर्थक्षयोंगनादोषः॥ सुतमरणंप्रेक्षत्वेभवतिसदातत्रवासिनांपुंसाम् ॥ गृहंगृहार्द्धञ्चतथाचतुर्थीभावोभवेदिग्विषयेस्थितोवा ॥ ऊर्द्धंचनीचेयमदिक्स्थितस्यगेहञ्चचाग्रेप्रभवेच्चदोषः ॥ १३५० ॥

द्वादश १२ दंड होने चाहियें और पश्चिमका घर यदि उच्चभूमिमें होय तो तीस दंड होतेहैं ॥ १३४७ ॥ और दक्षिण भागमें सौदंडपर्यंत गृहोंको वर्जदे अर्थात् न बनवावै और विपरीतभागमें बुद्धिमान् मनुष्य पूर्वोक्तसे पादहीन दंडोंको त्यागकर ॥ १३४८ ॥ सौदंडपर्यंतमें पुरवासियोंको पीडा होतीहै और ये द्विजों में श्रेष्ठोंको समान भूमिमें वेध त्यागने योग्यहै ॥ १३४९ ॥ जिस भवनवर (श्रेष्ठ) का दिशाओंके विषयमें दक्षिणमें अंतहो उसमें धनका क्षय और स्त्रियों में दो

ष होताहै और प्रेक्षत्व (दीखने योग्य जो अन्य घरसे हो) में उस घरमें बसनेवाले पुरुषोंके पुत्रोंका मरण होता है पूरा घर वा घरका अर्द्ध भाग यह चौथा भाव यदि दिशाओंके विषयमें स्थित हो और दक्षिण दिशामें स्थित घरके ऊंचे, वा नीचे, भागमें आगे दूसरा घर होय तो दोष होता है ॥ १३५० ॥ जैसे अमावास्यामें उत्पन्न हुई कन्या और पुत्र ये योगसे पिताके मरणको करते हैं ऐसे ही प्रतापका अभिलाषी मनुष्य दक्षिण दिशाके घरको त्याग दे ॥ ३५१ ॥ और जैसे रक्तकेशी लंबोष्ठी पिंग (पीले) नेत्री कृष्णतालुका जो कन्या है वह शीघ्र भर्ताको हनती है इसी प्रकार याम्यदिशाके घरसे पुरभी नष्ट करता है ॥ ३५२ ॥ और आलस्यसे जैसे देह और

अमावास्योद्भवाकन्यापितृहायोगतः सुतः ॥ तथायाम्यगृहन्त्याज्यन्नरेणभूतिमिच्छता ॥ १३५१ ॥ रक्तकेशीप्रलम्बोष्ठीपिङ्गाक्षी कृष्णतालुका ॥ भर्तारंहन्तिसाक्षिप्रंतथायाम्यगृहात्पुरम् ॥१३५२॥ आलस्येनयथादेहङ्कुपुत्रेणयथाकुलम् ॥ दरिद्रेणयथाजन्मतथाया म्यगृहात्पुरम् ॥१३५३॥ उदीचींविन्यसेदादौपश्चाद्याम्यन्तुविन्यसेत् ॥ तद्गृहंविद्यतेतत्रपुत्रदारादिनाशनम् ॥१३५४॥ ईशानेविन्यसे च्छागन्नाछागः सिंहभक्षकः ॥ आग्नेयस्थंगृहङ्काकंवायव्यस्थंश्येनन्तथा ॥१३५५॥ काकंचभक्षयेदादौपश्चान्नैर्ऋत्यादिकृतम् ॥ छागस दृशमीशानेसिंहनाम्नातुनैर्ऋते ॥१३५६॥ सिंहोभक्षयतेश्येनंनकाकः श्येनभक्षकः ॥ आग्नेयादिक्रमेणैवअन्त्यजावर्णसंकराः ॥१३५७॥

जैसे कुपुत्रसे कुल और दरिद्रसे जन्म वृथा होते हैं ऐसेही याम्य गृहसे पुरनष्ट होता है ॥ ३५३ ॥ जहां प्रथम उत्तरदिशामें घर बनाये जांय और दक्षिणदिशामें पीछे बनाये जांय ऐसा घर जहां हो वहां पुत्र और दारा आदिका नाश होता है ॥ ३५४ ॥ ईशानमें छाग (बकरा) का स्थापन करै और छाग सिंहका भक्षण नहीं कर सकता अग्निकोणका घर काक होता है और वायव्यदिशामें स्थित घर श्येन होता है ॥ ३५५ ॥ वह श्येन प्रथम काकको भक्षण करता है और पीछे नैर्ऋत्य दिशाके कृत्यको बनवावै. और ईशानमें भी छागके समान चिह्न बनावै और नैर्ऋत्यका घर सिंहके नामसे होता है ॥ १३५६॥ सिंह श्येनको भक्षण करता है और काक श्येनको

भक्षण नहीं कर सकता और अग्निकोण आदिके क्रमसे अंत्यज और वर्णसंकरोंको बसावै ॥ १३५७ ॥ और जातिसे भ्रष्ट (पतित) वा चौर हैं वे विदिशाओंमें स्थित होंय तो दोषदायी नहीं होते और इससे विपरीत भावसे स्थित होंय तो उनके गृहोंके विरोधसे दोष होता है ॥ १३५८ ॥ घरसे उत्तरदिशामें द्विगुण भूमि और पूर्वमें घरके समान भूमि और पश्चिममें तिगुनी भूमि और दक्षिणमें एककोशभर भूमि रिक्त (खाली) श्रेष्ठ कही है ॥ १३५९ ॥ और जो घर मेखलापर स्थित हो और जो द्वारके संमुखहो वह घर यदि सौम्य और

ज्ञातिभ्रष्टाश्चचौराश्चविदिक्स्थानैवद्दोषदाः ॥ वैपरीत्येनवेधः स्यात्तद्गृहाणांविरोधतः ॥ १३५८ ॥ उत्तरेद्विगुणाभूमिः समाभूमिश्चपूर्वके ॥ पश्चिमेत्रिगुणाभूमिःक्रोशमेकन्तुदक्षिणे ॥ १३५९ ॥ मेखलासंस्थितङ्गेहन्द्वारस्याभिमुखंचयत् ॥ तद्गृहं नशुभम्प्रोक्तंयदिसौम्योत्तरेस्थितम् ॥ १३६० ॥ दशहस्तामेखलास्याच्चतुर्थांशेनवागृहात् ॥ नगराद्द्विगुणाभूमिः परित्याज्याशुभेप्सुना ॥ १३६१ ॥ नगरंकारयेच्चान्यत्तत्रवेधंविनिर्दिशेत् ॥ यस्मिन्मार्गेजनास्सर्वेमृतायान्तिपितृक्षयम् ॥ १३६२ ॥ मार्गः सएवविज्ञेयः शेषा देशान्तरम्प्रति ॥ गृहभित्तिषुयेलग्नास्तेगृहागृहिणांसदा ॥ १३६३ ॥ भयदाःपुत्रसन्तापकारकास्तत्रकारयेत् ॥ यथायाम्यन्तथा वायंयथावायन्तथाउदक् ॥ १३६४ ॥

उत्तरदिशामें स्थित होय तो शुभ नहीं कहा ॥ १३६० ॥ दश हाथकी वा घरके चतुर्थांशकी मेखला होती है और शुभका अभिलाषी पुरुष नगरसे दूनी भूमिको त्याग दे ॥ १३६१ ॥ और अन्यथा नगरको बनवावै तो उसमें वेधको देखै जिस मार्गसे मरेहुये मनुष्य यमलोकको जाते हैं ॥ १३६२ ॥ वही मार्ग जानना शेष मार्ग देशांतरोंके होते हैं जो गृहस्थियोंके घर घरोंकी भित्तियोंसे मिले हुये हैं ॥ १३६३ ॥ वे भयके दाता और पुत्रोंको दुःखके दाता होते हैं इससे जैसा घर याम्य (दक्षिण) में बनावै वैसाही वायु (पश्चिम) में बनावै और जै-

सा वायु दिशा में हो वैसाही उत्तरदिशामें बनावे ॥ १३६४ ॥ और जैसा उत्तरमें हो तैसाही पूर्वमें बनवावे तौ साम्य (इकसा) फल कहा है जैसे मनुष्य भवन पर चढ कर धनुषका आकर्षण (खींचना) कर सकै ॥ १३६५ ॥ और बाहिरके मनुष्यों को देखसकै वा बाणसे लक्ष्यवालेका भेदन कर सकै और मूलसे उसके ईश (स्वामी) की दिशापर्यंत स्थल जलसे भरा हुआहो ॥ १३६६ ॥ और जो कहीं भी छिद्रमें विलीन (छिपा) न हो ऐसे स्थलके मध्यका घर दोषदायी नहीं होता कूप उद्यान प्रपा वापी तडाग और जलाशयमें ॥ १३६७ ॥ मंदिर देवस्थान चैत्य प्राकार तोरण इनमें निरंतर वास्तु वसताहै उनके मध्यमें स्थित

यथाउदक्तथापूर्वेफलंसाम्यंप्रकीर्तितम् ॥ आकर्षयेद्यथाचापमारुह्यभवनंनरः ॥ १३६५ ॥ विलोकयतिबाणेनलक्षवत्तंभिनत्तिसः ॥ मूलात्तदीशकाष्ठांतंजलेनापूरितंस्थलम् ॥ १३६६ ॥ नविलीनंक्वचिद्रन्ध्रेतदंतस्थंनदोषकम् ॥ कूपोद्यानप्रपावाप्तीतडागेचंजलाशये ॥ १३६७ ॥ मन्दिरेदेवसदनेचैत्येप्राकारतोरणे ॥ सततंवसतेवास्तुतन्मध्यस्थंगृहेशुभम् ॥ १३६८ ॥ दक्षिणोत्तरयोश्चैव तथापश्चिमपूर्वयोः ॥ मार्गयोर्मेलनंयत्रतच्चतुष्पथमीरितम् ॥ १३६९ ॥ आदौगृहन्दक्षिणभागसंस्थंपश्चात्तथोत्तरम् ॥ मध्यस्थानकृतङ्गेहन्नदुष्यतिकदाचन ॥ १३७० ॥ तथैवपश्चिमेपूर्वेकृतंमध्यगतंगृहम् ॥ तथैवसुखदम्प्रोक्तंसदनंपश्चिमेस्थितम् ॥ १३७१ ॥

घर शुभ होताहै ॥ १३६८ ॥ दक्षिण उत्तरमें तैसेही पश्चिम पूर्वमें इन चारोंमें जहां मार्गों का मेल हो उसे चतुष्पथ (चोराहा) कहते हैं ॥ १३६९ ॥ पहिला घर दक्षिणभागमें स्थितहो और पश्चिमका घर उत्तरभागमें स्थितहो इनके मध्यस्थानमें कियाहुआ जो घरहै वह कदाचितभी दूषित नहीं होता ॥ १३७० ॥ और तैसेही पश्चिम और पूर्व घरोंके मध्यमें गत जो घर है वहभी तिसी प्रकार सुखदाता है और तैसेही पश्चिमदिशामें स्थित सदन (घर) सुखदायी होताहै ॥ १३७१ ॥

विषम घरमें वेध नहीं होता और नतोन्नत (ऊंचे नीचे) में वेध नहीं होता, घरके दक्षिणभागमें कूप दोषका दाता माना है ॥ १३७२ ॥ होय तो संतानकी हानि भूमिका नाश अथवा अद्भुत रोग होता है और दीपककी ओर (पंक्ति) का दर्शन न हो वा सम भूमियोंके दूर हो ॥ १३७३ ॥ तो संपूर्ण घर चाहै पूर्वोक्त दिशाओंमें स्थित हो वेधको प्राप्त नहीं होते पीपल पिलखन वट और गूलर ये चारों वृक्ष क्रमसे ॥ १३७४ ॥ पूर्व आदि दिशाओंमें होंय तो वेध होता है यह पूर्व समयके आचार्य जानते हैं. और राजवृक्ष और निंब आम्र और

विषमेनभवेद्वेधंनवेधश्चनतोन्नते ॥ गृहस्यदक्षिणेभागेकूपोदोषप्रदोमतः ॥ १३७२ ॥ अपत्यहानिर्भूनाशस्त्वथवारोगमद्भुतम् ॥ अदर्शनेनदीपारेदूरेवासमभूमिषु ॥ १३७३ ॥ नवेधन्तेगृहाः सर्वेयथोक्तापिदिशिस्थिताः ॥ अश्वत्थश्चप्लक्षवटोदुम्बराश्चक्रमेणच ॥ १३७४ ॥ पूर्वादिदिक्षुवेधःस्यात्सर्वेषांप्राक्तनाविदुः ॥ राजवृक्षंतथानिंबंचाम्रकङ्कदलीफलम् ॥ १३७५ ॥ पूर्वादिक्रमयोगेनवेधन्त्येतद्रुमास्तथा ॥ आग्नेयादिक्रमेणैवक्षीरिणोथकदम्बकाः ॥१३७६॥ कण्टकाः कदलीस्तम्भाःवेधन्तेचफलद्रुमाः ॥विवरम्पूर्वदिग्भागेदक्षिणेमठमन्दिरम् ॥ १३७७ ॥ पश्चिमेपौष्करन्तोयंखातमुत्तरसंज्ञके ॥ पूर्वेणफलिनोवृक्षाः क्षीरवृक्षाश्चदक्षिणे ॥ १३७८ ॥ पश्चिमेजलजावृक्षारिपुतोभयदायकाः॥क्षीरिणश्चार्थनाशायफलिनोदोषदामताः ॥ दशदण्डानिपर्यन्तम्पीड्यन्तेपुरवासिनाम् ॥१३७९॥

केला ॥ १३[illegible] ॥ ये वृक्ष पूर्व आदि दिशाके क्रमसे होंय तो वेध करते हैं और आग्नेय आदि विदिशाओंके क्रमसे दूधवाले वृक्ष और कदंब ॥ १३७६ ॥ कंटक वृक्ष और केलेके स्तंभ होंय तो ये फलके वृक्ष वेध करते हैं. पूर्व दिशाके भागमें विवर (छिद्र) हो और दक्षिणमें मठ मंदिर हो ॥ १३७७ ॥ और पश्चिममें कमलों सहित जल हो और उत्तरमें खाई हो पूर्वमें फलवाले वृक्ष हों और दक्षिणमें दूधके वृक्ष हों ॥ १३७८ ॥ पश्चिममें जलमें उत्पन्न वृक्षहो ये सब शत्रुओंसे भयको देते हैं और दूधवाले अर्थको नष्ट करते हैं और फलवाले

दोषको देते हैं ॥ १३७९ ॥ दश दंडपर्यंत पुरके वासियोंको पीडा देते हैं और कलह नेत्ररोग व्याधि शोक और धनके नाशको करते हैं ॥ १३८० ॥ वीथीके अंतर (मध्य) में दोष होता है और मार्गके मध्यमें दोष नहीं होता. विदिशाओंमें स्थित हो और दूरवर होय तो सदैव वेध नहीं है ॥ १३८१ ॥ नीचेके स्थानमें वेध होता है और कोणमें भित्तिके मध्यमें दोष नहीं और न चैत्यके मध्यमें दोष होता है ॥ १३८२॥ और कमलोंके मध्यमें और बाणघातकमें दोष नहीं है और विकोणोंमें और न फलके वृक्षमें दोष है ॥ १३८३ ॥

कलहश्चाक्षिरोगंचव्याधिशोकन्धनक्षतिः ॥ १३८० ॥ वीथ्यन्तरेणदोषः स्यान्नदोषम्मार्गमध्यगम् ॥ विदिक्स्थंनैववेधन्तुनवेधन्दूरतः सदा ॥ १३८१ ॥ नीचस्थानेभवेद्वेधः कोणवेधस्तथैवच ॥ भित्त्यंतरेनदोषःस्यान्नदोषश्चैत्यमध्यमम् ॥ १३८२ ॥ नदोषः पुष्करान्तस्थन्नदोषोबाणघातके ॥ नदोषन्तुविकोणेतुनदोषंफलवृक्षके ॥ १३८३ ॥ नदोषन्नीचजातेषुनदोषंभग्नमन्दिरे ॥ चतुष्पथान्तेनभवेद्वेधोजीर्णगृहान्तरे ॥ १३८४ ॥ अत्युच्चमतिनीचञ्चमध्येविषमलंघनम् ॥ अन्तर्जलाद्रिपतनेवेधदोषोनविद्यते ॥ १३८५॥ अन्तरारोपितावृक्षाः बिल्वदाडिमकेसराः ॥ नतत्रवेधदोषःस्यात्सत्यम्ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम् ॥ १३८६ ॥ षड्वर्षैम्म्रियतेस्वामीगतश्रीर्नवमेभवेत्. ॥ चतुर्थेपुत्रनाशः स्यात्सर्वनाशस्तथाष्टमे ॥ १३८७ ॥

और नीचजातियोंमें दोष नहीं है और न भग्न (टूटे) मंदिरमें दोष है और चौराहेके अंतमें दोष नहीं और न जीर्णगृहोंके मध्यमें दोष है ॥ १३८४ ॥ अत्यंत ऊंचा और अत्यंत नीचा और मध्यमें विषमलंघन जिसमें हों और मध्यमें जहां जल और पर्वत हों इनमें भी वेधका दोष नहीं होता ॥ १३८५ ॥ जिस मंदिरके मध्यमें बेल आम अनारके वृक्ष लगाये हुये हों उसमें भी वेधका दोष नहीं है यह सत्य बात ब्रह्माके मुखसे सुनी है ॥ १३८६ ॥ छटे वर्षमें स्वामी मरता है और नवमें वर्षमें लक्ष्मीसे रहित होता है और चौथे वर्षमें पुत्रका

नाश होता है और आठवें वर्षमें सर्व नाश होता है ॥ १३८७ ॥ और एक पक्षसे एक माससे तीन ऋतुओंसे घर शुभ वा अशुभ फलको देता है यही कुशल है इससे परे बुद्धिमानोंका उसके विषे विचार नहीं है ॥ १३८८ ॥ जिस मँदिर वा किलेमें हस्तीका स्थान दक्षिण भागमें हो और पूर्व पश्चिम उत्तरमें सिंहका स्थान होय तो मरण करता है और पुत्रोंको महान् दोषोंको देता है ॥ ॥१३८९ ॥ और पूर्वमें वृष और जल वा ध्वजा होय तो महान् दोषको करते हैं यदि कंठीरव नामके घर दक्षिण और पश्चिम दिशाओंमें होंय तो ॥ १३९० ॥

पक्षेणमासेनऋतुत्रयेणसंवत्सरेणापिफलंविधत्ते ॥ शुभाशुभंक्षेममिदंबुधैस्तुनातःपरंतत्रविचारमस्ति ॥ १३८८ ॥ मातङ्गोद क्षिणेभागेपूर्वेपश्चात्तथोत्तरे ॥ सिंहोविधत्तेमरणंपुत्राणान्दोषदम्महत् ॥ १३८९ ॥ पूर्वेवृषन्तथातोयेध्वजंदोषकरम्महत् ॥ इतिकण्ठीरवौगेहौयाम्यपश्चिमदिक्स्थितौ ॥ १३९० ॥ पूर्वोत्तरेध्वजोक्षाणाम्महापीडाकरौमतौ ॥ जंबीरैःपुष्पवृक्षैश्चपनसैर्दा. डिमैस्तथा ॥ १३९१ ॥ जातीभिर्मल्लिकाभिश्चशतपत्रैश्चकेसरैः ॥ नालिकेरैश्चपुष्पैश्चकार्णिकारैश्चकिंशुकैः ॥ १३९२ ॥ वेष्टितंभवनंनृणांसर्वसौख्यप्रदायकम् ॥ आदौवृक्षाणिविन्यस्यपश्चाद्गृहाणिविन्यसेत् ॥ १३३९ ॥ अन्यथायदिकुर्यात्तुतद्गृहन्नै वशोभनम् ॥ नगरंविन्यसेदादौपश्चाद्गृहानिविन्यसेत् ॥ १३९४ ॥ अन्यथायदिकुर्वाणस्तदानशुभमादिशेत् ॥ पीताथपूर्वे कपिलाहुताशेयाम्येचकृष्णानिर्ऋतौचश्यामा ॥ शुक्लाप्रतीच्यांहरिताथवायौश्वेताथसौम्येधवलाचईशे ॥ १३९६ ॥

और पूर्व उत्तरमें ध्वजा होय तो बैलोंको महापीडा करनेवाले कहे हैं, जंबीर पुष्पके वृक्ष, और पनस और अनार इनसे ॥१३९१॥ जाती चमेली शतपत्र (कमल) और केशर नारियल पुष्प और कर्णिकार (कनेर) इनसे ॥ १३९२ ॥ वेष्टित (ढका) जो घर है वह मनुष्योंको संपूर्ण सुखके दाता होतेहैं. पहिले वृक्षोंको लगा कर पीछेसे गृहोंको बनावैं ॥ १३९३ ॥ यदि अन्यथा करै तो वह घर शोभन नहीं होता. प्रथम नगरका विन्यास करै अर्थात् नगरकी भूमिका निर्णय करै पीछेसे घरोंको बनवावै ॥ १३९४ ॥ यदि अन्यथा

करै तो तब शुभको न कहै अर्थात् वह घर शुभदायी नहीं होता और पूर्वदिशामें पीली पताका अग्निकोणमें कपिलवर्णकी दक्षिणमें काली और निर्ऋतिमें श्यामा और पश्चिममें शुक्ल और वायव्यमें हरी और उत्तरमें सपेद और ईशानमें धवल पताका होतीहै ॥ १३९५ ॥ और ईशान पूर्वके मध्यमें सपेद और पश्चिमनैर्ऋतके मध्यमें रक्तवर्णकी पताका कहीहै ॥ १३९६ ॥ और किंकिणी (झालर) से युक्त संपूर्ण वर्ण (रंग) की पताका मध्यमें होतीहै और वह भुजाके प्रमाणकी होतीहै और उसका स्तंभभी भुजाके प्रमाणका होताहै ॥ १३९७ ॥ और द्वारमार्ग के पूर्वभागमें सोलह हाथकी ध्वजा होतीहै और इसका स्तंभभी घंटा और

ईशानपूर्वयोर्मध्येश्वेतापश्चिमनैर्ऋते ॥ तयोर्मध्येरक्तवर्णापताकापरिकीर्तिता ॥ १३९६ ॥ सर्ववर्णातथामध्येपताकाकिंकिणीयुता ॥ बाहुप्रमाणाकर्तव्यास्तंभंवाहुप्रमाणकम् ॥ १३९७ ॥ यद्वारमार्गेपूर्वेतुध्वजः षोडशहस्तकः ॥ स्तम्भोस्यविधिवत्स्थाप्यः सघण्टाभरणांकृतः ॥ १३९८ ॥ पुष्पमालान्वितः स्थाप्योद्वारमार्गेथदक्षिणे ॥ इतिप्रोक्तंवास्तुशास्त्रम्पूर्वङ्गर्गायधीमते ॥ १३९९ ॥ गर्गात्पराशरः प्राप्तस्तस्मात्प्राप्तोबृहद्रथः ॥ बृहद्रथाद्विश्वकर्माप्राप्तवान्वास्तुशास्त्रकम् ॥ १४०० ॥ सविश्वकर्माजगतोहितायाकथयत्पुनः ॥ वासुदेवादिषुपुनर्भूलोकंभक्तितोब्रवीत् ॥ १४०१ ॥ इदंपवित्रंपरमंरहस्यंयः पठेन्नरः ॥ तस्यस्थामदवितथावाणीसत्यंसत्यंवदाम्यहम् ॥ १४०२ ॥

भूषणोंसे सहित विधिपूर्वक स्थापन करना ॥ १३९८ ॥ और दक्षिणमें पुष्पमालाओंसे युक्त स्तंभद्वारमार्गमें स्थापन करै. यह वास्तुशास्त्र प्रथम बुद्धिमान् गर्गमुनिको ब्रह्माने कहा ॥ १३९९ ॥ गर्गमुनिसे पराशरको प्राप्त हुआ पराशरसे बृहद्रथको बृहद्रथसे वास्तुशास्त्रको विश्वकर्मा प्राप्त होता भया ॥ १४०० ॥ वह विश्वकर्मा जगत्के हितार्थ फिर वासुदेव आदिकोंको भूलोकमें भक्तिसे कहताभया ॥ १४०१ ॥ इस पवित्र परम रहस्य (गुप्त) को जो नर पढताहै उसकी सफल वाणी होतीहै यह मैं सत्य सत्य कहताहूं ॥ १४०२ ॥

192

इसके अनंतर अत्यंत निर्मलहै विद्या जिसकी ऐसा महात्मा विश्वकर्मा जो सबगुणोंमें श्रेष्ठहै और संपूर्ण शास्त्रोंके अर्थका ज्ञाताहै और संपूर्ण देवताओंके गणोंका सूत्रधारहै और पुण्यात्मा है वह भवनमें निवासियोंके इस वास्तुशास्त्रको करता

अथसुविमलविद्योविश्वकर्मामहात्मासकलगुणवरिष्ठः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता ॥ सकलसुरगणानांसूत्रधारः कृतात्माभवननिवसतांसच्छास्त्रमे
तच्चकार ॥ १४०३ ॥ इति श्रीब्रह्मोक्तविश्वकर्मप्रकाशेविश्वकर्मणोक्तवास्तुशास्त्रेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ अयं विश्वकर्मप्रकाशः
श्रीसंवत् १९५२ शके १८१७ फाल्गुनकृष्णनवम्याम् ९ रविवासरे समाप्तिमगमत् ॥ छ ॥ ॥ ॥ छ ॥ ॥

भया ॥ १४०३ ॥ इति श्रीब्रह्मोक्तविश्वकर्मप्रकाशे विश्वकर्मणोक्तवास्तुशास्त्रे पं० मिहिरचंद्रकृतभाषाविवृतिसहिते त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ विश्वकर्मप्रकाशोऽयं संपूर्णः ॥ श्रीः ॥

इदं विश्वकर्मप्रकाश पुस्तकं मुंबय्यां खेमराज श्रीकृष्णदास इत्यनेन स्वकीये
"श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम्। संवत् १९५२ शके १८१७

194

जाहिरात.

कर्मकांडग्रंथाः ।

नाम.	की. रु. आ.	ट.म.रु.आ.
१ संस्कारभास्कर. यजुर्वेदी सब संस्कारोंकी विधि प्रयोग और मंत्र सहित	२-१२	०-६
२ जन्मदिन पूजा पद्धति.	०-२	०-॥
३ गोदान पद्धति.	०-१॥	०-॥
४ पूजापंकजभास्कर.	२-०	०-४
५ सकाम शिवपूजन विधान भा.टी.	०-४	०-॥
६ स्वस्तिवाचन (पुण्याहवाचन)	०-१॥	०-॥
७ आचारार्क.	०-१२	०-२
८ आचारादर्श	०-१२	०-२
९ दशकर्मपद्धति.	०-७	०-१
१० वासिष्ठीहवनपद्धति	०-४	०-॥

नाम.	की. रु. आ.	ट.म.रु.आ.
११ लंबोदरीहवनपद्धति	०-४	०-॥
१२ श्राद्धविवेक (इसमें सब श्राद्धोंकी विधिहै)	०-१२	०-२
१३ एकोद्दिष्टश्राद्ध प्रयोग	०-२	०-॥
१४ पार्वणश्राद्ध प्रयोग	०-२	०-॥
१५ उपाकर्मपद्धति (श्रावणीयजुर्वेदकी)	०-१२	०-२
१६ कर्मविपाकचरणगत रफ़ १० आना ग्लेज़	०-१२	०-२
१७ कर्मविपाक भाषाटीका	१-४	०-३
१८ वेदोक्तवास्तुपद्धति.	०-६	०-॥
१९ व्रतोद्यापनकौमुदी.	०-१२	०-२
२० दानचंद्रिका	०-१०	०-२
२१ दानसंग्रह छपताहै	०-०	०-०

जाहिरात.

नाम.	की. रु. आ.	ट.म.रु.आ.
२२ कुंडविंशति (कुंडकेवीसग्रंथहैं) *	०–१२	०–२
२३ सर्वदेवप्रतिष्ठासंग्रह (प्रतिष्ठा करानेका ऐसा ग्रंथ आजतक अन्यत्र नहीं छपा)	३–०	०–६
२४ शांतिसार *	१–४	०–२
२५ नवरत्नविवाहपद्धति भाषाटीकासह	१–४	०–४
२६ वैवाहपद्यावली (नोतनी अर्थात् विनतीमें कहनेयोग्य दोनों पक्षके श्लोक भाषाटीका	०–१२	०–१
२७ ज्येष्ठाशांति	०–२	०–॥
२८ पंचकशांति	०–२	०–॥
२९ नवग्रह[illegible]नपद्धति	०–४	०–॥
३० जलो[illegible]काश वापी,कूप, तड़ागादिका उ०	१–१२	०–४
३१ संध्या यजुर्वेदी मूल तथा भाषाटीका	०–१॥	०–॥
३२ संध्यावैष्णवी.	०–१	०–॥
३३ क्षत्रियसंध्या	०–१	०–॥

नाम.	की. रु. आ.	ट.म. रु.आ.
३४ वैश्यसंध्या.	०–१	०–॥
३५ कात्यायनी तर्पण	०–२	०–॥
३६ नित्यकर्मपद्धति	०–२	०–॥
३७ नारायणबलि	०–६	०–॥
३८ कुशकंडिकाभाष्य	०–४	०–॥
३९ सर्वपूजा	०–२	०–॥
४० शिवार्चनपद्धति वेदोक्त	०–४	०–॥
४१ रुद्रविधानपद्धति	०–६	०–॥
४२ कात्यायनीशांति	०–२	०–॥
४३ यजु०आह्निक (प्रातःकालसेशयनपर्यन्तकेकर्म)	१–०	०–२
४४ पंचयज्ञ संस्कृतटीका सहित	३–६	०–॥
४५ पंचयज्ञ भाषा टीका	०–४	०–॥
४६ प्रतिष्ठामयूख	०–६	०–॥
४७ विवाहपद्धति मूल बड़े अक्षरोंकी	०–६	०–॥

196

197

199

1/200

॥ इति विश्वकर्मप्रकाशो भाषाटीकायुतः समाप्तः ॥